I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

सितम्बर-अक्टूबर 2025 * भाग 41 - अंक 5

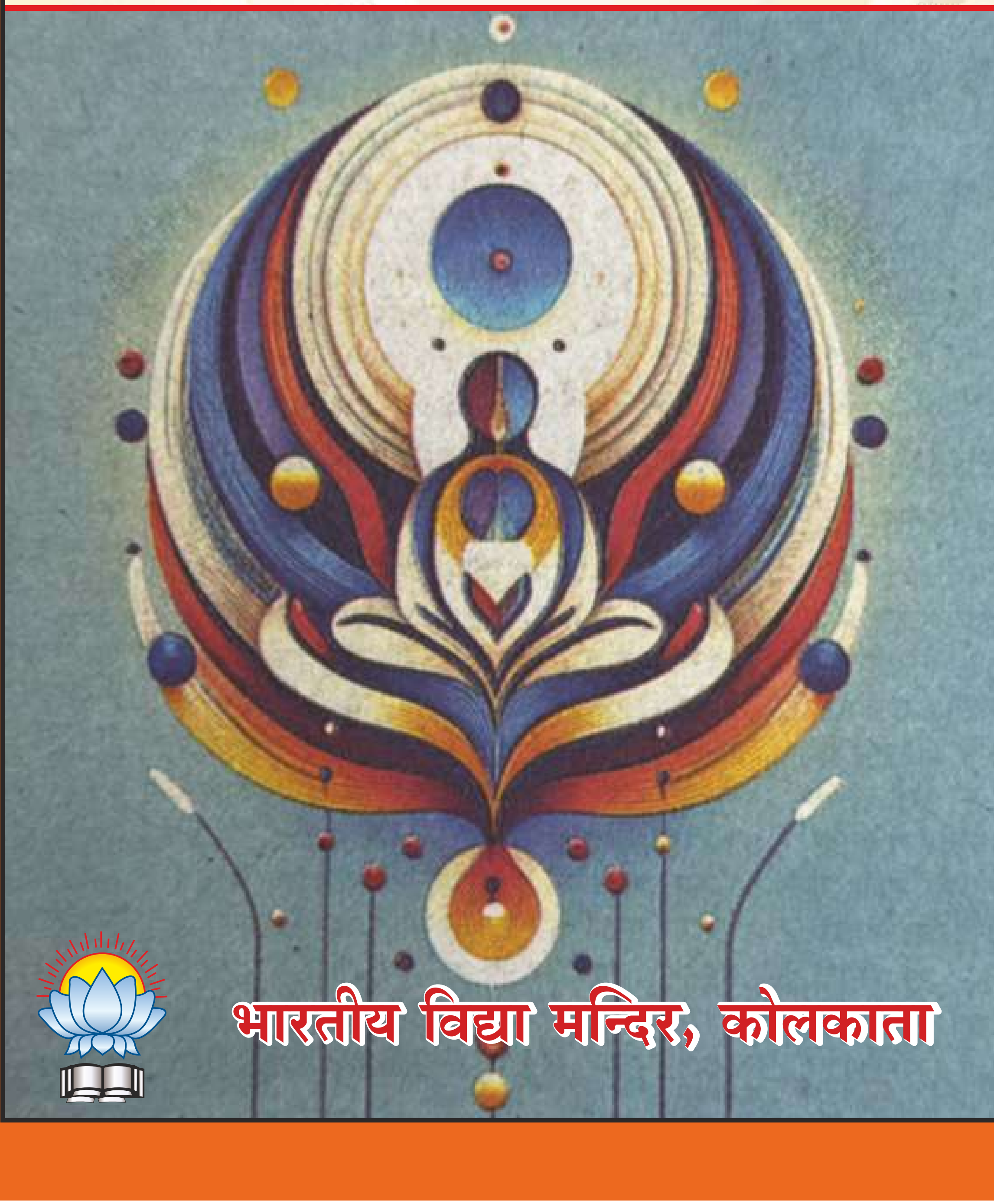

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

• वैचारिकी •
सितम्बर-अक्टूबर 2025 भाग 41 अंक 5

भारत के अद्भुत शिल्प

हिडिम्बा देवी मन्दिर, मनाली (हि. प्र.)

हिडिम्बा मंदिर प्रांगण में संपादक डॉ. बाबूलाल शर्मा।

देवदार के घने वृक्षों के मध्य अवस्थित यह सुंदर मंदिर देवी हिडिम्बा या हिरमा देवी को समर्पित है जिसका वर्णन महाभारत में भीम की पत्नी के रूप में मिलता है। लाक्षागृह के अग्निकाण्ड से बचकर निकले पाण्डव व कुंती जब अज्ञातवास में थे तभी भीम ने वन में हिडिम्ब राक्षस को मारकर उसकी बहन हिडिम्बा से विवाह किया। कुंती द्वारा निर्धारित विवाह की शर्त के अनुसार पुत्र (घटोत्कच) का जन्म होते ही भीम वापस अपने भाइयों के पास चला गया। घटोत्कच ने कौरव-पाण्डव युद्ध में भाग लिया था और अद्भुत वीरता दिखाते हुए स्वयं का प्राणोत्सर्ग कर अर्जुन के प्राण बचाये थे। मंदिर के परिसर में घटोत्कच का भी छोटा मंदिर है (पुराणों के अनुसार घटोत्कच के पुत्र का नाम बर्बरीक था, राजस्थान के खाटू गाँव में इसका शीश 'श्याम' के नाम से पूजित है)। हिडिम्बा ने यहाँ तपस्या की और देवी के रूप में पूज्य हुई। इनकी कृपा से ही विहंगमणिवाल , कुल्लू राज्य के क्रूर पीती ठाकुरों का नाश कर कुल्लू के राज-सिंहासन पर बैठा। अभी भी हिडिम्बा देवी कुल्लू के राजपरिवार की कुल देवी के रूप में पूज्य हैं, प्रतिदिन पूजा अर्चना हेतु मंदिर में काफी संख्या में श्रद्धालु आते रहते हैं। मई में हिडिम्बा जयंती पर यहाँ मेला लगता है और कुल्लू के प्रसिद्ध दशहरा मेले का प्रारंभ यहीं से होता है जिसमें देवी की पालकी की शोभायात्रा होती है।

मंदिर में उत्कीर्ण टाकरी लिपि के एक अभिलेख के अनुसार इसका निर्माण सन् 1553 ईसवी में राजा बहादुर सिंह ने करवाया था। पगोडा शैली में निर्मित मंदिर की ऊँचाई आधार से लगभग 80 फीट है तथा यह तीन ओर से 12 फीट ऊंचाई वाले संकरे बरामदे से घिरा है। इसकी ढलवां काष्ठ निर्मित छत चार भागों में विभक्त है जिसका ऊपरी भाग गोलाकार है जो कि कांस्य कलश एवं त्रिशूल से सुशोभित है। वर्गाकार गर्भगृह में हिडिम्बा देवी की कांस्य निर्मित सुंदर प्रतिमा प्रतिष्ठित है तथा चतुष्पदिय प्रवेश द्वार विभिन्न देवी-देवताओं तथा बेलबूटे, घटपल्लव अभिप्राय, पशु जैसे हाथी, मकर इत्यादि के अंकन से सुसज्जित है। प्रवेश द्वार के दायीं ओर महिषासुरमर्दिनी, हाथ जोड़े भक्त तथा नन्दी पर आसीन उमामहेश्वर और बायीं ओर दुर्गा, हाथ जोड़े भक्त तथा गरुड़ पर आसीन लक्ष्मीनारायण को दर्शाया गया है, ललाटबिम्ब पर गणेश तथा उसके ऊपर शहतीर पर नवग्रहों का अंकन है। सबसे ऊपरी भाग में बौद्ध आकृतियाँ उकेरी गयी हैं।

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष-प्रधान सम्पादक

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध सम्पादक

शंकरलाल सोमानी

ISSN 0975-6531

भाग : 41 अंक : 5

वैचारिकी

धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

सितम्बर-अक्टूबर, 2025 ✷ भाद्रपद शुक्ल 9, - कार्तिक शुक्ल 10, वि. सं. 2082

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय

भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700 087
दूरभाष : 033-71001614
मो. : 09830559364
ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com
Website : www.bharatiyavidyamandir.org

सदस्यता शुल्क

द्वैवार्षिक 900/- रुपये

भुगतान

Payee's Name:
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c No. :
32030320176
Bank : STATE BANK OF INDIA
Branch : New Market
IFSC Code No. :
SBIN0004662

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** 3
- **संपादकीय** 5
- **विश्वात्मा भारत : एक सत्योन्मीलन**
  प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र (पद्मश्री) 9
- **विज्ञानामृत भाष्य में जगत्प्रपंच निरूपण एवं उसकी समीचीनता**
  विद्या सागर 17
- **भारतीय संस्कृति में गौ एवं प्राचीन राजस्थान में गौ-संरक्षण : अभिलेखीय साक्ष्य**
  श्रीमती रेखा देवी शर्मा 24
- **मनु मतानुसार वानप्रस्थ सिद्धांत**
  गिरिन्द्र मोहन ठाकुर 32
- **मनुस्मृति वर्णित व्यभिचार, प्रायश्चित तथा दण्ड विधान**
  संतोष कुमार पाण्डेय 36
- **राष्ट्रीय शिक्षा और भाषा नीति : समग्र दृष्टिकोण**
  डॉ. वी. गोविंद 42
- **नागार्जुन और उनकी 'राम के प्रति' कविता**
  डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी' 48
- **आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री : व्यक्तित्व एवं कृतित्व**
  राजेन्द्र परदेसी 52
- **अल्पचर्चित तेलुगु कृष्ण भक्त कवि क्षेत्रय्या**
  डॉ. रंजना राज़दान 55
- **माही का राजनीतिक इतिहास**
  पूजा के पिल्लै 71
- **हिंदी कहानीकार 'क्षमा शर्मा' की कहानियों में नारी पात्रों का मनोविज्ञान**
  गीता 76
- ***पाठक-मंच - रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं मोहनदास करमचंद गांधी,***
  संत दादू : मूल दस्तावेजों में , पिया की नगरी चार कदम,
  फुर्सत किसे है इन दिनों 83
- ***प्रतिस्वर*** 91

- ■ प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
- ■ प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- ■ समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता।

अध्यक्षीय

अनौपचारिक क्षणों में मुझसे डॉ. बाबूलाल शर्मा ने अचानक पूछ लिया कि कौन-सी 5 पुस्तकें आपको बहुत ज्यादा प्रिय हैं ? पहले तो मैं सोच में पड़ गया, पढ़ी तो बहुत सी पुस्तकें हैं, लेकिन तत्काल जो पुस्तकें मुझे याद आईं, वे निम्न हैं : -

1. महाभारत :- महाभारत मैंने बचपन से ही पढ़ना शुरू किया था और इसे मैं आज भी ठीक से पढ़ता हूँ। आँखों की परेशानी के कारण अब इसे पढ़ नहीं पाता हूं तो इसकी कथाएं सुनता हूं और हर बार इससे मुझे कुछ न कुछ प्रेरणादायक बातें तथा नीति और ज्ञान के कुछ सूत्र अवश्य मिल जाते हैं। अतः यह अनूठा धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक ग्रंथ मेरी सूची में पहले स्थान पर है।

2. कामायनी :- जबसे हमने इस काव्य पुस्तक को पढ़ा है तब से मुझे इस पुस्तक से लगाव हो गया। विद्वान अग्रज श्री जयकिशनदासजी सादानी द्वारा इस दार्शनिक काव्य का अंग्रेजी में सुंदर अनुवाद किया गया है। आज भी विशेष रूप से मंचों पर इस महाकाव्य की चर्चा और प्रस्तुति होती रहती है। आज भी मैं कामायनी के कुछ छंद जब-तब गुनगुना लेता हूं। आदि पुरुष मनु और श्रद्धा के मिलन से मानवता के विकास की कथा को रूपक के रूप में प्रस्तुत करता यह भावमय महाकाव्य मुझे सदैव आकर्षित और प्रेरित करता है।

3. द एम्परर्स न्यू माइन्ड :- रोजर पेनरोस (The Emperor's New Min : Roger Penrose) : विज्ञान के क्षेत्र की पुस्तक पढ़ना विज्ञान और प्रोद्योगिकी में अपनी रुचि के चलते प्रिय रहा है। विज्ञान और दर्शन के सामासिक स्वरूप को समझने में नोबेल पुरस्कार विजेता भौतिकीविद् रोजर पेनरोस की यह पुस्तक हमें बहुत अच्छी लगी। यह पुस्तक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सम्प्रत्यय की पड़ताल करती है तथा मानवीय चेतना के नॉन--एल्गोरिद्मिक होने के पक्ष में तर्क देते हुए कहती है कि इसे पारंपरिक प्रतिरूपों से नहीं समझा जा सकता। आज भी मुझे मौका मिले तो मैं यह पुस्तक पुनः पढ़ना चाहूंगा।

4. वयं रक्षाम् :- आचार्य चतुरसेन का रावण को केन्द्रीय चरित्र बनाकर लिखा गया यह उपन्यास मुझे बहुत प्रिय रहा है। मैंने इसे कितनी ही बार पढ़ा है। खासतौर से इसकी भूमिका में उन्होंने उस काल के इतिहास और भूगोल का जो वर्णन किया है वह अत्यंत रोचक,

ज्ञानवर्द्धक और प्रेरणादायक है। वयं रक्षामः का नायक रावण दक्षिण और उत्तर को जोड़ने वाली 'रक्ष-संस्कृति' के प्रसार का प्रयास करता दिखाई देता है। बहुत से लोग इससे सहमत नहीं होंगे, लेकिन इस उपन्यास से प्राचीन भारतीय संस्कृति के बारे में बहुत कुछ जानने को मिलता है। आचार्य चतुरसेन की भाषा-शैली भी परिनिष्ठित होते हुए भी अत्यंत भावपूर्ण और सरस है।

5. चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता :- चूंकि मैं पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुआ तो पुष्टि मार्ग और भक्ति मार्ग को समझने के लिए मुझे वैष्णवों की वार्ता से बहुत कुछ सीखने को मिला। कई प्रश्नों के उत्तर मिले तथा उससे बहुत प्रेरणा मिली। ब्रजभाषा में रचित इन पुस्तकों का लेखक गोस्वामी गोकुलनाथ जी को माना जाता है। इन ग्रंथों में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और श्री विट्ठलनाथ जी के पुष्टिमार्ग के शिष्यों की कथाएं--उनके जीवन चरित-- संकलित हैं।

इसके अलावा भी बहुत सी पुस्तकें मुझे अच्छी लगीं। जैसे --- A Brief History of Time by Stephen Hawking, Problems of Leninism by Joseph Stalin, Mein Kampf by Adolf Hitler, The Godfather By Mario Puzo, लुई दे ब्रोगली की भौतिक विज्ञान में क्रांति, हितोपदेश, श्री मद्‌भागवत, जयदेव द्वारा रचित गीत गोविन्द, सेकण्ड वर्ल्ड वार पर विन्सटन चर्चिल की पुस्तक-शृंखला तथा कालिदास रचित अभिज्ञान शाकुन्तलम आदि पुस्तकें भी मेरी अत्यंत प्रिय पुस्तकें रही हैं और इन्हें मैंने एकाधिक बार पढ़ा है। आग्रह करता हूँ कि पुस्तकें पढ़ा करें। पुस्तकें सफलता का मार्गदर्शन करती हैं, ज्ञानवर्धन करती हैं, प्रेरित करती हैं।

- डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

वस्तुतः पुस्तकें पढ़ने और उन पर चर्चा करने में मूंधड़ाजी की गहन अभिरुचि है, उसमें भी पुस्तकों का विषय वैविध्य उल्लेखनीय है। उनके इस वैविध्य ने मुझे भी विज्ञान की पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित किया, जबकि मेरी अभिरुचि साहित्य, इतिहास, कला, रहस्य-रोमांच और धर्म-दर्शन इन पुस्तकें पढ़ने में ही थी। प्रसंगवश स्मरण आता है, भारतीय अंग्रेजी साहित्य के सबसे लोकप्रिय लेखक श्री रस्किन बॉण्ड का कथन कि पुस्तकें केवल ज्ञान का स्रोत नहीं होती, वे व्यक्ति के सोच और व्यक्तित्व तथा उसकी संवेदनाओं को भी आकार देती हैं, एक अच्छा लेखक वही बन सकता है जो अच्छा पाठक होता है, किताबें कल्पनाशक्ति को गहराई देती हैं। रस्किन 90 की उम्र में भी रोजाना चार अखबार और सप्ताह में 2-3 पुस्तकें पढ़ते हैं। भारतीय मूल की अमरीकी एस्ट्रोनॉट सुश्री सुनीता विलियम्स ने एक साक्षात्कार में बताया था कि अंतरिक्ष यात्रा के दौरान अपने साथ भगवद्‌गीता और ईशोपनिषद रखती थी। इनको पढ़ने से मानसिक शांति और आत्मबल मिलता था, जब मैं अंतरिक्ष यात्रा में वापसी के समय सर्वाधिक कठिन दौर से गुजर रही थी तो भगवद्‌गीता को पढ़ने से धैर्य प्राप्त हुआ। *- सम्पादक*

आवरण चित्र : एआई सॉफ्टवेयर को भगवान महावीर के प्रेम, करुणा, अहिंसा, सह-अस्तित्व शांति, सद्‌भाव जैसे विचार बताए गए तो उसने भगवान का स्वरूप बताने वाला यह सुन्दर चित्र बनाया।

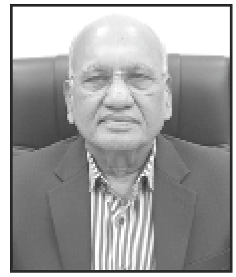

संपादकीय

हिंदी दिवस, राष्ट्रभाषा दिवस नहीं!

भारतीय संविधान के भाग 17 के अनुच्छेद 343 (1) में कहा गया है कि भारत (दैट इज इंडिया) गण संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। हिंदी से मतलब दिल्ली और उससे लगते उ.प्र. हरियाणा आदि के क्षेत्रों में बोलीजाने वाली खड़ी बोली जिसे 13-14वीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने हिन्दवी कहा।1947 में स्वतंत्रता के पश्चात देश का संविधान बनाने के लिए गठित संविधान सभा ने 14 सितंबर 1949 को इस प्रस्ताव को स्वीकार किया था। 10-11 नवंबर 1953 को काका साहब नरहर विष्णु गाडगिल की अध्यक्षता में नागपुर (महाराष्ट्र) में हुए अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन के पाँचवें अधिवेशन में 14 सितंबर को हिंदी दिवस के रूप में मनाने का प्रस्ताव पारित हुआ। इस प्रस्ताव को कार्यान्वित कर हिंदी को शासन-प्रशासन, केंद्र एवं राज्यों तथा राज्यों में परस्पर संपर्क, शिक्षा एवं अन्य राष्ट्रीय सरोकारों में बढ़ावा देने के उद्देश्य से, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के अनुरोध पर 14 सितंबर 1954 को हिंदी दिवस मनाने की परम्परा प्रारंभ हुई। सरकारी संस्थानों में हिंदी दिवस के अलावा हिंदी सप्ताह व हिंदी पखवाड़ा भी मनाया जाता है, पुरस्कार भी दिए जाते हैं, संस्कृत शब्दों एवं अंग्रेजी से अनूदित शब्दों से हिंदी को समृद्ध करने की व्यवस्था है।

उल्लेखनीय है कि संविधान के उक्त अनुच्छेद में हिंदी को राजभाषा कहा गया परंतु इसके प्रचार-प्रसार हेतु गठित संस्थाओं के नाम राष्ट्रभाषा प्रचार समितियां हैं, तात्पर्य यह कि केंद्र सरकार हिंदी को राष्ट्रभाषा नहीं कहने को बाध्य है जबकि प्रचारक संस्थाएं इसे राष्ट्रभाषा मानने का आग्रह रखती हैं। इसके समानांतर एक कथन चलन में है कि हिंदी राजभाषा है और इसके अलावा विभिन्न राज्यों एवं क्षेत्रों की भाषाएं राष्ट्रभाषाएं हैं? तो इसी तरह हिंदी दिवस है जो राष्ट्रभाषा दिवस नहीं है? अच्छा, राजभाषा और राष्ट्र भाषा में क्या अंतर है, किसी को स्पष्ट हो तो कृपया बताएं! हिंदी को अंग्रेजी, उर्दू की जगह राजभाषा बनाने के मूल में इसकी केन्द्रीय स्थिति तथा गद्यात्मकता थी, नहीं तो इस परिक्षेत्र में उस समय राजस्थानी, अवधी, ब्रज आदि समृद्ध काव्य भाषाएं थी, परन्तु काव्य में तो राजकाज नहीं हो सकता था। फिर 19वीं शताब्दी में ही यह देश में सर्वाधिक लोगों द्वारा व्यवहृत भाषा बन चुकी थी जो विश्व में अभी अंग्रेजी (152 करोड़), मैडरिन (115 करोड़) के बाद तीसरी सबसे बड़ी भाषा (61 करोड़) है।

मुस्लिम शासन के दौरान फारसी राजभाषा रही, फिर अंग्रेजों के शासन में अंग्रेजी राजभाषा रही अर्थात् केन्द्रीय सत्ता की भाषा, राष्ट्र भाषा नहीं थी ये ? धीरे-धीरे अंग्रेजी पूरे देश पर छा गई, कमोबेश उर्दू भी, किसी ने चूं तक नहीं की। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तानाशाही राजतन्त्र की जगह प्रजातंत्र होते ही तमिल, बांग्ला आदि की अस्मिताएं जग गई कि हिंदी से खतरा है, अंग्रेजी से नहीं, मतलब स्वदेशी से खतरा है, विदेशी से नहीं। हिंदीतर प्रांतों में दुकानों-मकानों के और प्रचारक नाम पट्टों पर प्रांतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी है, हिंदी नहीं। बंगाल में राज्य सरकार की नीति है, बंगाल में केवल बांग्ला, मतलब हिंदी नहीं, बेशक अंग्रेजी रहे और साथ ही उसके एक मंत्री की घोषणा है कि जल्दी ही बंगाल में 52 प्रतिशत उर्दू भाषी हो जाएंगे। तमिलनाडु में तो नेता अपनी राजनीति चमकाये रखने के लिए हिंदी को गरियाना जरूरी समझते हैं। महाराष्ट्र में राज ठाकरे को दस वर्ष तक राजनीतिक रूप से निर्वासित रहने के बाद, वापस राजनीति में आने का मार्ग सूझा कि हिंदी बोलने वालों को पीटो और मराठी-मराठी चिल्लाओ ?

हिंदी क्षेत्र में भी कई भाषाई अस्मिताएं हैं जिनमें से राजस्थानी, ब्रज, अवधी तो साहित्य की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं। इन भाषाओं में अभी भी लेखन हो रहा है और लेखक इन्हें संवैधानिक मान्यता देने अर्थात् संविधान की 8वीं सूची में सूचीबद्ध करने की मांग कर रहे हैं। हिंदी को राजभाषा घोषित करने के साथ हिंदी भाषी क्षेत्र निर्धारित किया गया जिसमें दिल्ली (संघीय क्षेत्र) तथा राजस्थान, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झाड़खंड, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड प्रांतों को सम्मिलित किया गया। शेष प्रांतों की भाषाओं को संबंधित प्रान्त में राजभाषा हिंदी एवं सह-राजभाषा अंग्रेजी के साथ-साथ उस प्रान्त की द्वितीय राजभाषा घोषित कर इन्हें संविधान की 8वीं सूची में सूचीबद्ध कर संवैधानिक मान्यता दे दी गई। इस सूची में बांग्ला, पंजाबी, कश्मीरी, गुजराती, मराठी, ओड़िया, तेलुगु, असमी, कन्नड, मलयालम, तमिल, संस्कृत भाषाओं को रखा गया, तत्पश्चात सिंधी को भी जोड़ा गया जो संस्कृत की तरह किसी प्रांत की भाषा नहीं है। फिर हिंदी क्षेत्र की एकमात्र मैथिली को भी इस सूची में स्थान दे दिया गया ?

केन्द्र सरकार का देश का शीर्ष साहित्यिक संस्थान है साहित्य अकादमी जो सभी संवैधानिक मान्यता प्राप्त भाषाओं के साहित्य का प्रकाशन करता है, पारस्परिक अनुवाद कराता है तथा लेखकों को पुरष्कृत करता है। साहित्य अकादमी किसी भाषा को अपनी सूची में मान्यता देने के लिए स्वतंत्र है। उसने कई भाषाओं को मान्यता दी जिन्हें फिर केन्द्र सरकार ने भी 8वीं सूची में संवैधानिक मान्यता दे दी, जैसे सिंधी को अकादमी से मान्यता 1956 में, संवैधानिक मान्यता 1967 में। मणिपुरी को अकादमी से मान्यता 1971 में, संवैधानिक मान्यता 1992 में। कोंकणी को अकादमी से मान्यता 1975 में, संवैधानिक मान्यता 1992 में। नेपाली को अकादमी से मान्यता 1975 में, संवैधानिक मान्यता 1992 में। मैथिली को अकादमी से मान्यता 1966 में, संवैधानिक मान्यता 2003 में। डोगरी को अकादमिक मान्यता 1969 में, संवैधानिक मान्यता 2003 में। इसके उलट संथाली को संवैधानिक मान्यता 2003 में मिली जिसे अकादमी ने 2004 में मान्यता दी और बोडो को संवैधानिक मान्यता 2003 में मिली जिसे अकादमी ने 2005 में मान्यता प्रदान की। इस क्रम में एकमात्र राजस्थानी अपवाद है जिसे अकादमी ने 1974 में मान्यता दे दी थी परंतु सरकार ने अभी तक संवैधानिक मान्यता नहीं दी है। सचमुच यह अन्यायपूर्ण है। 1974 से राजस्थानी के प्रति चले आ रहे इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार को वर्तमान सरकार को ठीक करना चाहिए।

भले ही जनाधार खोते राजनेता नई शिक्षा नीति के तीन भाषा फॉर्मूले का विरोध अपनी राजनीति चमकाने के लिये कर रहे हों, लेकिन इस दिशा में किए गए नये प्रयोग आशा की नई किरण जगा रहे हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि बच्चा अपनी मातृभाषा में जितनी आसानी और सहजता से सीख सकता है, उतना किसी थोपी गई भाषा में नहीं। तमाम शिक्षाविद् और भाषाविज्ञानी मानते रहे हैं कि दैनिक जीवन में उपयोग किए जाने वाले शब्दों व

परिवेशगत ज्ञान विद्यार्थियों को जल्दी सीखने में मददगार हो सकता है। देश में 121 से अधिक भाषाएं बोली जाती हैं। वहीं मातृभाषाओं की संख्या सोलह से अधिक है। इतनी अधिक भाषायी विविधता वाले देश में, जब बच्चे अपने आसपास जो देखते और महसूस करते हैं, जो उनकी स्मृतियों में स्थायी बस जाते हैं। जब ये बातें उनके शैक्षिक पाठ्यक्रम का हिस्सा बनती हैं, तो वे इसको आसानी से अंगीकार कर लेते हैं। कई शिक्षा आयोगों ने भी इसी बात की वकालत की है। इसी सोच के चलते देश के विभिन्न भागों में तीन भाषा फॉर्मूले को लेकर कई प्रयोग हो रहे हैं। इस रचनात्मक पहल के सकारात्मक परिणाम भी सामने आए हैं। जिसके निष्कर्ष बताते हैं कि मातृभाषा में पढ़ाई करने से बच्चों की सीखने की गति तेज हुई है। इससे साक्षरता की दर में सकारात्मक बदलाव आया है। इतना ही नहीं इससे जहां छात्र-छात्राओं में आत्मविश्वास बढ़ा है, वहीं उनकी कक्षा में सहभागिता भी बढ़ी है। सही मायनों में नई शिक्षा नीति में तीन भाषा फॉर्मूले का मकसद भी यही रहा है।

विगत के अनुभव बताते हैं कि जब छात्र-छात्राओं को उनकी मातृभाषा से इतर अन्य भाषा में पढ़ाया जाता है तो इसका असर उनकी सीखने की प्रक्रिया पर पड़ता है। ऐसे में दूरदराज के गांव-देहात या आदिवासी इलाकों से आने वाले विद्यार्थी अन्य शहरी बच्चों का मुकाबला करने में असफल हो जाते हैं। जिससे उनके स्कूल छोड़ने के प्रतिशत में भी वृद्धि होती है। मौजूदा स्थितियों में तीन भाषा फॉर्मूले को लेकर किए जा रहे नये प्रयोग नई उम्मीद जगा रहे हैं। लैंग्वेज एंड लर्निंग फाउडेशन ने छत्तीसगढ़, झारखंड, राजस्थान और ओडिशा के 13 जिलों में बच्चों को उनकी राज्यभाषा और अंग्रेजी के साथ-साथ मातृभाषा में पढ़ाने के लिये राज्य सरकारों के साथ मिलकर बहुभाषी शिक्षा कार्यक्रम शुरू किया। इससे न केवल चयनित जिलों में बच्चों की साक्षरता दर में सुधार हुआ, बल्कि उनमें अन्य भाषा को सीखने की अभिरुचि भी बढ़ी है। एक महत्वपूर्ण प्रयोग के रूप में प्रारंभिक कक्षाओं में स्थानीय भाषा, सांस्कृतिक परंपराओं व परंपरागता ज्ञान को शामिल करने के लिये स्थानीय समुदायों की मदद भी ली गई। जिसमें स्थानीय परिवेश में उपजी लोककथाओं, स्थानीय संस्कृति आधारित कहानियां तथा कई पीढ़ियों से हासिल पारंपरिक ज्ञान को भी शामिल किया गया। बच्चों की पढ़ाई में रुचि बनी रहे, इसके लिये रचनाधर्मिता का सहारा भी लिया गया। जिसमें मौखिक शिक्षा प्रणाली का भी उपयोग किया गया। ऐसी शिक्षण सामग्री तैयार की गई जिससे बच्चे आसानी व रुचि के साथ आसानी से सीख सकें। मसलन कविता पोस्टर, कहानी के पात्रों के चित्र, वार्तालाप दर्शाने वाले चार्ट, शब्द कार्ड, वर्ण मात्रा कार्ड तथा चित्रों के जरिये कहानी बताने वाली किताबें इसमें शामिल की गई। जिसने छात्रों में शिक्षा के प्रति रुचि जगायी और वे आसानी से सीखने लगे। उदाहरण के लिये छत्तीसगढ़ के बस्तर इलाके में जहां पचास फीसदी बच्चे हल्बी बोलते थे, वहां हिंदी में पढ़ाई करने से शिक्षण के सकारात्मक परिणाम सामने नहीं आ रहे थे। इस क्षेत्र में प्रारंभिक कक्षाओं में हल्बी को हिंदी के साथ जोड़कर पढ़ाया गया। इस शैक्षिक कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के बाद सर्वे में यह सामने आया कि बस्तर में औसतन साक्षरता की दर में इकतीस फीसदी की, संख्या ज्ञान में पच्चीस फीसदी और वर्णअक्षर पहचान में छब्बीस फीसदी का सुधार हुआ। इसके अलावा मौखिक पाठन में चौदह फीसदी का सुधार आया। निश्चित रूप से इस अभिनव पहल ने देश को संदेश दिया कि मातृभाषा में शिक्षण से साक्षरता व शिक्षा की गुणवत्ता में आशातीत बदलाव लाया जा सकता है।

अनुवाद दिवस

संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से 30 सितम्बर को इंटरनेशनल ट्रांसलेशन डे, अंतरराष्ट्रीय अनुवाद दिवस मनाया जाता है। इसका उद्देश्य संसार के बहुभाषाविद अनुवादकों के अवदान को महत्व देना है जिससे संसार की विभिन्न भाषाओं के बीच पारस्परिक संपर्क संभव हो रहा है। इस संपर्क के कारण विश्व के विभिन्न समाजों एवं संस्कृतियों में समन्वय के कारण व्यापक मानवीय हितों का संरक्षण संभव हो सकेगा। इस हित की महत्ता को

दृष्टि में रख कर ही, 1953 से अनुवादकों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन देने के लिए कार्यरत फैडरेशन ऑफ इटरनेशनल ट्रांसलेटर्स (एफ आइटी) ने इस वर्ष इंटरनेशल ट्रांसलेशन डे की थीम का नाम सेलिब्रेटिंग ट्रांसलेशन, पीस एण्ड ट्रस्ट अर्थात शांति और विश्वास के लिए अनुवाद का उद्घोष रखा है। स्पष्ट ही इसमें वर्तमान में हो रहे युद्धों से त्रस्त मानवता के प्रति गहरी संवेदना है, वैश्विक शांति के लिए पारस्परिक विश्वास के महत्त्व को रेखांकित किया गया है कि विश्व के विभिन्न भाषाई समाजों के मध्य अविश्वास को समाप्त करने में अनुवाद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा, उनके सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेशों को भाषाई अनुवाद के माध्यम से पहुंचा कर।

विश्व के लगभग 200 देशों के 820 करोड़ नागरिकों के विभिन्न समूहों में 7 हजार से अधिक भाषा बोलियां प्रचलित हैं जिनमें से 2800 विलुप्ति के कगार पर हैं, क्योंकि इनमें प्रत्येक को बोलने वालों की संख्या एक-एक हजार से कम रह गयी है। अंग्रेजी, मंदारिन (चाइनीज), हिन्दी, स्पेनिश, फ्रेंच, मानक अरेबिक, रशियन, बंगाली, पुर्तगाली, इंडोनेशियाई सहित कुल 23 भाषाएं हैं जिनका व्यवहार विश्व की आधी आबादी करती है। भाषाई विविधता के वैश्विक जंजाल को तोड़कर संसार को भाईचारे एवं सह-अस्तित्व में बांधने के लिए विभिन्न देशों में बसे बहुभाषाविद् लक्ष्य भाषा का अन्य भाषा में भावानुवाद कर करोड़ों लोगों के दिलों को जोड़ने के मिशन में लगे हैं। हालाँकि यह एक श्रमसाध्य कार्य है, क्योंकि किसी भाषा के दूसरी भाषा में शब्दकोशीय भाषान्तरण से अनुवाद का उद्देश्य पूरा नहीं होता क्योंकि भाषा केवल उच्चरित या लिखित शब्द नहीं होती, अपितु उसके शब्दों में, उसे व्यवहार में ले रहे मानव समूह या समाज की संस्कृति, मानसिकता, चीजों से सम्बंधित विचारों का समावेश होता है जो उन शब्दों में भाव निर्मित करते हैं, अनुवादक इस भाव को गहरे से समझ कर लक्ष्य भाषा के समतुल्य भाव संपन्न शब्दों का चयन कर अनुवाद में प्रयोग करता है तभी उसे अनुवाद कर्म सिद्ध होता है। विभिन्न कारणों से विश्व एक कुटुम्ब बनने की ओर अग्रसर है जिससे अनुवाद कार्य का महत्त्व बढ़ रहा है। अनुवाद संवाद और समझ के लिए सेतु तो है ही, साथ ही किसी भाषा के साहित्य सृजन की समृद्धि एवं वैश्विक पारस्परिकता का अति महत्वपूर्ण घटक बन गया है।

दीप ज्योति नमोस्तुते

अंधकार आदि है, अंत है, शाश्वत है, अनंत है और एक है। इस एक में ही अनेक होने की कामना उत्पन्न हुई और इसके पटल पर चेतना के असंख्य ऊर्जा बिन्दु प्रकाशमान हो उठे और काल प्रवहमान हो उठा जिसमें ऊर्जा एवं चेतना के असंख्य पिण्ड स्थान के रूप में सृजित हो उठे, जीवन मुस्कुरा उठा। लगभग एक लाख वर्ष पूर्व मनुष्य ने दावानल (वन की अग्नि) के उपयोग को समझा- प्रकाश, ऊष्मा और भोजन पकाने के माध्यम के रूप में, जीवन उत्साह से भर उठा। रात्रि के अंधकार में जीवन की कर्मशीलता के लिए 78 हजार वर्ष पूर्व दीपक का आविष्कार हुआ, हर्षपूर्ण हो उठा जीवन। प्रकाश के स्रोत के रूप में, 'सूर्यांश समवो दीप', 'वह्न्यात्मक दीपं' कह कर दीपक को सम्मानित किया गया। दिन में सूर्य का प्रकाश कर्मों का साक्षी भूत होता है, दीपक भी कर्मों का साक्षी भूत हुआ इसीलिए सभी शुभकर्मों, आनुष्ठानिक कर्मों में सर्व प्रथम दीपक प्रज्वलित किया जाता है और उसकी साक्षी में ही पूजादि कर्म सम्पन्न होते हैं। दीपक जीवन, उत्साह, स्वागत, सद्भावना, शुभता, प्रसन्नता, आरोग्य, धन-सम्पदा एवं सृजन का प्रतीक होकर भारत के सांस्कृतिक प्रतीकों में महत्त्वशाली हुआ। माँ महालक्ष्मी के प्रिय हे दीपज्योति आपको नमस्कार!

शुभम् करोति कल्याणम्, आरोग्यम् धन सम्पदा। शत्रुबुद्धि विनाशाय, दीपज्योति नमोस्तुते ।।

- डॉ. बाबूलाल शर्मा

विश्वात्मा भारत : एक सत्योन्मीलन

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र (पद्मश्री)

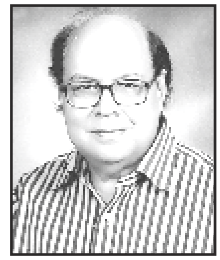

विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में मिस्त्र, यूनान तथा रोमन संस्कृतियाँ आती हैं (भारत को मैं अभी जानबूझ कर छोड़ रहा हूँ) 'इतिहास-पिता' हेरेडोटस के प्रमाणानुसार यूनानी संस्कृति का उदगम ई.पू. पन्द्रहवीं शती में, रोमन संस्कृति का उदय ई.पू. आठवीं शती में हुआ। यहूदी संस्कृति तथा मिस्र की संस्कृति अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन हैं। इजरायल-पाषाण नामक एक शिलालेख (1230 ई. पू.) का उल्लेख मिस्र के फराह शासक मेनेप्टाह के एक शिलालेख में मिलता है जो काहिरा संग्रहालय में सुरक्षित है। वस्तुतः इजरायल, यहूदी-कबीले के पुराणपुरुष अब्राहम के पौत्र जैकब के लिये प्रयुक्त उपाधि थी। यह कबीला दक्षिण मेसोपाटिया के शिन्नार-क्षेत्र में ई.पू. दो हजार वर्ष पूर्व आबाद हुआ। परन्तु उन्हें स्थायी निवास कभी नहीं मिल पाया। अब द्वितीय विश्व महायुद्ध के अनन्तर यहूदियों को अपनी मूलभूमि प्राप्त हो सकी है। तथापि 'फिलस्तीन' के लिये अभी भी संघर्ष चल ही रहा है। दक्षिणी फिलस्तीन (जूडा) के मूलनिवासी तथा हिब्रू-भाषी होने के कारण यहूदियों की ज्यूज़ तथा हिब्रू भी कहा जाता है। विश्व की अन्य संस्कृतियों (ख्रिस्व, इस्लाम तथा चाइना आदि) की चर्चा का तो कोई अर्थ ही नहीं, क्यों कि वे सब परवर्ती हैं।

परन्तु **भारतीय संस्कृति,** जैसा कि ऋग्वेद का ऋषि स्वयं कहता है-- **सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा,** विश्व की रक्षा करने वाली **प्रथम** (अर्थात प्राचीनतम) संस्कृति है। वेदमूलक होने के कारण उसकी प्राचीनता मर्त्य-ज्ञान की सामर्थ एवं सीमा से परे हैं। यद्यपि स्वर्गीय बालगंगाधर तिलक ने **वसन्तसम्पात-**सिद्धान्त के आधार पर मैत्रायणी-संहिता में वर्णित वसन्तागम (पुनर्वसु-संक्रान्ति) का समय ईसा से 6500 वर्ष बता कर, वेदकाल-विषयक विवाद को समाप्त कर दिया, तथापि भारतीय संस्कृति, धर्म, जन एवं परम्परा का मूल उद्गम और प्राचीन हो सकता है। उस दृष्टि से हम **भारत को विश्वात्मा** कह सकते हैं। ई.पू. पाँचवी छठीं सहस्राब्दी से ख्रिस्तोदय तक ईराक तथा अन्य पश्चिमोत्तर क्षेत्रों में पल्लवित सुमेर, बेबिलोन, असुर हित्ती, मितानी, मिस्र या कस्साइट संस्कृतियाँ निश्चित रूप से भारतीयों की थीं। प्रस्तुतालेख उन्हीं संस्कृतियों की भारतमूलकता का प्रामाणिक विवेचन कर रहा है।

भारत को **विश्वात्मा** कहने का पूर्ण औचित्य भी है। कृत-व्याकरण की दृष्टि से विचार करें तो **विश्वात्मा** शब्द में तत्पुरुष तथा बहुब्रीहि-- दोनों ही समास संगत सिद्ध होते हैं। **विश्व की आत्मा** (विश्वस्थ आत्मेति विश्वात्मा षष्ठी तत्पुरुष) यह व्याख्या भी उचित है तथा **विश्व है**

आत्मा जिसकी (विश्वम् आत्मा यस्य तत् बहुब्रीहिः) यह व्याख्या भी। अपनी वेदमूलकता, सनातन धर्म, सनातन संस्कृति तथा कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्, सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा, आ नो भद्राः क्रतवो तथा सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् आदि उच्च मानवीय आदर्शों-- जो आज भी धर्म की डफली बजाते **अधर्मों** की नग्नता प्रकट करने वाले अहंकारी धर्मों में प्रतिष्ठित नहीं हो पाये, समूचे विश्व को आतंकित करना ही जिनका धर्म है-- के कारण भारत निश्चय ही विश्वात्मा है। यह एक स्थापित सत्य है कि भारत की सभ्यता एवं संस्कृति का उदयबिन्दु किसी को ज्ञात नहीं। हाँ, भारतीयों को अवश्य ज्ञात है अपनी अविच्छिन्न आर्षपरम्परा के प्रामाण्य से। हमें यह भी ज्ञात है कि विद्या, संस्कृति, संस्कार विविध शास्त्रज्ञान भारतीयों ने ही सम्पूर्ण विश्व को दिया, अपने तीन प्रव्रजनों के द्वारा जो इस प्रकार हैं-

(क) महाभारत युद्ध के पूर्व (ई.पू. छठी सहस्त्राब्दी) यह निष्क्रमण सर्वविनाशक कौरव-पाण्डव युद्ध मूलक था। इसमें युद्ध विभीषिका से आतंकित लाखों भारतीय (दक्षिण भारतीय-- डॉ. हॉल, डॉ. वाशम, डॉ. राजबली पाण्डे) ईराक के दक्षिणी भाग (शिन्नार-सुमेर) में जा बसे तथा हजारों वर्षों तक सुमेर, बेबिलोन, असुर, हित्ती, मितानी तथा केसाइट-वंशों के माध्यम से राज्य करते रहे तथा समूचे उत्तर-पश्चिम एशिया तथा यूरोप को **भारतीयता** से ओतप्रोत कर दिया।

(ख) ई.पू. द्वितीयशती में सम्राट् पुष्यमित्रशुंग का बौद्धधर्मो-त्सादन। इसमें केवल बौद्धों ने ही प्राणसंकट के कारण तिब्बत, चीन, मंगोलिया, कोरिया, जापान आदि में शरण ली। इन क्षेत्रों में बौद्धधर्म एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार का यही कारण था।

(ग) ईसा की प्रथम शती से प्रारंभ भारतीयों का औपनिवेशिक अभियान हुआ। वस्तुतः यह प्रव्रजन महत्त्वाकांक्षामूलक था। अनेक सहसी राजकुमार तथा पुरोहित प्रशान्त महासागर के विस्तीर्ण वक्ष पर उभरे वनस्पतियों तथा खनिजों से समृद्ध, द्वीपों की ओर गये तथा वहाँ के मूलनिवासियों को नानाविध उपहारों से प्रभावित कर उनकी भूमि पर उतरे तथा द्वीपवासियों के प्रेम एवं सहयोग से वहाँ भारतीय उपनिवेशों की स्थापना की। यह कार्य ईसा की प्रथमशती में प्रारंभ हुआा। पन्द्रहवीं शती ई. तक, इस्लाम की विभीषिका के पूर्व तक इन भारतीय नरपतियों ने दक्षिण-पूर्व एशिया एवं सागरीय द्वीपों में अद्‌भुत राजसत्ता स्थापित की।

रामायण (किष्किन्धा. अ. 40) महाभारत, गुणाढ्य की वृहत्कथा (कथासरित्सागर, बृहत्कथामञ्जरी) दीपवंश, बोधिचर्यावतार, लंकावतार, जातककथा तथा गाहा-सत्तसई आदि में इन समुद्री द्वीपों की यात्राओं का रोचक वर्णन उपलब्ध है। टॉलमी तथा प्लिनी आदि यूनानी इतिहासविदों ने भी भारतीय-स्त्रोतों के ही आधार पर अपने विवरण दिये हैं। भारत में इन समुद्री यात्राओं के दो प्रमुख केन्द्र थे जहाँ से प्रतिवर्ष आषाढ़ पूर्णिमा के दिन विशाल जलपोत सागर की ओर प्रस्थान करते थे-- (क) उड़ीसा में तमलुक (ताम्रलिप्ति नदी एवं सागर का संगम)। (ख) तमिलनाडु का नागार्जुनकोण्डा-सागरतट। इन्हीं भूभागों के राजाओं ने कम्बोडिया, श्याम मलेशिया, जावा, बाली, सुमात्रा, लाओस तथा वर्मा आदि में भारतीय उपनिवेश स्थापित किये। जावा में **पूर्णवर्मा** ने, तुञ्ज्रंगपुर (बोर्नियो) में **मूलवर्मा** ने, कम्बोडिया में पुरोहित कौण्डिन्य ने तथा वियतनाम चम्पा में **राजा श्रीमार** ने साम्राज्य स्थापन किया तथा अपने सुशासन, साहित्य तथा स्थापत्य से सागर में एक नया समृद्ध भारत स्थापित कर दिया।

पश्चिमोत्तर बृहत्तर भारत का इतिहासः स्त्रोत समीक्षा

यहूदियों के धर्मग्रंथ बाइबल (Old Testament) तथा यूनानी इतिहास से यद्यपि सुमेरु-संस्कृति पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है तथापि इन दोनों स्त्रोतों का

अध्ययन करने से भी हमें जैसा प्रामाणिक ज्ञान कैल्डियन, असीरियन तथा बेबिलोनियन संस्कृतियों का हो पाता है-वैसा सुमेरियन का नहीं। यह कितने आश्चर्य का विषय है कि ई.पू. छठीं सहस्त्राब्दी से (यूनानी विद्वान् जॉन बोकह ने मिस्त्र नरेश मेनस का समय ई.पू. 6502 वर्ष माना है) ख्रिस्तारम्भ तक, पूरे छः हजार वर्ष जो संस्कृतियाँ **मेसोपोटामिय** (वर्तमान ईराक, सीरिया, तुर्की अनातोलिया) तथा पार्श्ववर्ती भूभागों में आबाद रहीं, जिन्होंने बेबिलोन, सरगोनपुर, निनेवेह, उर, एटेक, निप्पुर, एटिड् तथा एलम जैसे महान् नगर बसाए महान दिग्विजयें सम्पन्न कीं तथा धर्मपूर्वक प्रजापालन किया-- वे आज भी धरती की छाती में दबी पड़ी हैं। सामान्य लूटपाट करने वाली असभ्य जातियों ने उन्हें यूँ निगल लिया जैसे राहु तथा केतु, सूर्य एवं चन्द्र जैसे महाग्रहों को संकटापन्न बना देता है।

अठारहवीं शती ई. से ही यूरोप तथा अमेरिका के पचासों विद्वान् धरित्री के गर्भ में सोई इन राजसत्ताओं तथा संस्कृतियों का सम्पूर्ण इतिहास जानने में लगे हैं तथापि सफलता उन्हें पचास प्रतिशत ही मिल पाई है। अभी भी उत्खनन के कार्य चल रहे हैं जिनमें नई **लिम्पूसूचियाँ** (शासकों की नामावलियाँ) मिल रही हैं। उनसे नए शासकों का नाम ज्ञात हो पा रहा है। इन सूचियों में भारतीय पौराणिक राजाओं के भी नाम हैं! यही आश्चर्य है। परन्तु इस दुर्भाग्य का कारण क्या है? छः हजार वर्ष तक जो राजसत्ताएँ भूमण्डल पर राज करती रहीं उनके लोप का कारण क्या है? मैं इस प्रश्न पर गहराई से सोचता हूँ तब मुझे भारत तथा उन राजसत्ताओं का यथार्थ समझ में आ जाता है। भारत तो मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के बाद से निरन्तर आक्रान्त होता रहा और उन आक्रमणों का मात्र घृणित उद्देश्य था- हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस, हिन्दू साहित्य एवं संस्कृति का नाश तथा बलात् धर्मान्तरण!

यह पापाचार मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी, तैमूर, हलाकू, अहमदशाह अब्दाली जैसे लुटेरों ने किया जो अस्थिर रूप से, मात्र लूटपाट के ही लिये भारत आए थे। यह बात तो समझ में आती है परन्तु जिन कृतघ्नों ने भारत में अपनी राजसत्ता कायम कर ली थी, राजा-प्रजा (सुल्तान-रियाया) का सम्बन्ध स्थापित कर लिया था तथा जो नैतिक दृष्टि से इस अभागे राष्ट्र के रक्षक, योगक्षेम चिन्तक तथा सुख-दुख के साथी थे, वे भी यही कर्म भारत में करते रहे। इल्तुतमिश, फीरोजशाह तुगलक, मोहम्मद तुगलक तथा औरंगजेब इसी प्रकार के धर्मान्ध नृशंस शासक थे। फिरोज राजपूत माँ के गर्भ से जन्मा था, अलाउद्दीन खिलजी भी गुजरात के चालुक्यसम्राट भीमदेव की राजमहिषी कमला का भोक्ता था। तथापि हिन्दुओं के प्रति उनकी तिल भर भी सहानुभूति नहीं थी। इतिहासकार लेनपूल प्रमाण है। मुसलमानों को धर्म के आगे और कुछ सूझता ही नहीं। इस्लाम के नाम पर सारी पशुताएँ, नृशंसताएँ तथा राक्षस कर्म जायज हैं। उनकी दृष्टि में, मुहम्मद साहब के जन्म से पूर्व के सारे धर्म, सारी संस्कृतियाँ सारी सृष्टि ही बेमानी है। क्यों कि उनका सीधा प्रश्न है इस्लाम के अलावा, पृथ्वी पर कोई और धर्म, कुरान शरीफ के अतिरिक्त कोई दूसरा धर्मग्रंथ होना ही क्यों चाहिये? इस विक्षिप्त प्रश्न का उत्तर उन्हें भला कौन दे सकता है? उनकी सोच में कोई परिवर्तन नहीं आया है। उन भारतीय मुसलमानों में भी पश्चाताप या प्रायश्चित्त का भाव नहीं जो हिन्दू थे। जिनके बाप-दादा का मांस बकरे के साथ पका कर पूरे बन्धक परिवार को खिला दिया गया तथा पूरे इलाके में इसका प्रचार-प्रसार कर दिया गया। वे दुबारा हिन्दूगाँवों में लौट ही नहीं पाये। भारतीय मुस्लिमों में कोई बल्ख, बुखारा, गजनी, बगदाद और दमिश्क के नहीं हैं (गो कि वे भी इस्लाम के उदय से पूर्व शिवार्चक तथा वैदिकधर्म के अनुयायी ही थे) सब के सब मूलतः हिन्दू ही हैं परन्तु उनकी आत्मा मर चुकी है, वे अपनी मूलस्थिति में लौटना नहीं चाहते)।

अन्य धर्मों, सम्प्रदायों तथा समवायों में स्पर्धा, प्रतियोगिता तथा तुलना को महत्व दिया गया है। तुलना से अपने गुणों तथा दोषों का का ज्ञान होता है। तुलना के आधार पर ही, पूर्वाग्रहमुक्त अनेक पाश्चात्यमनीषियों (मैक्समूलर, शोपेनहॉवर, सर विलियम जोन्स, हिव्टनी, ए.एल्. वाशय आदि) ने भारतीय धर्म, संस्कृति एवं साहित्य की श्रेष्ठता पर मुहर लगाई है। चन्द्रनगर के प्रधान न्यायाधीश फ्रेञ्च विद्वान् लुई जैकिलियाट ने 1926 ई. में **'ला बाइबल डंस इण्डिया'** (दि बाइबिल इन इण्डिया) में लिखा है-

Land of Ancient India, eradle of humanity! hail! Hail, revered motherland! Whom contries of brutal invasions have not yet hurried under dust of oblivion. Hail Fatherland of faith! of love, of poetry and science. May we hail a revival of thy past in our western future.

परन्तु इस्लामिक डिक्शनरी में **तुलना** शब्द है ही नहीं। प्रतिस्पर्धा के नाम पर उनके कोष में **जिहाद, गाजी तथा काफिर** जैसे अवश्य हैं। उनके लिये कुछ भी अचिन्त्य तथा अकरणीय नहीं है। जब **जन्मदाता** (शाहजहाँ), संरक्षक-पालक (जलालुद्दीन खिलजी), सगे सहोदर (दाराशिकोह, शुजा तथा मुराद) तथा पुत्र (बेटे खुशरो की हत्या जहाँगीर ने कराई क्योंकि वह राजा मानसिंह का भाञ्जा था, तथा जहाँगीर को भय था कि कहीं महाबली मानसिंह, अकबर के बाद उसी को न सत्तारूढ़ कर दे) तक के सगे नहीं हुए तो औरों के क्या होंगे?

डेढ़ हजार वर्षों के सतत आक्रमणों, धर्मान्तरणों तथा लूटपाट के बावजूद भारत का इतिहास नष्ट नहीं हो पाया। वह तुर्की ईरान तथा इण्डोनेशिया, मलेशिया की तरह इस्लाम के पेट में समाया नहीं, अस्तित्वहीन नहीं हो पाया। आखिर क्यों? अपने आध्यात्मिक चिन्तन, अपनी वैश्विक सम्प्रभुता तथा अपनी विश्वव्यापी संस्कृति के कारण! कितने भारतियों को इस्लाम निगलता? आज सुमेरु, वेवीलोन आदि का चार-पाँच हजार वर्षों का शासन, धर्म, सामाजिक स्थिति-- सब अन्धकार में हैं, अज्ञात हैं। क्योंकि उनका या तो (रामायण-महाभारत जैसा) लिखित इतिहास था ही नहीं, अथवा यदि था भी वह बच नहीं पाया। कालकवलित हो गया। परन्तु भारत का सारा ज्ञान मौखिक परम्परा से सुरक्षित था। सारा वैदिक वाङ्.मय साधक आचार्यों को कण्ठस्थ था। फलतः उन्मादी आक्रान्त्राओं द्वारा दग्ध कर देने के बाद, वे ग्रन्थ पुनः स्मृति के बल पर तैयार कर लिये गये। अथवा एक ग्रंथागार में दग्ध होकर भी कहीं और बचे रहे। भारतीय इतिहास की रक्षा का दूसरा कारण था इसकी विशालता! सिकन्दर की सेना ने जब सुना कि पंजाब तो मात्र भारत का प्रवेशद्वार है, बंगाल पहुंचने में तो महीनों लगेगें-- तो सैनिकों ने आगे बढ़ने से साफ इन्कार कर दिया। ग्रन्थागार सभी दिशाओं, राजधानियों तथा विद्वानों के घरो में थे। आक्रान्ता कहाँ-कहाँ जलाते? कितना जलाते? एक जगह जलाया तो वही साहित्य अन्यत्र बच गया। फिर भी अनेक मूल्यवान ग्रंथ जो आज नहीं मिल पा रहे हैं उनका कारण ग्रंथागारों का दाह ही है। दौलताबाद जाते समय मुहम्मद तुगलक माण्डू के किले में रुका पूरे हरम के साथ। वह स्नानजल गरमाने के लिये राजा भोज के ग्रन्थागार के ग्रंथरत्नों का ही उपयोग करता था। धुएँ से काली पड़ी रसोई घर की दीवारें आज भी सहृदय दर्शक को अश्रुविगलित कर देती हैं। कैसे नराधम, आततायी और जानवर से भी बदतर होते थे ये सुल्तान!

हिन्दी के प्रख्यात कवि कुँवरनारायण को संस्कृत में अनूदित कर रहा था तो उनकी एक कविता मिली- 'बख्तियार एवं नालन्दा।' यह ऐतिहासिक दृष्टि मेरे मन को भा गई। इसमें कवि ने नालन्दा को भस्मसात करने वाले बख्तियार का पश्चात्ताप प्रकाशित किया है। समूची कविता को पढ़ कर सिद्ध होता है कि सूचना देने वालों ने उसे नालन्दा महाविहार को अपार स्वर्ण-रत्न से भरा एक दुर्ग बताया था। उसी अकूत सम्पत्ति के लोभ से उसने आक्रमण किया। परन्तु जब वहाँ के

आचार्य, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी भाग खड़े हुए तथा बख्तियार ने भी सिवाय पुस्तकों के वहाँ और कुछ नहीं पाया तो जलभुन कर खाक हो गया और उसी प्रतिहिंसा में उसने ग्रंथागार में आग लगवा दी। यदि यही ऐतिहासिक सत्य है तो निश्चय ही बड़े महत्त्व का है।

भारत की तुलना में सुमेर, बेबिलोन आदि का इतिहास न मिलने का यही कारण है-- प्रभूत लेखन का अभाव तथा उन देशों का सीमित क्षेत्रफल! चिरकाल तक सुमेर तथा वेविलोन के लोग चेष्टाओं, संकेतों तथा चित्रलिपियों से काम चलाते रहे। अक्षरात्मक लिपि का आविष्कार कर लेने के बाद भी उन्हें चित्रलिपि में ही सुविधा मिलती थी। आज वहाँ जो **गुन्द्रपाषाण** (सुमेरशासना उरकगिना द्वारा स्थापित 2900 ई.पू.) तथा नरामसिन पाषाण (बेबिलोन शासक नरामसिन 2750-2700 ई.पू. द्वारा स्थापित स्मारक) उपलब्ध हैं उनके आलेख चित्रलिपि में ही हैं। सुमेर, बेबिलोन, असुर, हित्ती, मितानी तथा मिस्री संस्कृति को यदि मिलाकर देखा जाय तो प्रमाण के रूप में कुछेक स्रोत ही मिल पाते हैं। वे इस प्रकार हैं --

1. सम्राट् दुंगी की आचार संहिता (2450-2400 ई.पू.)।

2. सुमेर नरपतियों की लिम्पू-सूचियाँ (प्रत्येक राजा नए वर्ष के प्रथम दिन प्रजा के साथ समारोह मनाता था तथा नई लिम्पू सूची जारी करता था।) ये सूचियाँ पाषाणपट्टों पर उत्कीर्ण होती थी। आश्चर्य है इनमें अनेक पौराणिक भारतीय नरपतियों के भी नाम हैं।)

3. सम्राट हम्मूरबी की विधि संहिता (2923-2080 ई.पू.) 8 फुट ऊँची पाषाणपट्टिका पर उत्कीर्ण 3600 पंक्तियाँ। 285 धाराओं में विभक्त। ऊपर शीर्षचित्र-सूर्यद्वारा हम्मूएबी को समर्पण।

4. उर एंगुर अथवा उन नम्मू की संहिता (1952 ई. में प्राप्त) अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण तथा खंडित।

5. **गेल्गामेश** महाकाव्य, जो कि सुमेरु तथा बेबिलोन-- दोनों का समन्वित कीर्तिग्रंथ है। एटेक के अत्याचारी शासक की कथा। इस महाकाव्य का रचनाकार **वैरोसास** (ई.पू. 280 ई.) एण्टियोकस शेटर। जन्म 330 ई.पू.) के शासनकाल में कैलिड्यन नगर बेबिलोन के मर्दुक मंदिर में पुजारी था। गेल्गामेश मूलतः बेबिलोन का इतिहास है। यह विविध रचनाओं का विश्वकोष माना जाता है। दुर्भाग्य से यह महान् कृति कालकवलित हो गई है। अब केवल उसके स्फुट उद्धरणमात्र मिलते हैं। उद्धृत करने वाले विद्वान हैं-- फ्लेनियस जोसेफस (ई.पू. 33), सेण्ट क्लीमेण्ट (ई.पू. 217), बिसप मूसीवियस।

गेल्गामेश में निबद्ध इतिहास मर्दुक देवता द्वारा तियामत (अथर्ववेद का तैमात) के वध तथा नई सृष्टि से लेकर बैरोसॉस के जीवनकाल तक व्याप्त है। यह दो भागों में विभक्त है-- 1. प्रलय के पूर्व का युग जिसमें दस राजाओं ने चार लाख तीन हजार वर्षों तक राज्य किया। 2. प्रलय के बाद का युग-जिसमें आठ राजवंशों ने छत्तीस हजार वर्षों तक राज्य किया बेबीलोनिया में। परन्तु इस विवरण में सुमेर-शासन का कोई उल्लेख नहीं है। 6. डियोडोरस (ई.पू. प्रथमशती) का यूनानी इतिहास। असीरिया के बारे में सूचना विस्तृत देता है। (अन्य राजसत्ताओं के बारे में सर्वथा मौन)। 7. असुर वेनीपाल (609-626 ई.पू.) के अनेक अभिलेख तथा उत्खनन से प्राप्त प्रायः 30000 ग्रंथ। 8. अदाद निटारी II (911-810 ई.पू.) से असुर वेनीपाल के शासनकाल की प्रत्येक वर्ष की लिम्पू-सूची। 1952 ई. में प्राप्त एक नई लिम्पूसूची से ई.पू. 1300 तक का तिथिक्रम एवं राजसूची प्राप्त। लिम्पूसूचियाँ अभी भी प्राप्त हो रही हैं उत्खननों से। 9. मिस्र के पिरामिडों पर उत्कीर्ण राजनैतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक साक्ष्य। कार्नाक के सूर्यमन्दिर में उत्कीर्ण स्तुति--

नत्रुइ सनुइन त्याउ आसा ससु
पुत्र्रा औ आरफ हरुपन श्वन्तत पुऊन।
अरि बुनफर अरुअन् आंखियु
वदु वातु आब्र बस असआन् सुतन्

ओम् ओषान् रपिन्तु आतन्। --सम्राट् अमनहोतय (चतुर्थ) अखनतन् ई.पू. 14 वीं शती। मिस्र के फराह-शासकों के साथ अन्य राजाओं से सम्बन्ध प्रायः नहीं थे। तथापि सम्राट् दशरथ तथा मिस्र-सम्राट अमनहोतप तृतीय के मध्य प्रभूत पत्राचार था। वे सारे पत्र अप्रर्णा के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। उससे अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ प्रमाणित हो जाती हैं। **कसाइट नरेश** वुर्ग दुरियास का भी अमनहोतम चतुर्थ (अखनतन) से पत्राचार होता था। वे महत्त्वपूर्ण पत्र भी सौभाग्य से उपलब्ध हुए हैं। कसाइट (काश्यप?) राजवंश पूर्णतः वैदिक एवं भारतीय था। बोगाज़कोई (तुर्की) की खुदाई (1895-1905 चेकोस्लावाकिया वि.वि. के प्रो. हाज्नी द्वारा) से प्राप्त हित्ती तथा मितानी राजाओं का सन्धिपत्र भी उस इतिहास का महत्वपूर्ण स्रोत है। हित्ती सम्राट् सुब्बिलुल्युमस ने मितानी सम्राट् दशरथ के पुत्र मतिउजा के साथ अपनी पुत्री का विवाह (1400 ई.पू.) किया था। उसी अवसर पर, चिरकाल से चली आ रही दोनों राजवंशों की शत्रुतासमाप्ति तथा मैत्री-आरंभ (विवाहसम्बध) की स्मृति में सह सन्धिपत्र कीलाक्षर में उत्कीर्ण कराया गया जिसमें साक्षी के रूप में वैदिक देवता मित्र, वरुण, नासत्यौ तथा इन्द्र का उल्लेख है। पश्चिमोत्तर वृहत्तर भारत के इन इतिहास स्रोतों के अनन्तर वे स्रोत भी महत्त्वपूर्ण हैं जो सुनियोजित योजना के अन्तर्गत संस्थाओं अथवा व्यक्तियों द्वारा किये गये हैं। इस प्रकार के प्रयत्न आज भी चल रहे हैं प्रायः समूचे विश्व में-- प्राचीन रहस्यों तथा ऐतिह्यों की जानकारी के लिये। भरत को ही लें। सिन्धुलिपि तथा संस्कृति की समस्या जैसी की तैसी बनी है।

दक्षिणपूर्व बृहत्तरभारत का इतिहास ईस्वी प्रथम शतक के बाद का है। अतः उसका शत-प्रतिशत साक्ष्म हमें उपलब्ध है। तब तक ज्ञान के अनेक साधन उपलब्ध थे, लेखनकला भी विकास की पराकाष्ठा पर थी। फलतः प्रथम शती ई. से पन्द्रहवीं (1478 ई.) शती तक का दक्षिण-पूर्व एशिया (वृहत्तर भारत) का इतिहास पूर्णतः प्रकाश में है।

कोई यह प्रश्न कर सकता है कि मैं **'पश्चिमोत्तर वृहत्तर भारत'** शब्द, क्यों और किस आधार पर गढ रहा हूँ। पाश्चिमोत्तर वृहत्तर भारत शब्द का प्रयोग तो संभवतः भारत में अभी तक किसी इतिहासकार ने भी नहीं किया है? तो इसका सीधा सा उत्तर मैं यही देना चाहता हूँ कि सत्य का प्रकाशन करने के लिये कोई शुभ घड़ी, नक्षत्र एवं तिथि नहीं होती। सत्य जब भी प्रतिभासित हो जाय अन्तःकरण में तभी उसका प्रकाशन कर देना चाहिये।

मेरी यह दृढ़ आस्था है, अपने गहन तथा नैष्ठिक अध्ययन के आधार पर, कि सुमेर, बेबिलोन असर हित्ती, मितानी कसाइट तथा मिस्री-सारी की सारी संस्कृतियाँ (1) भारतीयों द्वारा स्थापित एवं विकसित की गई थी (2) भारतमूलक थीं तथा (3) भारतीय धर्म एवं पुराकथाओं पर आधारित थीं। अपनी स्थापना के समर्थन में जो ठोस साक्ष्म मैं दे रहा हूँ, कृपया उनपर ध्यान दें। ये तथ्य, इदम्प्रथमतया केवल मेरे द्वारा प्रस्तुत किये जा रहे हैं क्यों कि मैं संस्कृतज्ञ हूँ। **संस्कृत के बिना, भारत को तो छोड़िये, विश्व के बारे में भी आप कुछ नहीं जान सकते। संस्कृत ही कुञ्जी है ज्ञान के निरुद्ध-द्वार की।** कृपया ध्यान दें-

1. सुमेर, बेबिलोन, असुर, हित्ती, मितानी तथा कसाइट (काश्यपीय) संस्कृतियों में वैदिक देवों की ही उपासना का प्रचलन था।

2. इन सारी संस्कृतियों में महाप्रलय का वर्णन मूलतः भारतीय **ऐतरेय ब्राह्मण** में स्थित इडोपाख्यान पर आधारित है।

3. कैल्डियन युग के प्रख्यात इतिहासकार बैरोसास (ई.पू. 280) ने देवताओं द्वारा जिस **तियामत** के वध का वर्णन किया है वह भारतीय अथर्ववेद की **तैमात** ही है कोई और नहीं-- निर्वै क्षत्र नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोतिसर्वम्। यो ब्राह्मणं मन्यते अन्तमेव स विषस्य पिवति **तैमातस्य**।। ---- अथर्व. 5.18.4 (ब्रह्मगवी)।

4. मिस्त्र देश की पुराकथा के अनुसार पहले वहाँ **एमेन रे** (सूर्य) ने राज्य किया। उसके अन्तरिक्ष में जाने बाद, उसके जुड़वाँ पुत्र एवं पुत्री (ओसीरस तथा आइसिस) ने परस्पर विवाह कर लिया। परन्तु प्रजा ने इस पापाचार के कारण ओसिरस का वध कर डाला। तथापि आइसिस ने गुप्तरूप से उसे गुफा में सुरक्षित रखा। दोनो पुनः दम्पतीभाव से रहने लगे। उनके संयोग से ही **होरेस** नामक तेजस्वी पुत्र पैदा हुआ। तब माता-पिता, साम्राज्य होरेस को सौंप कर पाताललोक चले गए रहने के लिये। भाई-बहन के इस विवाह पर स्पष्टतः ऋग्वेद के **यम-यमी सूक्त** का प्रभाव है। इस पुराकथात्मक तथ्य का परिणाम यह हुआ कि मिस्र के फराह राजाओं में सगी बहनों से विवाह करने की अनिवार्य परम्परा चल पड़ी। कुछेक ने तो अपनी विमाता (अमन होतप चतुर्थ ने अपनी विमाता **तदुकिया** से विवाह किया-- ई.पू.1300) तथा पुत्रियों तक से विवाह किया (मिस्त्र के 19वें राजवंश के संस्थापक सेती के उत्तराधिकारी रैमेसिस ने 126 ई.पू. हित्ती राजकुमारी के साथ ही साथ अपनी पुत्रियों से भी विवाह किया ताकि सुन्दर सन्ततियाँ हों। उसकी अपनी ही सन्ततियों की संख्या 150 थी।

5. बेबिलोन सम्राट् हम्मूरबी की विधिसंहिता (8 फुट ऊँची पाषाण शिला पर 3600 पंक्तियाँ) के शीर्षभाग में भगवान् सूर्यद्वारा विधिसंहिता को हम्मरबी को अर्पित करते उत्तीर्ण किया गया है। मैं उसे स्पष्टतः भारतीय प्रभाव मानता हूँ। महर्षि वैशम्पायन के असन्तुष्ट होने पर उनके शिष्य याज्ञवल्क्य ने गुरुप्रदत्त याजुषमंत्रों को, योग द्वारा वमित कर दिया था जिसे अन्य शिष्यों ने तित्तिररूप धारण कर ग्रहण कर लिया। फलतः कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा प्रकट हुई। परन्तु याज्ञवल्क्य ने घोर तप करके भगवान् सूर्य से वही याजुषमंत्र पुनः प्राप्त कर लिये। दोपहर के प्रकाश में सूर्य द्वारा प्रदान किये जाने के ही कारण इन मंत्रों को (क) शुक्लयजुर्वेद (ख) माध्यन्दिन संहिता तथा (ग) अश्वरूप धारी सूर्य से प्रोक्त होने के कारण वाजसनेयी संहिता कहा गया। देवताओं द्वारा ज्ञान प्रदान करने की परम्परा भारत में सदा से रही है (सूर्य से हनूमान् को विद्यादान, शिव से पाणिनि को व्याकरण तथा तण्डु को उद्धतनृत्य-शिक्षा, धन्वन्तरि से महर्षि अग्निवेश की आयुर्वेद, ब्रह्मा तथा इन्द्र से व्याकरण-परम्परा का प्रवर्तन, विश्वकर्मा से स्थापत्य का प्रवर्तनादि)। निश्चय ही इस परम्परा का ज्ञान सम्राट् हम्मूरबी को रहा होगा। फलतः पूर्वोक्त चित्र शिला में इसे उत्कीर्ण कराया गया।

मेरे उक्त पाँच तर्क विद्वानों की सम्परीक्षा का विषय हैं। परन्तु इस स्थापना में कुछ मूर्द्धन्य विद्वानों का भी समर्थन है, जैसे डॉ. राजबली पाण्डे, प्रो. ए. एल्. वाशम तथा डॉ. हाल। जैसा मैंने कहा कि पृथ्वी के गर्भ में प्रसुप्त इन संस्कृतियों को जानने का प्रयास अठारहवीं शती में ही प्रारंभ हो गया। मैं उसका एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ--

1. आधुनिक इतिहास के पिता कहे जाने वाले यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने जब यूनान एवं फारस (ईरान-पर्सिया) के संघर्ष की पृष्ठभूमि जानने के लिये ई.पू. पाँचवीं शती में बेबीलोन, असीरिया की यात्रा की तो उन्हें सुमेर संस्कृति का कोई पता नहीं चला।

2. टीसियस (415-398 ई.पू.) हखामनी सम्राट अर्तजर्क्सीज़ का राजवैद्य, साथ ही इतिहासकार भी था। परन्तु वह भी सुमेर-संस्कृति के बारे में मौन है।

3. बैरोसास (ई.पू. 280) कैलिडयन-सम्राट् एण्टियोकस के शासनकाल (ई.पू. 330) का इतिहासकार है। बेबिलोनिया का ही इतिहास लिखता है। अन्तियोकस तथा टालमी का उल्लेख अशोक के शहबाजगढ़ी शिलालेख में है।

4. नवीनिडस (555-538बीसी) कैल्डिया का अन्तिम सम्राट् है। परन्तु वह एक पुरातत्ववेत्ता तथा इतिहासकार भी था। उसने सम्राट् नरामसिन के अभिलेखों की खोज कराई। परन्तु परवर्ती इतिहासविद उसकी तिथियों को अशुद्ध तथा काल्पनिक ही मानते हैं।

वस्तुतः सुमेर, बेबिलोन आदि को पूर्ण प्रकाश में लाने का श्रेय बोट्टा, लेयाई, हिङ्क्स, फ्रेनेल, किंग टामस, जार्ज स्मिथ, द सार्जाक, कोल्डीवी, मारिट्ज, हिल्प्रेक्ट, वूली, रालिन्सन तथा क्रेमर आदि पुरातत्त्वविदों को है।

5. सन् 1850 में सर्वप्रथम हिंक्स ने यह बात कही कि बेबीलोन ने कीलाक्षर लिपि (क्यूनीफार्म) को एक प्राचीनतर जाति से सीखा जो स्वयं को सुमेर (बाइबिल में उल्लिखित शिन्नार) मानती थी। इनका निवासक्षेत्र दक्षिणी बेबिलोनिया था। आपर्ट ने ही उन्हें 'सुमेर' नाम दिया।

6. इसी समय टालिंसन ने कुछ ऐसे अभिलेख ढूँढ निकाले जिनमें मूल सुमेर शब्दावली बेबीलोनी-अनुवाद के साथ दी गई थी। इससे सुमेर भाषा की पृथकता तथा उसके पृथक् अर्थ का बोध हुआ।

7. 1854 ई. में दो विद्वानों ने उर, एरडू तथा एरेक नामक नगरों में उत्खनन कराया।

8. उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में फ्रेञ्च विद्वानों ने उत्खनन में लगश नामक नगर से सुमेर राजाओं की (लिम्पू) सूचियाँ प्राप्त की।

9. 1889-98 तक निप्पुर नगर के उत्खनन से अनेक सुमेर-साहित्य के अभिलेख प्रकाश में आये।

10. 1929 में अमेरिकन विद्वान् वूली को उर नगर के उत्खनन में प्रसिद्ध राजसमाधि तथा कोष (खजाना) मिला जिससे सुमेरियन सभ्यता तथा इतिहास पर स्थायी मुहर लग गई।

11. Orient Institute of Uni of Chicago तथा University Museaum in Philotelbia द्वारा निप्पुर में पुनः खुदाई कराई गई जिसमें सैकड़ों महत्वपूर्ण अभिलेख मिले।

12. 1952 ई. में कराई गई एक खुदाई में सुमेर राजाओं की अनेक प्राचीन लिम्पूसूचियाँ मिलीं जिससे ई.पू. तेरहवीं शताब्दी तक के राजाओं का क्रामिक बोध हो जाता है।

13. खुदाइयों का यह काम चल ही रहा है। अभी कुछ महीने पूर्व अमर उजाला (30 जून 2019) में प्रकाशित एक सचित्र सूचना के अनुसार टिग्रिस (फरात) नदी के शुष्क प्रपात में एक विशाल मितानी राजमहल मिला है। नदी के मार्गपरिवर्तन से यह महल जमीन के ऊपर आ गया। इसका गहन अध्ययन किया जा रहा है।

वर्तमान ईराक, जिसे प्राचीन काल में मेसोपोटामिया कहा जाता था ईरान के पश्चिम में है। इसका उत्तरी भाग अक्काद तथा दक्षिणी भाग शिन्नार अथवा सुमेर कहा जाता था। उत्तर से दक्षिण की ओर बहने वाली दजला तथा फरात नदियों की अन्तर्वेदी में विद्यमान ये दोनों क्षेत्र प्राचीन काल से ही प्रतिस्पर्धी राजसत्ताओं की क्रीड़ाभूमि रहे हैं। दक्षिणी भाग में सुमेर जाति के लोगों का शासन था जिन्हें प्रो. हाल आदि ने विशुद्ध भारतीय (द्रविड़) भारतीय माना है, शरीर-संरचना के आधार पर। उत्तरी भाग, जो अक्काद नाम से प्रसिद्ध था, उसमें सैमेटिक बेबिलोनियों का शासन रहा। ये राज्यसीमाएँ कभी सम्पृक्त भी रही, विशेषतः जब कोई प्रताप-ऐश्वर्य मण्डित शासक स्वयं को **सुमेर एवं अक्काद** का समन्वित शासक घोषित कर देता था। ऐसा इतिहास में अनेक बार हुआ।

उर, क्रिश, एरड्ड, एरेक, निप्पुर, लगश, बेबिलोन, सरगोनपुर, निनेवेह, सिप्पर, बूथा, ओपिस, लाटसा, ईसिन, मुर्दुक आदि इस क्षेत्र के नगर थे। उन्ही नगरों में स्थापित छोटे-छोटे नगर-राज्य समय तथा समर्थ व्यक्ति को पाकर महाशक्ति बन जाते थे तथा समूचे सुमेर तथा अक्काद पर राज्य करते थे। दजला नदी के दोनों तटों पर बसा उत्तरी बेबीलोन नगर, चिरकाल तक विश्वप्रसिद्ध रहा- पाटलिपुत्र, उज्जयिनी, रोम तथा एथेंस की तरह। मिस्र के नगर थीव्स (तेल अक्त अमर्णा) कार्नाक तथा ईरान के नगर एलम आदि भी राजसत्तात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे। इस क्षेत्र में महाभारतकाल से पूर्व भारतीय शासनसत्ता (ई.पू. छठीं सहस्राब्दी से लेकर टिब्रस्तारम्म तक) विद्यमान रही।

शिमला, (हि.प्र.)
मो. 9418041537

विज्ञानामृत भाष्य में जगत्प्रपंच निरूपण एवं उसकी समीचीनता

विद्या सागर

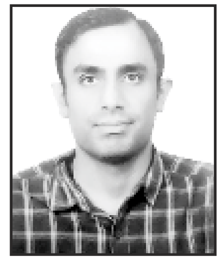

प्रस्तावना - प्रस्थात्रयी के अन्तर्गत परिगणित ब्रह्मसूत्र वेदान्तदर्शन का महनीय ग्रंथ पुष्प है। इस पर शंकराचार्य का भाष्य शारीरक या शांकरभाष्य कहलाता है जिसने केवलाद्वैतवाद की स्थापना की गयी है। अनन्तर भास्कराचार्य कृत भाष्कर भाष्य में भेदाभेद, रामानुज कृत श्रीभाष्य में विशिष्टाद्वैत, मध्याचार्य कृत पूगप्रज्ञ भाष्य में द्वैत, निम्बार्काचार्य कृत वेदान्तपारिजातभाष्य में द्वैताद्वैत, श्रीकण्ठ रचित शैवभाष्य में शैवविशिष्टाद्वैत, श्रीपति रचित श्रीकरभाष्य में वीरशैवविशिष्टाद्वैत, वल्लभाचार्य कृत अणुभाष्य में शुद्धाद्वैत, बलदेव रचित गोविन्दभाष्य में अचिन्त्य भेदाभेद तथा विज्ञानभिक्षु रचित भाष्य विज्ञानामृत माध्य में अविभागाद्वैत की स्थापना की गयी है।[1] प्रस्तुत शोध पत्र में आचार्य विज्ञानभिक्षु के द्वारा विज्ञानामृत भाष्य में जगत् प्रपंच का विशिष्ट वर्णन प्रतिपादित किया गया है। जहाँ पर विज्ञानभिक्षु ने जगत् प्रपंच की वास्तविक सत्ता के विषय पर पूर्ण विश्वास रखते हुए यह माना है कि जगत् प्रपंच नाम और रूप से व्याकृत होकर दृश्यमान है। यह चेतन और अचेतन दोनों से मुक्त है। जगत् एवं ईश्वर विवेचन में वह अविभागाद्वैत को स्थापित करते दिखते हैं।

(कूटशब्द : बहुविध विज्ञाकृत, प्रपंच, विपरिषत, निनिध्यासन, त्रिपृत्वरण, अपंचीकृत, ईश्वरोपाधिभूत, अग्निविस्फुलिग्वद)।

महर्षि वादरायण रचित ब्रह्मसूत्र के बहुविध भाष्यकारों में आचार्य विज्ञानभिक्षु का नाम आदर पूर्वक लिया जाता है। इन्होंने तीन दर्शनों पर भाष्यग्रन्थ लिखे हैं 1. सांख्यसूत्र पर सांख्यप्रवचनभाष्य 2. योगसूत्र पर योगवार्तिक एवं 3. ब्रह्मसूत्र पर विज्ञानभाष्य। इनका जीवन-काल 1550-1600 ई. है। ब्रह्मसूत्र पर लिखे गये इनके भाष्य का नाम विज्ञानामृत भाष्य है। विज्ञानामृत भाष्य में आचार्य विज्ञानभिक्षु ने जगत् प्रपंच का विशिष्ट विवेचन किया है। जगत् प्रपंच की वास्तविक सत्ता के सम्बन्ध में आचार्य विज्ञानभिक्षु को पूर्ण विश्वास है। जगत् प्रपंच 'नाम' और 'रूप' से व्याकृत होकर दृश्यमान हो रहा है। यह चेतन और अचेतन दोनों से मुक्त है। जगत् के सकल व्यापार, देश काल और संस्थान की दृष्टि से प्रतिनियत है। जगत् की आदि, मध्य अथवा अन्त, प्रत्येक दशा सुनिश्चित रीति से उपस्थित है, उसमें किसी प्रकार की यदृच्छा अथवा अनृतता नहीं है। सब कुछ पूर्णतया संश्लिष्ट है। ऐसे विपुल एवं विशाल जगत् की रचना का प्रकार इतना विचित्र दुर्गम है कि आचार्य ने साफ शब्दों में जगत्

को अचिन्त्य रचनात्मक कहा है। यह जगत् उत्पन्न होता है, विपरिणत होता है, क्षीण होता है, और नष्ट होता है। उत्पत्ति इत्यादि छहों धर्म इस जगत् प्रपंच में पाए जाते हैं। जो बारी-बारी से इस धर्मो में बताए जाते हैं। चाहे इन छः रूपों में से जिस अवस्था में यह रहे, रहता तो यह जरूर है। इसका आत्यन्तिक नाश असम्भव है। इसकी सत्ता सार्वकालिक है।[1]

वास्तव में महर्षिवादरायण जब ब्रह्म के स्वरूप लक्षण के विषय में 'जन्माद्यस्य यतः' की बात करते हैं, वहीं पर जगत् के विषय में उनके चिन्तन का प्राकट्य होता है। तैत्तरीय उपनिषद में भी वर्णन मिलता है। **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।**[2] अर्थात जगत् के जन्मादि उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जिससे होता है, यह ब्रह्म है और उसी के प्रकाशतुल्य ज्ञान से अंधकारतुल्य अज्ञानादि की निवृत्ति से अज्ञानमूलक संसार-बन्धन की निवृत्ति होती है। **अशब्दमस्पर्शरूपमव्ययम्**[3] इत्यादि श्रुतियों के अनुसार ब्रह्म के शब्दादि सब गुणों से रहित और निर्विकार, अत्त, अखण्ड स्वरूप होने से केवल ब्रह्मा सर्वात्मा निर्विशेष में किसी प्रकार की कारणता किसी प्रमाण से भी नहीं सिद्ध हो सकती है। इसलिए सभी कारणाबोधक श्रुतियों में गुणोपसंहार न्याय का संबन्ध है। इससे **अद्वितीयो मायया ह्यनदिव।**[4] **मायी सृजते विश्वमेतत्। माययां तु प्रकृति विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।।**[5] **इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।**[6] आदि अद्वितीय, सर्वात्मा ब्रह्म, माया वैदिकवचनों से स्पष्ट है कि मायायुक्त ईश्वर ही इस जगत् की सृष्टि करता है। माया को तो जगत् की प्रकृति- उपादान कारण जानो, और मायी को महान् ईश्वर- जगत् का कर्ता समझना चाहिए। ईश्वर मायात्मक शिक्तयों से ही बहुरूपता को प्राप्त होता है। वैसे तो श्रुतियों के विवरणानुसार ब्रह्म से आकाश की और आकाश से वायु की उत्पत्ति कही गई है, जिससे सम्पूर्ण जगत् का कारण ब्रह्म नहीं कहा जा सकता है, तथापि स्वकार्य में कारण के प्रवेशादि से आकाशादि में प्रविष्ट सशक्ति ब्रह्म की आकाशादि रूपता से आकाशादिजन्य वायु आदि भी ब्रह्मजन्य ही होते हैं, इससे सब जगत् का कारणत्व ब्रह्म का लक्षण ठीक दिखलायी पड़ता है, और मायाजन्य जगत् के होने के कारण माया के अधिष्ठान शुद्ध ब्रह्म में विवर्त की उपादानतारूप तथा साक्षीरूप से प्रकाश कर्तृत्तारूप उभयविध कारणता स्पष्ट होती है। मायी ईश्वर में माया अंश से उपादानता और स्वरूप से कर्तृता है, इससे निर्गुण सगुण सोपाधिक निरुपाधिक तभी स्वरूप ब्रह्म का जगत् हेतुत्व लक्षण है। ब्रह्म सम्बन्ध से रहित तथा ब्रह्मात्मा से भिन्न सब जड़ों से कुछ हो नहीं सकता है इस लक्षण के द्वारा सर्वाधिष्ठानादि स्वरूप सर्वात्मा ब्रह्म को जानकर अज्ञानजन्य बन्धनादि को निवृत्त करने का प्रयास करना चाहिए।[7]

'ब्रह्मसूत्र' के अनुसार जगत् की उत्पित्त आदि का कारण ब्रह्म है। चूंकि माया से संयुक्त ब्रह्म ईश्वर है, इसलिए कहना चाहिए कि जगत् का (उपादान) कारण ईश्वर है। विवरण के मत में माया की उपाधिवाला चैतन्य अर्थात् ईश्वर ही जगत् का उपादान कारण है। **'पदार्थतत्त्वनिर्णय'** के रचयिता के मत में ब्रह्म जगत् का विवर्त कारण है और माया या अविद्या परिणामी कारण है, जैसे सांख्य की प्रकृति वाचस्पति मिश्र के मत में, माया सहकारी मात्र है और ब्रह्म विश्व का विवर्त कारण है। जगत् के मिथ्यात्व का सिद्धान्त अद्वैत वेदान्त का महत्त्वपूर्ण अंग है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु शंकर के ग्रन्थों में सृष्टि के सम्बन्ध में कुछ दूसरे विचार पाये जाते हैं। शंका जहाँ एक और जगत् को मिथ्या और ब्रह्म का विवर्त कार्य तथा ब्रह्म को विवर्त कारण बतलाते हैं, वहाँ कहीं-कहीं उपनिषदों की व्याख्या करते हुए उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि ब्रह्म (वस्तुतः) जगत् का कारण है। (सर्प का रज्जु विवर्त कारण है, सर्प रज्जु का विवर्त कार्य है, यहाँ कारणता वास्तविक नहीं है।) छान्दोग्य उपनिषद पर भाष्य करते हुए शंकाराचार्य कहते हैं कि उस सत् ने ईक्षण किया (देखा या चाहा) कि मैं अनेक रूप होकर

उम्पन्न होऊँ, वहाँ वास्तव में सत् में कारणता माननी चाहिए। छान्दोग्य उपनिषद के भाष्य में शंकर लिखते हैं कि जगत् चैतन्य सत् का कार्य है, यही मानना ठीक है।[8] यहाँ उपनिषद के अनुरोध से शंकर ब्रह्म में वास्तविक कारणता मानते हैं। इस प्रकरण में एक जगह वे जगत् को सत् भी कह गये हैं। सत् ब्रह्म ही द्वैतादि-भेद से अन्यथा गृहीत होता है, इसलिये हम कहते हैं कि कहीं कुछ भी असत् नहीं है।[9] वास्तविकता यह है कि शंकर कहीं तो विवर्तवादी की भाँति लिखते हैं और कहीं सत्कार्यवादी की तरह। वे दोनों सिद्धान्त वस्तुत एक दूसरे से विशेष दूर नहीं हैं।

शंकराचार्य के गुरु गौड़पाद जगत् को मिथ्या मात्र कहते हैं। यह द्वैत रूप प्रपञ्च माया मात्र है। परमार्थ रूप से यह अद्वैत है। यथार्थ में भेद नामक कोई वस्तु नहीं है। यह सारा प्रपञ्च ब्रह्म का विवर्त मात्र है। माण्डूक्य कारिका के वैतथ्य प्रकरण में चौथे श्लोक की टीका में शंकराचार्य लिखते हैं कि जाग्रत अवस्था में दृश्यमान भाव पदार्थ मिथ्या है। क्योंकि वे दृश्य हैं, स्वप्न में दिखने वाले भाव पदार्थों की तरह है।[10] गौड़पाद की दूसरी युक्ति यह है कि जो आदि में नहीं और अन्त में नहीं है, वह वर्तमान काल भी वैसा ही है।[11] नागार्जुन के समान गौड़पाद किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं मानते। वे अजातिवाद के समर्थक हैं। नानात्व से भरा यह जगत् मिथ्या है। इस नानात्व का आश्रय स्वयं ब्रह्म है, परन्तु ब्रह्म स्वयं वैभिन्य और नानात्व से रहित है। इसको समझाते हुए शंकर कहते हैं कि अपने दैनिक जीवन में हम रस्सी को सर्प के रूप में देखने की भूल प्रायः करते हैं। इस भ्रम में रस्सी सर्प दिखायी देती है फिर भी भ्रम दूर होने पर, हम यह जानते हैं कि रस्सी में सर्प का नितान्त अभाव था, और है। सर्प रस्सी में कभी नहीं था। रज्जु सर्प भ्रम की पहेली का यही रहस्य, शंकराचार्य के अनुसार, विश्व पहेली का रहस्य है। जगत् और ब्रह्म में वही सम्बन्ध है जो रज्जु सर्प भ्रम के सर्प और रस्सी में है। जिस प्रकार रज्जु में सर्प प्रतीत होता है, उसी प्रकार ब्रह्म में जगत् प्रतीत होता है।

जगत् की सार्वकालिक सत्ता को तर्क से पुष्ट करते हुए विज्ञानाभिक्षु ने कहा है कि ब्रह्मसूत्रकार को भी यही मत अभीष्ट है अन्यथा **'जन्माद्यस्य यतः'**[12] सूत्र का रूप **'एतद्यतः'** ही होता है। अव्यक्त रूप से जगत् नित्य है।[13] संसार को अनित्य मानने वाले वेदान्तियों को विज्ञानभिक्षु ने बौद्ध-प्रभेद ही कहा है। **'असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाडुरनीश्वरम्। अपरस्परस्तम्भूतं किमन्यत्कानहैतुकम्।।'**[14] इत्यादि गीतावाक्य का भी उन्होंने प्रमाण उपस्थित किया है। इतना ही नहीं यह भी तर्क उन्होंने दिया है कि बन्धमोक्ष इत्यादि सब मिथ्या होने पर श्रवण-मनन और निदिध्यासन इत्यादि के लिए कभी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। 'सर्वन् अनित्यम्' मानने वालों के पास सत् प्रमाण भी नहीं हो सकते जिसके बल से वह संसार को अनित्य सिद्ध कर सकें।

यदि जगत् शब्द का निर्वचन अर्थ लें तो हम देखेंगे कि यह एक विशेषण शब्द जो संस्कृत के गम् धातु से विवप प्रत्यय आकर द्वित्व होकर बना है अपने में एक गहरा अर्थ दबाए है।[15] जगत् का अर्थ है गतिशील। ऋग्वेद में सूर्य को चराचर की आत्मा कहा है। चर के लिए जगत् शब्द का प्रयोग हुआ है।[16] न्यायवैशेषिकमत वालों ने जगत् को अचेतन परमाणुओं का संघात माना था। इस संघात को गतिशील रखने के लिए जिस प्रकार से ईश्वर की कल्पना की गई वह काफी अर्थ खो चुकी है। सांख्यों ने इस जगत् को त्रिगुणमयी मूलाप्रकृति की विकृति या परिणाम माना। विज्ञानवादियों ने कहा कि जगत् स्वप्न सदृश है। भूखे को भोजन करने के बाद जो तृप्ति होती है उस तृप्ति को आप कैसे नकार सकते हैं? उसी प्रकार स्वयं इन्द्रिय सन्निकर्ष से वस्तुओं को प्राप्त कर रहा मनुष्य कैसे कहा सकता है कि मैं बाह्य पदार्थों को नहीं देख रहा।

विज्ञानभिक्षु का कहना है कि जगत् सृष्टि दशा में व्यज्यनान् स्थिति दशा में व्यक्त और प्रलय दशा में

अव्यक्त रहता है। उत्तकी अत्यन्त सत्ता कभी मानी नहीं जा सकती। जगत् को स्वप्न माया गन्धर्व नगर की भांति माननेवाले को प्रमाण प्रमेय व्यवहार का अभिमान करना उनकी दृष्टि में सर्वथा तिरस्करणीय तथा धिक्करणीय है सत्कार्यवादी निष्ठा ने उन्हें जगत् को नित्य मानने को विवश कर दिया है।[17]

शंकराचार्य जगत् को चैतन्य से ही आविर्भूत मानते हैं। आत्मा का चित्त के साथ सम्बन्ध ही आत्मा को चैत्य का ज्ञेय बनाता है अन्यथा वह ज्ञेय नहीं, दूसरे चित्त आत्मा के सम्पर्क के बिना रह ही नहीं सकती। विज्ञानभिक्षु मानते हैं कि जीव की सृष्टि ब्रह्म से वैसे ही समझनी चाहिए जैसे अग्नि से स्फुलिंगों की। इस बात को तथा जड़ पदार्थो की सृष्टि को व्यापक रीति से निर्दिष्ट करने के लिए सम्पूर्ण संसार की सृष्टि तथा उनका क्रम प्रस्तुत करना अधिक वांछनीय होगा। आचार्य विज्ञाननिक्षु की शैली स्पष्ट सारी बातों की इक्ट्ठी कहने की है और कभी-कभी एक नहीं अनेक स्थानों पर उसी बात को दुहराने की प्रवृत्ति रहती है। जिस बात पर उनका विश्वास है चाहे कितनी ही विरोधपूर्ण बात क्यों न हो उसे सिद्ध करने के लिए वह हमेशा तत्पर दिखते हैं। कोई बात को दबी जबान कहनी उन्हें पसन्द नहीं। पूरे संसार की सृष्टि का अधिष्ठान ईश्वर या ब्रह्म है। पुरुष और प्रकृति दोनों ब्रह्म की अन्तर्लीन शक्तियाँ हैं जो पुरुष से अव्यक्ततता से व्यक्तता की और उन्मुख होती हैं।

सर्वप्रथम सृष्टि प्रक्रिया के क्रम में महत् की उत्पत्ति होती है। इस महत् का स्वरूप दो भागों विभक्त है। इस महत् की क्रियात्मक शक्ति का नाम प्राण और इसकी अध्यवसायात्मक शक्ति का नाम बुद्धि है। प्राण में प्रकृति का धर्म (क्रिया रूप) और बुद्धि में पुरुष का धर्म (चेतनता रूप) अधिक उद्भूत प्रतीत होता है। इसके पश्चात् जैसे बीज रूपी अंकुर वृक्ष रूपता को प्राप्त करने लगता है, उसी प्रकार महत्व से अहंकार रूपी अन्तःकरण की वृत्ति-विशेष उत्पन्न होती है। उससे उसी प्रकार से मन के बाद इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं और उसके बाद अहंकार से ही इन्द्रियों की ही भांति परस्पर कार्य कारणभावा रहित पांचों तन्मात्राएँ उत्पन्न होती है।[18] इन तन्मात्राओं को सूक्ष्मतर भूत समझना चाहिए। इन पाँचों तन्मात्राओं से स्थूल महाभूतों के सूक्ष्म परमाणु उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् तैत्तिरीय और छान्दोग्योपनिषद में बताए गए क्रम से प्रथमतः आकाश फिर उससे वायु उससे अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुए ऐसा विवरण हमें प्राप्त मिलता है। उसके बाद छान्दोग्योपनिर्षर्दिष्ट में रीति से त्रिवृत्करण के द्वारा ब्रह्माण्डादि की सृष्टि हुई। आधुनिक अद्वैत वेदान्तियों के द्वारा माना गया पंचीकरण का सिद्धान्त विज्ञाननिक्षु की दृष्टि में ब्रह्माण्डादि-सृष्टि के सम्बन्ध में सर्वथा त्याज्य एवं दूषित है क्योंकि अपंचीकृत महाभूतों से ही ब्रह्माण्डादि की सृष्टि सम्भव है। उदाहरण के लिए सुवर्गादिक तैजस पदार्थो में अथवा तैलादि पार्थिव पदार्थो में क्रमशः पृथ्वी और जलादि की मात्रा, अन्य भूतों की मात्रा की तुलना में अतिशय अधिक देखने को मिलती है। वस्तुत ब्रह्माण्डादि सृष्टि पदार्थों में मुख्यतः त्रिवृत्करण मुख्य प्रक्रिया है। गौण सन्निवेश अन्य दो भूतों का भी हो जाता है। यदि इस धर्म में पंचीकरण का प्रयोग किया जाये तो त्रिवृत्करण के द्वारा अतिदेश करके यह प्रयोग ग्रहण किया जा सकता है। उन वेदान्तियों की विशिष्ट व्यवस्था वाले पंचीकरण के लिए तो सृष्टि प्रक्रिया में कोई गुंजाइश नहीं है। यह एक असमीचीन मान्यता मात्र है।

पुराण-परायण आचार्य विज्ञानभिक्षु ने सृष्टिक्रम के परिवर्तनों को भी मानने की इच्छा प्रकट की है कि अन्य स्मृतियों में यदि यह क्रम व्युत्क्रान्त बताया गया हो तो उसे कल्पभेद के द्वारा समाधेय समझना चाहिए। इस प्रकृति और पुरुष के संयोग को करनेवाला ईश्वर है। सांख्याचार्यो के मत की भांति केवल अयस्कान्त और लौह सदृश प्रकृति पुरुष का संयोग नहीं हुआ करता है।[19] जब प्रश्न यह उठता है कि क्या चिन्मात्र पुरुष में भी संयोग-क्रिया सम्भव है?

इसका उत्तर आचार्य ने इस प्रकार दिया है कि ईश्वर अथवा परब्रह्म। प्रकृति पुरुष-संयोग सर्वथा सम्भव है क्योंकि प्रकृति गुणत्रय रूप है अतः परिछिन्न गुणांशों से उसमें क्षोभ सम्भव है और पुरुष की उपाधि की स्थिति के कारण उसने भी संयोग हो सकता है।[20]

सृष्टि में कोई नई वस्तु उत्पन्न नहीं होती अपितु आचार्य विज्ञानभिक्षु की अर्थ परम्परा में अनभिव्यक्त अथवा अव्यक्त दशा में स्थित वस्तुएँ अभिव्यक्त या व्यक्त होती हैं।[21] सत्कार्यवाद की ही पूर्ण स्थापना यहाँ पर की गयी है। न तो प्रलय दशा में किसी वस्तु का अत्यन्त उच्छेद ही होता है बल्कि अभिव्यक्त विकार अव्यक्तवस्था को प्राप्त करते हैं। एक बात इस प्रसंग में अवश्य स्मरणीय है कि इन विकारों की विकार दशा के परिगणित होते रहने के कारण इनकी सत्ता कूटस्थ नित्य ब्रह्म की सत्ता के समान नहीं है। उस तुलना जगत्प्रपंच की सत्ता शाश्वतिक होने पर भी कूटस्थ नित्य नहीं और न तो माया गन्धर्व नगर के समान प्रातिभासिक ही है। इसको हन परिणामिनित्यता कह सकते हैं। अतः उत्कृष्ट पारमार्थिक सत्ता केवल ब्रह्म की ही है प्रकृति और उसके विकारों की सत्ता उस रूप की नहीं है। प्रकृति परिगामिनी है। यही नाना विकारों में परिणत होती रहती है। सारी सृष्टि प्रकृति के विचित्र परिणामों का मेला या प्रदर्शनी है। आचार्य विज्ञानभिक्षु ने सृष्टि की कारणता में परिणामवाद के समर्थकों में ही प्रधानता दी है अतः परिणामवाद के समर्थकों में ही उनकी गणना की जायेगी।[22] यह प्रकृति ईश्वरोपाधि नहीं है। ईश्वरोपाधिभूत माया अपरिणामिनी है उससे सृष्टि सम्भव नहीं है। सृष्टि तो ईश्वर की अन्तर्लीन शक्तिभूत परिगामिनी प्रकृति से ही सम्भव है।

आचार्य विज्ञानभिक्षु ने इस प्रकृति के दो रूपों को स्वीकार किया है। 1. अल्पतमोगुणवाली और 2. अधिकतमोगुणवाली। इन्हीं दोनों रूपों से पुरुष के सानिध्य वशात् अल्पतमोगुणवाली और शुद्ध जड़ात्मक वस्तुओं का विधान संसार में उत्पन्न होता है और प्रलयकाल में उसी से अन्वित होकर पुनः ब्रह्म में लीन होता है। सब कुछ एक ही है या अलग-अलग अनेक है। यह एक ऐसी समस्या है जिसने संसार के सभी दार्शनिकों को विवश किया कि उसका समाधान करके ही वे दार्शनिक-व्याख्या-क्षेत्र में आगे कदम बढ़ावें। सांख्य, योग, बौद्ध, जैन, न्यायवैशेषिक तथा मीमांसा आदि दर्शनों ने तो नानात्व ही माना है। शंकराचार्य ने सब कुछ दृश्यमान जगत् को एक वास्तविक तत्त्व के अन्तर्गत मानकर अपना मतवाद उपस्थित किया है। अन्य अद्वैत वेदान्त धाराओं ने भी अपने-अपने ढंगे से एकता या अद्वैतता प्रतिपादित करने की चेष्टा की थी जिसे उन्होंने मिथ्या-प्रपंच कहकर उसे चरमतत्व का केवल विवर्त या अस्थायी विलास माना है। किसी ने एक महान् तत्त्व के पराधीन सब कुछ स्थित बताया है। आचार्य विज्ञानभिक्षु को ये सभी सिद्धान्त भ्रान्त प्रतीत हुए अतः उन्होंने भर्तृप्रपंच, भास्कराचार्य और निम्बार्क की दिशा में अपनी मान्यता को दृढ़ीभूत किया। विज्ञानभिक्षु ने इन तीनों आचार्यों के मतभेदों से प्रकटतः मिलता जुलता और वस्तुतः पर्याप्त भिन्न भेदाभेदवाद प्रस्तुत किया। इसी भेदाभेदवाद के बल पर उनका ऐक्य अथवा अद्वैत आधारित है।

वेदान्त दर्शन की मान्यता में ब्रह्म एक है दृश्यमान सकल चराचर जगत् उससे भिन्न है, और अभिन्न भी। इस भेद का स्वरूप क्या है? और इस अभेद का क्या लक्षण है? क्योंकि इसी एक ब्रह्म में अविभक्त रहकर ही उपादान कारण-भूत प्रकृति नानाविध रूपों में परिणत होता है। यह अविभक्तता कैसी है? विभाग का मूल रूप आचार्य विज्ञानभिक्षु के अविभागाद्वैत सिद्धान्त में अद्वैत किस प्रकार का है? इन सब जिज्ञासाओं के शान्त होने पर इस अविभागाद्वैत का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट किया जा सकता है। यदि अविभाग का लक्षण किया जाये, तो यही कहा जा सकता है कि आधारता सम्बन्ध की ही भांति एक स्वरूप-सम्बन्ध-विशेष जिसका रूप अत्यन्त

सम्मिश्रण हो अविभाग कहलाता है।[23] इसी अविभाग के कारण **'दुग्ध एवं जलैक्य'** की प्रतीति होती है। विकारिकारण से यदि उसके विकार समवायसम्बन्ध से सम्बन्धित हैं तो उस कारण और कार्य में अविभाग सम्बन्ध कहा जाता है। वैसे ही अधिष्ठान कारण से कार्य के विभक्त न हाने पर भी दोनों में अविभाग-सम्बन्ध कहा जाता है। ब्रह्म अंशी है और पुरुष अंश है, साथ ही प्रकृति भी उसकी अन्तर्लीन शक्ति है इसलिए पुरुष और प्रकृति का ब्रह्म से अविभाग सम्बन्ध हुआ। यही सम्बन्ध अग्नि और स्फुर्लिंगों में रहता है क्योंकि वे अवयवी और अवयव है यह अविभाग ही अभेद है क्योंकि आचार्य विज्ञानभिक्षु का कथन है कि 'भिदि' धातु का अनुशासन विभाग में ही मानना चाहिए।

शंकराचार्य का मत है अभेद सत्य है भेद औपाधिक है। रामानुजाचार्य और बल्लभाचार्य आदि का मत है कि भेद-सत्य है किन्तु ब्रह्म के लीला-विलास से सब कुछ होता रहता है। आचार्य विज्ञानभिक्षु का कथन है कि ब्रह्म मीमांसा में जीव-ब्रह्म कि बीच अग्निविस्फुलिंगवद अशांशिभाव और अविभाग लक्षण वाला ही अभेद प्रतिपादित किया गया है। श्रुतियों ने भी सर्वं खलु इदं ब्रह्मा, **अयमात्मा ब्रह्म**[24]**, प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि एवं 'ऐतदात्मयमिदं सर्वम्**' के द्वारा केवल जीवों के साथ ही नहीं अपितु सकल जडवर्ग के साथ भी ब्रह्म का अविभाग लक्षण भेद प्रतिपादित किया है। जीव और ब्रह्म में अखण्डता अथवा प्रतिबिम्बवाद, या अवच्छेदवाद या आभासवाद मानने का उन्होंने कड़ा विरोध किया है।[26] और वही दृढ़ता के साथ यह कहा है कि **'तस्मादभेदाभेदाभ्यां जीवब्रह्मणोरंशाशिभावः एव ब्रह्ममीमांसा सिद्धान्तोऽवधरणीयः।'** इन अंशों और अंशी का परस्पर अन्योन्याभाव भी आत्यन्तिक समझना चाहिये। शक्ति और शक्तिमान का नित्य अविभाग मानना ही चाहिये। इस भेदाभेद को विज्ञानभिक्षु ने अद्वैत के सांचे में ढालना चाहा है। अतएव उनके सिद्धान्त को भेदाभेदवाद न कह कर अद्वैतवादी या अविभागाद्वैत ही कहना चाहिये।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि जगत् प्रपंच 'नाम' और 'रूप' से व्याकृत होकर प्रतीत हो रहा है। यह चेतन और अचेतन दोनों से मुक्त है। इस जगत् के बारे में हमें यह जान लेना होगा कि अद्वैत की जगत् के प्रति दो दृष्टियां रही है। जगत् हमें प्रतीत होता है-- इस प्रतीति के कारण अधिष्ठान ब्रह्म की सत्ता का हमें बोध होता है। जगत् का निर्विकल्पज्ञान ही सत्य है या सत् है। अपनी-अपनी वासना और संस्कारों के आधार पर हमें उसका सविकल्प नामरूपात्मक बोध होता है वह अनित्य होने से असत् है इन्हीं सत् और असत् दो कोटियों के बीच में ग्रन्थि पड़ जाती है। आचार्य कहते हैं कि वह उस स्वप्न की तरह है जो स्वप्न दशा में तो अक्षरशः सत्य लगता है और जागृत में अक्षरशः असत्य। अतः यह एक प्रतीतिमात्र है। वह जीवों के कर्मों का अध्यक्ष है। यह उन्हीं के अनुसार विश्व की रचना करता है। जैसे जीव अनादि से है ऐसे ही उनके कर्म भी। इन्हीं कर्मो के अनुसार सृष्टि की रचना होती है।

श्रुतियों ने भी सृष्टि की पूर्व की अवस्था की ओर संकेत दिया था कि तब न सत् था, न असत्, न आकाश, न जल, न मौत, न जीवन, न दिन, न रात, बस केवल एक परमात्मा ही उस समय श्वास ले रहा था।[27] आचार्य विज्ञानभिक्षु का मानना है कि सृष्टि क्रम की प्रक्रिया में सर्वप्रथम उत्पत्ति महत् से जाननी चाहिए। महत को दो भागों में विभक्त किया गया है प्राण और बुद्धि के नाम से महत् को माना है। आचार्य का मानना है कि जीव और ब्रह्म के बीच का सम्बन्ध अग्निविस्फुर्लिग्वद अंशांशिभाव और अविभाग-लक्षण वाला ही भेद प्रतीत होता है। इसलिए इन दोनों के बीच नित्य एवं सत्य का सम्बन्ध है। इस रूप में विज्ञानभिक्षु जगत् की यथार्थ सत्ता स्वीकार करते हैं, उनका मानना है कि यदि जगत् की आभासिक सत्ता मानी जायेगी तब तो सांसारिक जनों के नित्यप्रति के

कर्म कैसे संपादित हो सकते हैं? इस रूप में जहाँ जगत् की सत्ता यथार्थ है प्रातिभासिक नहीं, उसी तरह से इस जगत् के सम्पूर्ण क्रियाकलापों के संचालन कर्ता की सत्ता यथार्थ है, इस रूप में वह ईश्वर एवं जगत् (जीव) में अविभागाद्वैत सम्बन्ध करते दिखते हैं जो कि यथार्थ के धरातल में सटीक भी है एवं प्रासंगिक भी।

सन्दर्भ

1. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य टीकाकार- श्री सत्यानंद सरस्वती भूमिका पृ. 6 से उद्धृत। **2.** तैत्तरीय- 3/1। **3.** कठ. 1/3/15। **4.** नृसिंहोत्तरता. खं. 9। **5.** श्वे. 4/9-10। **6.** बृ. 2/5/16। **7.** जन्माद्यस्य यतः।। ब्रह्मसूत्र 1/2। **8.** जन्माद्यस्य यतः सर्वस्य च प्रपाठकार्थस्य उपचरितत्त्वत्परिकल्पनायां वृषा श्रमः परिकल्पयितुः स्यात् तस्माद्वदप्रामाण्यान्न युक्तः श्रुतार्थपरित्यागः। अतः चेतनावत्कारणं जगत् इति सिद्धम्। छान्दोग्य, 6/2/4। **9.** सत् एवं द्वैतभेदेन अन्ययथा गृह्यमाणत्वात् नासत्त्वं कस्यचित् क्वचिदिति ब्रूमः। छा. मा. 6/2/3। **10.** जाग्रद् दृश्यानां भावानां वैतथ्यमिति प्रतिज्ञा, दृश्यत्वादिति हेतुः। स्वप्नदृश्यभाव वदिति दृष्टान्ताः। माण्डूक्यकारिकाभाष्य, 2/4। **11.** आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा 4/31। **12.** ब्रह्मसूत्र 1/1/2। **13.** विज्ञानामृत भाष्य पृ. 31-32 ब्रह्मसूत्र 1/1/2। **14.** श्रीमद् भगवद्गीता 16/8। **15.** संस्कृत हिन्दी कोश शिवरान आप्टे। **16.** 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' ऋग्वेद 1-115-1। **17.** वि. भा. पृ. 103। **18.** विज्ञानामृत भाष्य पृ. 402। **19.** वि. भा. पृ. 34। **20.** द्रष्टव्य वि. भा. पृ. 35। **21.** एतेनसत्कार्यवादोऽप्युपादितः सर्वेषां सदसद्रूपपत्रत्वात्। वि. भा. पृ. 104। **22.** ब्रह्मणः साक्षात्परिणामवादं विवर्तवादे च तत्रैव निराकरिष्यामः वि. भा. पृ. 33 अथवा अस्तु अविभाग संयोग..... आधेयत्वादित्। **23.** अथवा अस्तु अविभाग संयोग........आधेयत्वादित्। जलस्योदधिल-वणस्य............पितुमशक्यत्वात्।। **24.** माण्डूक्योपनिषद् 1/2। **25.** ऐतरेयोपनिषद् अध्याय 3 प्रथम खण्ड---3। **26.** विज्ञानमृत भाष्य पृ. 50। **27.** ऋग्वेद नासदीय सूक्त मंडल 10 सूक्त 126 मंत्र 1, 2।

शोधछात्र, पीएच. डी.
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू-180006
मो.- 9697176202
निदेशक-रामबहादुर शुक्ल
(अध्यक्ष संस्कृत विभाग)

"काव्य-वीणा सम्मान - 2026" हेतु प्रविष्ठियाँ आमंत्रित

कोलकाता के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना जागरण केन्द्र **"परिवार मिलन"** विगत सन् 2013 से प्रतिवर्ष हिन्दी काव्य कृति को **"काव्य-वीणा सम्मान"** प्रदान कर रही है।

इस वर्ष **चतुर्दश** सम्मान हेतु इच्छुक रचनाकारों से वर्ष 2016 के बाद प्रकाशित अपनी छंद-बद्ध कृति की चार-चार प्रतियाँ, पासपोर्ट साइज के दो रंगीन चित्र एवं अपने संक्षिप्त परिचय के साथ परिवार मिलन कार्यालय (4, एस.एन. चटर्जी रोड, बेहाला, कोलकाता-700038) में भेजने का आग्रह किया जाता है।

कृति के भाव पक्ष एवं कला पक्ष अर्थात हृदयस्पर्शी विषय वस्तु, भावपूर्ण अभिव्यक्ति, लयात्मकता, सुललित छन्द योजना तथा भाषा सौष्ठव पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

सम्मान राशि रु. 51000/- होगी तथा चयन समिति का निर्णय ही अन्तिम एवं मान्य होगा। कृति भेजने की अन्तिम तिथि 28.02.2026 है।

भारतीय संस्कृति में गौ एवं प्राचीन राजस्थान में गौ-संरक्षण : अभिलेखीय साक्ष्य

श्रीमती रेखा देवी शर्मा

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में गौ या गाय का श्रद्धास्पद महत्व रहा है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में भी, गौ महिमा का पर्याप्त वर्णन है। शास्त्रों के अनुसार गाय पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की साधिका है। पुराणों में लिखा है कि जगत् में सर्वप्रथम वेद, अग्नि, गाय तथा ब्राह्मण की रचना हुयी। वेदों में यज्ञानुष्ठान परम कर्तव्य है और अग्नि रूपी मुख से ही देवताओं को यज्ञ की आहुतियाँ प्राप्त होती हैं-- 'अग्निमुखा हि देवा भवन्ति' और गाय से देवताओं को समर्पण करने योग्य हवि प्राप्त होती है। इसलिए गाय को 'हविर्दुधा' (हवि को देने वाली) कहते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से गाय का महत्व वर्णनातीत है। महाभारत के अनुशासन पर्व में महर्षि च्यवन ने राजा नहुष से गाय के महत्व का वर्णन करते हुए कहा कि-- *गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धन किञ्चिदिहाच्युत।। कीर्तन श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव। गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम्।।*[1] अर्थात् मैं इस संसार में गौओं के सदृश अन्य धन नहीं समझता, गौ के नाम और गुणों का कीर्तन, श्रवण, दान तथा दर्शन सम्पूर्ण पापों को दूर करके परम कल्याण के प्रदाता हैं। चक्रवर्ती राजा दिलीप गौ रक्षार्थ अपना शरीर तक देने को तैयार हुए। भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं गोचारण करके हमारे सम्मुख गौसेवा का आदर्श रखा। आनन्द कंद भगवान श्री कृष्ण द्वारा इन्द्र पूजन की प्रथा को बंद करके गौ पूजा का प्रारम्भ इसका ज्वलन्त प्रमाण है कि गोचर भूमि की कितनी उपादेयता है।

श्रीमद्भगवत गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अपने दिव्य रूपों का वर्णन करते हुए 'धेनूनामस्मि कामधुक्'[2] कहा है। गाय ही यज्ञ के फलों का कारण है और गायों में ही यज्ञ की प्रतिष्ठा है। यथा-- गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः। जनमानस में गाय के प्रति श्रद्धा और विश्वास इस कदर है कि काली गाय का स्वप्न में दर्शन भी शुभ माना जाता है जबकि काली चीजों का स्वप्न दर्शन शकुनशास्त्र के अनुसार अमंगल का सूचक होता है। गौ सेवा से गृहस्थजन को पुण्यमयी लक्ष्मी की प्राप्ति बतायी गयी है-- *गवां सेवा तु कर्तव्या गृहस्थै पुण्यलिप्सु। गवां सेवापरो यस्तु तस्य श्री वर्धतेऽचिरात्।।* गृहस्थ जनों द्वारा गाय की सेवा उपासना से पुत्र प्राप्ति भी दर्शित है। कुलगुरू महर्षि वशिष्ठ की आज्ञा से राजा दिलीप ने नन्दिनी नामक गाय की सेवा से पुत्र की प्राप्ति की वहीं पुत्र -- कामी राजा ऋतम्भर ने गौ सेवा के फल के रूप में परमभक्त सत्यवान नामक पुत्र प्राप्त किया था। सांसारिक जनों को

भगवान विष्णु, गौ और शिव की कृपादृष्टि से पुत्र की प्राप्ति होती हैं- विष्णोः प्रासादो गोश्चापि शिवस्याप्यथवा पुनः।[3] गौ चराचर जगत की जननी है और महातीर्थ के पुण्यफलों की प्रदात्री है। त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्। त्वं तीर्थ सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे।।[4] सर्वभूतों की माता, सर्वथा मंगलकारी और सर्वसुख प्रदात्री गौ को जिस घर में कष्ट मिलता है, उसे नरक की प्राप्ति होती है। यथा- यद्गृहे दुखिता गावः सः याति नरकं नरः।

समाज में गौ धार्मिक दृष्टि से ही नहीं अपितु व्यावहारिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्राचीन ऋषि मुनियों के गुरूकुलों में विद्यार्थियों का गुरूसेवा एवं गौ सेवा मुख्य कार्य था। इस सेवा कार्य से बालक में विद्यार्थी जीवन से ही गौ के प्रति आदर एवं श्रद्धा का भाव उसके मानस पटल पर अंकित हो जाता था। साथ ही बालक आभीर कर्म अर्थात् डेरी फार्मिंग में निष्णात हो जाता था। चूंकि प्राचीन समय में पशुपालन एवं कृषि मुख्य व्यवसाय था इसलिए शिष्य के लिए गृहस्थधर्म में आय का एक मुख्य स्त्रोत बन जाता था। वैज्ञानिकी दृष्टि से बात करें तो गौ मूत्र और गोबर अत्यन्त पवित्र और स्वच्छता प्रदान करने वाला है इस कारण भी गौ का पालन, सेवाचरण और संरक्षण की महती आवश्यकता है। हम देखते हैं कि ग्रामीण अंचलों में आज भी घर के आँगन को गाय के गोबर में मिट्टी मिलाकर लेपन से स्वच्छ और पवित्र करने का प्रचलन है। गोबर एवं गौ मूत्र की खाद का खेतों में प्रयोग करने पर प्रचुर अन्न की प्राप्ति होती है। ऐसा अन्न अन्य खादों से प्राप्त अन्न के स्थान पर अधिक गुणकारी, पौष्टिक एवं स्वास्थ्य वर्धक होता है। अन्न को 'गोधूम' के नाम से भी जाना जाता है। जिससे इस बात का संकेत मिलता है कि अन्न की प्राप्ति गौ-पालन के बिना दुष्कर थी। गोधूम शब्द का प्रयोग संवत् 1053 के हस्तिकुण्डी[5] के अभिलेख, संवत् 1205 के अल्हण देव के तामपत्र (2)[6] एवं अन्य कई लेखों में प्राप्त होता है।

गौ- पालन अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था। वहीं आयुर्वेदीय दृष्टि से भी आवश्यक एवं महत्वपूर्ण था। आयुर्वेद शास्त्र में गौ के गोबर, मूत्र आदि से विविध रोगों के उपचार का वर्णन मिलता है। 'पंचगव्य'[7] जो गाय के घी, दूध, दही, गोबर और मूत्र से निर्मित होता है, का प्रयोग विभिन्न उपचारों हेतु किया जाता है। यह शरीर के इम्यून सिस्टम को सुदृढ़, विविध संक्रमों एवं पाचन और श्वसन सम्बन्धी विकारों को दूर करता है साथ ही मधुमेह, दिल के रोग और कैंसर जैसी घातक बीमारियों से लड़ने में मदद करता है। गौमूत्र में विद्यमान औषधीय गुणों के कारण इसे महौषधि बताया है। आयुर्वेद में इसका शोधन-परिशोधन करके कई बीमारियों का उपचार वर्णित है। गोबर और गौमूत्र त्वचा रोगों में अचूक एवं कारगर हैं। बाल्यकाल में खाज नामक त्वचा रोग होने पर रोग प्रभावित जगहों पर गौमूत्र का लेपन कर धूप में बिठा दिया जाता था। ये सब बचपन में हमने स्वयं अनुभूत किया है। आज जहाँ जरा से फोडे फुंसी के लिए हम ढेर सारा पैसा देकर कई दिनों तक उपचारार्थ चक्कर लगाते हैं वहीं मात्र एक और दो दिन में बिना पैसे खर्च किए इस प्रकार की बीमारियों के इलाज हो जाते थे। निस्संदेह गौधन सर्वधन ही है जैसा कि कहा है- 'धनं च गो धनं धान्यं स्वर्णादयो वृथैव।' अर्थात् गौ धन के सामने धन, धान्य और स्वर्णादि सब व्यर्थ हैं। गौधन सिर्फ हमारी सांस्कृतिक विरासत ही नहीं है अपितु अर्थव्यवस्था और शारीरिक स्वास्थ का आधार भी है।

प्राचीन राजस्थान की बात करें तो राजस्थानी गौ के सर्वव्यापी महत्व से भलीभांति परिचित थे। राजस्थान में प्राचीनतम सभ्यता के अवशेषों में कालीबंगा[8] से प्राप्त ताँबे का बैल, जुते हुए खेत, सांडों की जुड़वों पैरों वाली मिट्टी की मूर्ति की प्राप्ति से विदित है कि समाज में गाय और गोवंश महनीय थे। वहाँ के निवासी गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर आदि के साथ-साथ ऊँट एवं कुत्ता भी पालते थे। गिलूण्ड[9] की पशु आकृतियाँ एवं चित्र, बागोर की

पाषाणकालीन सभ्यता के अवशेष इस बात के साक्षी हैं कि कृषि के साथ पशुपालन मनुष्यों की मुख्य आजीविका के साधन थे।

बालाथल[10] से मिली मिट्टी से बनी साँड की आकृतियां, वैलों की मृण्यमूर्तियाँ, बैराठ (जयपुर) शाहपुरा के वनेड़ी, ब्रह्मकुण्ड तथा जीणगोर की पहाड़ियों से मिले वृषभ चित्र, ओझियाना (भीलवाड़ा) से सफेद रंग से चित्रित वृषभ और गाय की मिट्टी से बनी मूर्तियों, आहड़ (उदयपुर) में टेराकोटा से निर्मित वृषभ की आकृति की प्राप्ति से स्पष्ट है कि शताब्दियों से पूर्व भी यहाँ के निवासी गौ और गौवंश का पालन और संरक्षण करते आ रहे हैं। संभवतः जीवन के प्रारम्भिक कालों से ही पशुपालन उसमें भी मुख्यतया गौपालन के प्रति जनमानस आतुर रहा है। गाय का दूध और उसकी उपयोगिता के कारण विविध प्रकार की नस्लें राजस्थान में प्राप्त हैं। राजस्थान में नागौरी, कांकरेज, थारपारकर, राठी, गिर (जिसे रैंडा और अजमेरा नाम से भी जाना जाता है) मेवाती, (कोसी, मेहावती, काठी) साहीवाल, मालवी, हरियाणवी गायों के साथ विदेशी नस्ल की रेड इन, हॉलिस्टन और जर्सी गाय पाली जाती हैं। राजस्थान के विविध अंचलों से प्राप्त अभिलेखों में गाय का अंकन उसके अमिट महत्व को ही दर्शाता है। दुर्ग, प्राचीरों, कूपों, मंदिरों, तोरणों, सोपानों आदि पर उत्कीर्ण ये लेख इस बात के साक्षी हैं हि गौ संस्कृति की रीढ़ एवं धुरी है।

प्रारम्भ से ही आत्म अभ्युदय हेतु दान परम्परा देखने को मिलती है। वैदिक काल में विविध दानों का उल्लेख प्राप्त है यथा गौ दान, अश्वदान, रत्न दान, ऊँट दान, कन्या दान, भोजन दानादि।[11] ऋग्वेद में कहा है कि जो गायों का दान करता है वह स्वर्गलोक में उच्च स्थान की प्राप्ति करता है।[12] महाभारत में दानों का वर्णन करते हुए कहा है कि--

'सुवर्णदानं गोदानं भूमिदान च वृत्रहन्।
यदवेतान्महाप्राज्ञः सर्वपापैः प्रमुच्यते।।'[13]

अर्थात् स्वर्ण, गाय एवं भूमि दान से मनुष्य समस्त पापों से छूट जाता है। गाय, पृथ्वी और सरस्वती का दानकर्ता मनुष्य सर्वफलों की प्रप्ति करता है।[14] दान और तीर्थ स्वर्ग के साधक हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व के दान धर्म पर्व में गाय के दान का महत्व बताते हुए लिखा है कि- 'यावन्ति लोमानि भवन्ति धेनवाः, तावत् फलं प्राप्नुते गोप्रदाता।'[15] अर्थात् गो दानकर्ता उतने फलों का भोग करता है जितने गाय के शरीर में रोम (बाल) होते हैं एवं समस्त पुत्र पौत्रादि सहित कुल का तारण होता है। महाभाष्य में गौदान का उल्लेख कई बार आया है। पुत्रजन्म के अवसर पर सहस्त्र गौदान का उल्लेख भी है।[16] स्मृतिकार वशिष्ठ ने गौदान, भूमिदान तथा विद्यादान की गणना प्रमुख दानों में की है। अग्नि पुराण[17] के अनुसार कपिला गाय का दान महादान है। महाभारत में द्यूत (जुए) आदि से प्राप्त धन से गाय खरीद कर दान कर्म भी सैकड़ों वर्ष पर्यन्त फलदायी बताया है- यो वै द्यूते धनं जित्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति। स दिव्यमयुतं शक्र वर्षाणां फलमश्नुते।।[18] अभीष्ट के श्रेय एवं प्रेय हेतु विविध प्रकार के धार्मिक यज्ञोत्सवों पर गौ दान की परम्परा रही है। जिससे पुष्टि होती है कि मनुष्यों के जीवन में गाय का प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्थान था एवं गौपालन सामाजिक जीवन का अभिन्न एवं अनिवार्य अंग था। शुभ कार्यों के अवसर पर सम्पन्न यज्ञादि कर्मों के उपरान्त गाय दान में दी जाती थी। महाभाष्यकार पतंजलि ने लिखा है कि उपाध्यायों और गुरूओं को श्रद्धा की प्रतीक गाय भेंट स्वरूप दी जाती थी।[19] कृत संवत् 282 के नान्दसा यूप[20] लेखानुसार श्री सोम ने यज्ञ की समाप्ति पर अनेक लाख गायों की दक्षिणा दी एवं वृषभ (बैलों) के सींगों से खरोंचे गए वृक्षों के भूपों से व्याप्त तट वाले महातड़ाक में यूप स्थापित करवाया। मौखरी सेनापति बल के पुत्रों द्वारा त्रिरात्र यज्ञ करने और उनके द्वारा हजार गायों के दान देने का वर्णन बड़वा से प्राप्त कृत संवत् 295 के यूप लेखों में

मिलता है।[21] गायों के साथ बछड़ों और बैलों की कृषि एवं भारवाहक साधनों में उपयोगिता को देखते हुए बछड़े सहित गौदान का उल्लेख भी प्राप्त है। कृत संवत् 335 के बर्नाला यूप लेख[22] से ज्ञात होता है कि भट्ट नामक ब्राह्मण ने त्रित वन में त्रिरात्र यज्ञ के सम्पन्न होने पर बछड़ों सहित 90 गायों की दक्षिणा दी थी।

गौ उपासना और पालना समस्त पापों का अपहरण कर पालनकर्ता को स्वर्ग का भागी बनाती है। संवत् 870 के चाटसू अभिलेख[23] में अपने प्रियतमों के वियोग से दुखी गोपियों के स्वर्ग जाने का वर्णन प्राप्त है। लेख में अन्यत्र गुहिलवंशीय भर्तृभट्ट को नन्दिकेश्वर वृषभ पर धर्मारूढ़ कहा है। गौ माता के पुत्र प्रतीक नन्दिकेश्वर वृषभ रूप में धर्मारूढ़ बताने से संकेत मिलता है कि गाय और वृषभ की पालना से धर्म की प्राप्ति होती है। अन्ततः धर्म ही परमानन्द का कारण है। प्राचीन काल में गाय, बैल, भैंस, भेड़ आदि राज्य की बहुमूल्य संपति समझे जाते थे। राज्य की आय का मुख्य स्त्रोत होने के कारण इनके रख रखाव के उचित प्रबन्धन एवं संरक्षण की व्यवस्था प्रशासन द्वारा की जाती थी। गाय से दूध एवं उसके बछड़े बड़े होकर हल खींचते थे। जिसके पास जितनी गाय और बैल होते थे वह उतना ही धनवान होता था। महाभाष्य में भी उल्लिखित है कि देवदत्त धनी है क्योंकि उसके पास गौ अश्व और हिरण्य है।[24] संवत् 918 के घटियाला अभिलेख[25] से विदित होता है कि प्रतिहार वंशीय राजा कक्कुक ने वट्टनानक (बेड़ा नाड़ा) के दुर्गम पहाड़ पर सम्पूर्ण गौ धन को एकत्रित कर उसके परिमण्डल में कुछ गांव बसाए थे। इससे स्पष्ट होता है कि गौ पालन उस समय जीवन यापन का मुख्य साधन था। शासक वर्ग इस बात से भलीभांति परिचित थे तदनुसार उचित प्रबन्ध भी किए जाते थे।

गायों के चारण हेतु गोचर भूमि आवश्यक एवं महत्वपूर्ण थी। अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि राजा गण अपने भूमि क्षेत्र में गोचर होना भी सुनिश्चित करते थे। संवत् 1003 के प्रतापगढ़ लेखानुसार[26] महाराज श्री महेन्द्रपाल देव ने काहिकी गंगा में स्नानोपरान्त पुण्यार्जन की इच्छा से हरिश्वर मठ हेतु रचमी मातृण प्रति गोचर तक सम्पूर्ण दायाद दान में दिया था। श्री विदग्धराज ने घोण्टावार्षिक स्थान में श्रीमान् इन्द्रादित्यदेव की खण्डपीठ रचना के लिए प्रदत्त गाँव गोचर भूमि से संयुक्त था। संवत् 1067 के ताम्रपत्र[27] में उल्लेख है कि तन्त्रपाल क्षेमेन्द्र ने क्षत्रियपद्र गाँव गोचर पर्यन्त अपनी भूमि में से दान दिया था। हर्षनाथ[28] अभिलेखानुसार भावद्योत नामक शिष्य ने पर्वत के सामने कुँआ, सुंदरवाटिका के साथ गायों के पीने के लिए प्याऊ का निर्माण कराया था। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मनुष्य जीवन के लिए गौ का उपयोग देखते हुए उनके पालन एवं समृद्धि के लिए उचित व्यवस्था की जाती थी।

गौ का दूध अमृत तुल्य है। शैशवावस्था में माँ का दूध उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में गौ का दूध ही सुपाच्य और श्रेयस्कर है। महाकवि जयानक ने पृथ्वीराज महाकाव्य में पृथ्वीराज की धाय माता का वर्णन करते हुए लिखा है कि मानो स्वयं सुरभि कामधेनु ने धात्री (धाय) का रूप धारण कर अपना दूध पिलाया था। कामधेनु के स्तन्यपान से ही उस बच्चे में याचक को उसकी इच्छानुसार प्रदान करने की प्रवृत्ति हुई।[29]

संवत् 1218 के नाडोल[30] एवं 1219 के ताम्रपत्रों[31] में पंचामृत से अभिषेक कर पंचोपचार विधि से देव त्रिपुरुष देव को पंचामृत से अभिषेक एवं पूजन कार्य किए जाने का उल्लेख मिलता है। संवत् 1239 के बन्धुराज के ताम्रपत्र[32] में भगवान महादेव की पंचोपचार विधि से पूजन का उल्लेख है। पंचामृत दूध, दही, मधु, घी और गन्ने के रस से बना तरल पेय है जिसे मधुपर्क भी कहते हैं। पूजा विशेष के अवसर पर देवों को अर्पित कर प्रसाद रूप में लिया जाता है। पंचोपचार पूजन विधि में गंध, फूल, धूप, आरती और नैवेद्य की अर्पण विधि से पूजा की जाती है। नैवेद्य

भगवान को चढ़ाए जाने वाले भोग/प्रसाद को कहा जाता है। सूखे फल, ऋतुफल आदि के साथ गाय के दूध से बने भिन्न-भिन्न व्यंजनों का भोग लगाया जाता है। पंचामृत और पंचोपचार विधि जनसामान्य में गौ और गौ वंश के महत्व की परिचायक है। संवत् 1010 की सारणेश्वर नाथ प्रशस्ति[33] में हलवाई की दुकान से देवमन्दिर हेतु एक घड़िया दूध देने का विधान, शासन द्वारा किया गया था। महाकवि जयानक ने पृथ्वीराज महाकाव्य में पुष्कर राज में सप्तर्षि गणों द्वारा कामधेनु के दूध से पायस (खीर) आति हेतु पकाने का वर्णन किया है।[34] पूजा कर्म एवं दैनिक जीवन में गाय के दूध एवं उससे निर्मित भोज्य और पेय पदार्थो की उपयोगिता ने उसके महत्व को घर-घर में बढ़ा दिया।

बचपन में बड़े बुजुर्गो से सुनते आ रहे हैं कि- 'गाय हमारी माता और बैल पिता हैं।' जैसी बातें संभवतः जनमानस में गौ के प्रति श्रद्धा, आस्था एवं विश्वास के भाव को उत्पन्न कर दृढ़ कर देती थी। बालक के जीवन में माता-पिता और गुरु ईश्वर तुल्य पूजनीय एवं आदृत हैं। वही भाव बचपन से उसके मन पर गौ माता के प्रति अंकित हो जाता था। संवत् 1102 के राजा पूर्णपाल के भडूंद लेख[35] के मंगलाचरण में अन्य देवी देवताओं के साथ गौ की वंदना मनुष्य जीवन में उसकी दिव्यता का ही सूचक है।

गौ धन के अप्रितम गुणों के आधार पर गौ दान महादान की श्रेणी में गण्य था। पुत्री के विवाह के अवसर पर गौ दान की परम्परा समाज में प्रचलित रही है। संवत् 1176 के रत्नपाल के ताम्रपत्र[36] में लिखा है कि-- 'त्रीण्याहुरपि दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती' अर्थात् गौ दान, भूमिदान और ज्ञान दान मुख्य हैं। दानकर्ता निश्चय ही संसार से पापों से मुक्ति पा जाता है। कई बार देखने को मिलता है कि मनुष्य अपने भावों को चित्रांकन से भी व्यक्त कर देता है। ऐसे स्मारक प्राप्त हैं जिस पर दानदाता ने गौ का चित्रांकन कर गौदान को सूचित किया है। संवत् 1202 के सेवाड़ी लेख[37] पर गाय और बछड़े का अंकन दान का ही द्योतक है। राजशेखर की काव्यमीमांसा[38] में यह उल्लेख मिलता है कि कृषि कार्य हेतु पशुपालन (गोपालन) आवश्यक माना जाता था जहाँ खेत जोतने के लिए बैलों को रखना आवश्यक था वहीं दूध, दही, मक्खन और घी आदि भोज्यपदार्थों की प्राप्ति हेतु गाय, भैंस, भेड़, बकरी का पोषण भी किया जाता था। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में लिखा है कि प्राचीनकाल में कृषि मुख्यतः हल और बैलों के माध्यम से की जाती थी। इस प्रकार गाय अर्थव्यवस्था की धुरी थी।

मनुष्य के सुखद, स्वस्थ, समृद्ध जीवन के लिए गौपालन आवश्यक अंग था। गौ धन की बढ़ोतरी हो उसे कोई हानि नहीं पहुंचाए अतः शास्त्रों में उसको माता का दर्जा दिया साथ ही गौ वध को महापाप की श्रेणी में रखा। दानादि शासनाज्ञा का उल्लंघन कर्त्ता गौ हिंसा के समान पाप का भागी होता था। सेवाड़ी अभिलेख में उल्लेख है कि महाराजाधिराज अश्वराज द्वारा श्री धर्मनाथ देव हेतु दिए दान का उल्लंघन कर्त्ता गौ हिंसा वत ही पाप का भागीदार होगा। संवत् 1189 के रायपाल नाडलाई लेख[39] में दान की परम्परा को तोड़ने वाले हजार गौ हत्या के पाप कर्ता के समकक्ष होगा। अन्य कई लेखों में इस प्रकार के पाप का उल्लेख किया है। प्रशासन के इस प्रकार के आदेशों से जनमन में गौवध की भावना का कल्पना में आना भी पाप वत् ही लगता था। शासक वर्ग न केवल गाय अपितु जीव हिंसा रोकने का भी प्रयास करता था। सं.1219 के सामन्त अल्हण देव के लेख[40] से ज्ञात होता है कि उनके राज्य क्षेत्र में कृष्ण और शुक्ल पक्ष की अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी और शिवरात्रि पर जीव हिंसा करने वाले और करवाने वाले दोनों ही दंडित किए जाते थे। ऐसी स्थिति में 5 द्रम्म (दाम) से दंडित करने का आदेश था। हम देखते हैं कि राजा जीव हिंसा को अपराध की श्रेणी में रखते थे और गौवध तो महाअपराध और महापाप कर्म था।

राजस्थान का जनमानस गौ रक्षा हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग करने से भी नहीं चूकता था। गाय की रक्षा करते हुए मरना भी गौरव एवं धार्मिक कर्तव्य माना जाता था। राजस्थान के विविध स्थलों से प्राप्त गोवर्धन स्मारक इसके साक्षी हैं। स्तम्भों पर गोवर्धन धारी श्री कृष्ण का अंकन होने के कारण इन्हें गोवर्धन कहते हैं। प्रारम्भिक काल में गायों की रक्षार्थ मरने वालों की स्मृति में ये बनते थे किन्तु बाद में मुस्लिम आक्रांताओं से लड़ने तथा वीरों की स्मृति में भी बनाए जाने लगे। इनका अर्थ व्यापक हो गया था। ये लेख राजस्थान के उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रान्त से लेकर नागौर, डीडवाना, भादवा गांव तक से प्राप्त हुए हैं।

लोद्रवा[41] (जैसलमेर) से संवत् 970 का लेख प्राप्त गोवर्धन स्मारको में प्राचीनतम है। इसमें क्षत्रियवंशी रामधर के पुत्र भद्रक द्वारा गोवर्धन प्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है। बीठन[42] के तालाब के पास से 1002 के तीन अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिन्हें गौरक्षक वीरों की स्मृति में बनाया गया था। सं.1070 के बालकनाथ मंदिर से प्राप्त स्तम्भ लेख[43] ऐसा स्मारक है जिसे गायों की रक्षार्थ अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले परमार शिय पुष्य का पुत्र धिंधक की स्मृति में उसके पुत्र धनपाल के द्वारा बनवाया गया था। जैसलमेर की सीमा पर स्थित पोकरण से संवत् 1070[44] के दो लेख मिले जिसके अनुसार श्रीमान पुण्य पुष्प गुहिलान्वयी राजा का मदन (पुत्र) शत्रुओं के द्वारा गायों के पकड़े जाने का विरोध करते हुए मोक्ष का भागी हुआ। '(गतः स्वर्ग रिपुभि गो ग्रहि हतः)।' धन्धल जातीय धुधा की मृत्यु पर मोहिया के द्वारा गोवर्धन स्थापना का उल्लेख मिलता है। पोकरण से प्राप्त अभिलेखों में किसी वीर की पुण्य स्मृति में गोवर्धन बनवाने का उल्लेख है।

भट्टिक संवत् 551 (संवत् 1231) बाडमेर और जैसलमेर की सीमावर्ती आंकल[45] से दो गोवर्धन स्तम्भ मिले हैं। प्रथम लेख में चौहान कसुअरा पुत्र महणिग सलखट महिणा के साथ स्वर्गवासी हुआ उसकी स्मृति में सोसिग के भुवणिग ने यह लेख बनवाया। एक दूसरे स्तम्भ लेख में चौहान जातीय जस का पुत्र कुसरा पत्नी सहित स्वर्गवासी हुआ उसकी स्मृति में सोसिग पुत्र भवणिग ने तालाब के निकट गोवर्धन स्मारक बनवाया था।

जैसलमेर जिले के शिव-कोटडा के समीप स्थित ओला गांव से सं. 1060 से 1248 तक की अवधि के मध्य लगभग तीन दर्जन गोवर्धन स्मारक स्तम्भ प्राप्त हुए हैं। सं. 1239 के गोवर्धन लेख से विदित होता है कि ओला गाँव में महाराजाधिराज परमेश्वर चालुक्य भीमदेव (द्वितीय) के राज्यकाल में पूसामूलआ सुत के नाम पर गोवर्धन प्रतिष्ठा करवायी। संवत् 1241 के खिचुन्द[46] से प्राप्त गोवर्धन लेख से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण चिरादित्य का पुत्र पाराशर गोत्रीय देवायक गायों को घेरकर ले जाने वालों का विरोध करता हुआ स्वर्ग गया। उसके पुत्रों ने अपने इष्टदेव सहित गोवर्धन स्तम्भ स्थापित कराया। इस लेख की विशेषता है कि इसमें अन्त में स्थापित करवाने वाले और संवत् आदि के लेखक को सनातन लोक (मोक्ष) का अधिकारी कहा है। भाडियावास (नागौर) से संवत् 1254 के लेखानुसार[47] गौ रक्षा करते हुए शासक (ब्रा.) चण्डपाल की मृत्यु होने पर महीधर, जिसधवल, आसाधर के द्वारा तालाब के किनारे गोवर्धन स्थापित करवाया गया था। हर्ष संवत् 84 के भरतपुर के निकट कोट गाँव के लेख में ब्राह्मण लोहादित्य का गायों की रक्षार्थ मृत्यु को प्राप्त होना वर्णित है। बयाना से प्राप्त पूर्व मध्यकालीन शिलालेख में गायों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं उनके पीछे एक पुरुष का अंकन गौपालन और संरक्षण का ही संकेतक है। जैसलमेर से भट्ट संवत् 685 के कई लेख प्राप्त हुए हैं जिसमें स्त्रियों और गायों की रक्षार्थ प्राण देने का वर्णन है। यह घटना जैसलमेर पर अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय की है। गायों की रक्षा करते हुए मरना गौरव का विषय था।

विदेशी आक्रान्ता इस बात से परिचित थे कि यदि किसी राष्ट्र को नष्ट करना है तो उसकी संस्कृति को नष्ट करो। ऐसा ही उनके द्वारा किया गया। देवालय लूटे, देव प्रतिमाएं भग्न की, गायों का अपहरण एवं वध किया। महाकवि जयानक[48] ने गौरी के दूत का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसका विशाल भाल ऐसा था मानो वह असंख्य कपिला गायों के वध की प्रशास्ति के लिए विधाता ने जान बूझकर विशाल बनाया है। इससे स्पष्ट होता है कि विदेशी आक्रमणकारियों ने किस कदर तक गौ वध किया था। गौपालन में असमर्थ गोपालकों की सहायतार्थ गाय के सेवा एवं आहार आदि के निमित दानादाता दान भी देते थे। संवत् 1257 के नाणा से प्राप्त लेख[49] में उल्लेख है कि एक कपिला गौ को बनाए रखने के लिए किसी कायस्थ ने दान दिया था।

पृथ्वीराज विजय महाकाव्य से विदित होता है कि चन्द्रराज नामक राजा का गोपेन्द्रराज नामक अनुज था जिसे गोमण्डल को धारण करने वाला बताया है। संभवतः राजा गोपेन्द्रराज गाय/धेनु पालन और सुरक्षा हेतु विशेष भाव रखता था। राजा अजयराज को गोमण्डल धरेण कहकर संबोधित किया है।[50] अन्यत्र उल्लेख मिलता है कि साहसिक नामक राजा गोमाता और पृथ्वीमाता दोनों का रक्षक है-- गो रक्षणं साहसिकः करोति।[51]

राजस्थान की मूर्तिकला में भी गौ संवर्धन के प्रमाण आरम्भिक गुप्तकाल से ही प्राप्त होते हैं। इनमें गोवर्धन धारी फलक विशेष उल्लेखनीय हैं जो रंगमहल, मण्डोर, अर्थणा, अटरू, आबानेरी, लूणवसही, ओसियां आदि के मंदिरों से प्राप्त हुए हैं। इन फलकों में श्री कृष्ण को गोवर्धन पर्वत उठाए हुए तथा पास में गोवत्सादि का अंकन है। इसी प्रकार 13वीं शती के लूणवसही के एक फलक पर गोचारण का दृश्य भी दर्शित है।

उक्त प्राचीन अभिलेंखों एवं मूर्तियों से विदित होता है कि प्राचीन राजस्थान में गाय का अमिट स्थान था। वह संस्कृति की पहचान थी। वाहक थी। जिसकी रक्षा प्राण प्रण से यहाँ का जनसामान्य, राजा महाराजा आदि विशेषजन बिना किसी भेदभाव के करते थे। खेद का विषय है कि आज हर तीसरे घर में कुत्तों का पालन हो रहा है और गौ माता निराश्रित निरुपाय होकर गली-गली भटकने को मजबूर है साथ ही उसके मॉस के लोभी उसका वध करने से भी नहीं चूक रहे। ऐसा नहीं है कि एतत् कानून नहीं हैं। कानूनी प्रक्रिया की जटिलता, दीर्घकालिकता और सबसे बड़ा कारण मनुष्य के नैतिक चरित्र का पतन गाय की दुर्दशा के कारक है। आज श्री गुरु गोविन्द सिंहजी की गौरक्षार्थ पंक्तियाँ स्मरण आ रही हैं-- यही देह आज्ञा तुर्क को खपाऊँ। गोघात का दुख जगत से हटाऊँ।। आस पूर्ण करो तुम हमारी। मिटै कष्ट गोअन छुटे खेद भारी।।

गाय को सुरक्षित करना है तो हमें घर से शुरुआत करनी होगी। उसका श्रेष्ठ उपाय है- गोपालन। घर में मिट्टी के चूल्हे की जगह गैस चूल्हे का लेना विकास का ही पथ है किन्तु उससे प्रथम गौ ग्रास की रोटी का गुम होना हमारी संस्कृति का हनन है उस पर चोट है। हमें संस्कृति के संवरण हेतु गाय का वरण पुनः करना ही होगा। यह असम्भव कार्य भी नहीं है। घरों में गौ पालन को बढ़ावा दिया जाए। जिस प्रकार सम्पन्न व्यक्ति विविध वाहन-प्रसाधन रखते हैं उसी प्रकार गाय भी रखें, गौ शालाओं में योगदान दें, डेयरी फार्म चलाएं इस प्रकार गाय संरक्षण की दिशा में बहुत कार्य हो सकता है। सरकार के साथ-साथ हमारा भी कर्तव्य है और उसका पालन हमें यथायोग्य करना चाहिए ।

संदर्भ

1. अनुशासन पर्व, 51/26-27 संस्कृत डॉक्यूमेण्टस ऑर्ग. जुलाई 23/2013। **2.** भीष्मपर्व, 34/28। **3.** कल्याण, हिंदू संस्कृति अंक, पृ. 605। **4.** स्कन्द, ब्रह्म, धर्मारण्य, 10/18। **5.** शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, पृ.68-70। **6.** श्रीमाली, जी. एल, राजस्थान के अभिलेख, भाग-1, (2000, जोधपुर) पृ.118-121। **7.** पाण्डेय, राजबली, हिंदू धर्म कोश, पृ. 380। **8.** पाण्डेय, जे.एन., प्रारंभिक संस्कृतियों तथा सभ्यताएं, पृ. 252-

256। **9.** वही। **10.** वही। **11.** काणे, पी.वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ. 447। **12.** ऋग्वेद, 10/107/27। **13.** अनुशासन पर्व, अध्याय 61, श्लोक 52। **14.** वही, 68/4। **15.** वही, 57/29। **16.** यादव, झिनकू, समराइच्छ कहा एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 303। **17.** अग्निपुराण, 209/23-24। **18.** यादव, झिनकू, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ.177। **19.** अनुशासन पर्व, 72/17। **20.** अल्तेकर, ए.एस., 'नान्दसा यूप इंस्क्रिप्शंस' एपि. इ., वाल्यूम 27, पार्ट 4. पृष्ठ 252-265। **21.** शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, पृ. 44-45। **22.** शर्मा, गोपीनाथ, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 45। **23.** सरकार, डी.सी., सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस वॉल्यूम 2, (दिल्ली 1983) पृ. 363-371। **24.** यादव, झिनकू, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 28। **25.** भण्डारकर, डी. आर., घटियाला इंस्क्रिप्शंस ऑफ कक्कुक, एपिग्रैफिया इण्डिका, वाल्यूम 9, पृ. 277-281। **26.** ओझा, जी.एच., ओझा निबन्ध संग्रह, भाग-4, (उदयपुर, 1954) पृ. 11-21। **27.** श्रीमाली, जी. एल., पूर्व निर्दिष्ट, पृ. 56-58। **28.** कीलहर्न, एफ., एपिग्रैफिया इण्डिका, वाल्यूम 2, पृ. 116-130। **29.** पृथ्वीराज विजय, सर्ग 8, श्लोक, 32। **30.** कीलहर्न, एफ., पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 64-68। **31.** श्रीमाली, जी.एल., पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 149। **32.** वही, पृ. 187-190। **33.** दास, श्यामल, वीरविनोद, भाग-1, पृ. 381 एवं आगे। **34.** पृथ्वीराज विजय, सर्ग 1, श्लोक 55। **35.** रामकरण, जर्नल ऑफ दि बॉम्बे ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसायटी, वॉल्यूम 23, पृ. 75-80। **36.** श्रीमाली, जी.एल., पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 92-95। **37.** शर्मा, गोपीनाथ, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 76-77। **38.** पाण्डेय, आर.पी. शर्मा, राजशेखर और उनका युग, (1977, पटना) पृ. 176। **39.** श्रीमाली, जी.एल., पूर्वनिर्दिष्ट, पृ. 98-99। **40.** शर्मा, जी.एन., पूर्वनिर्दिष्ट, 86-87। **41.** दृष्टव्य, सोमानी, आर.वी., राजस्थान के शिलालेखों का वर्गीकरण, (सम्पा-दशरथ शर्मा) अगरचन्द नाहटा अभिनन्दनग्रंथ, पृ. 126। **42.** ओझा, जी.एच., जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-1, पृ. 36। **43.** सोमानी, रामवल्लभ, शोधपत्रिका वर्ष 22 (2) 1973, पृ. 67-69। **44.** वही। **45.** वही। **46.** श्रीमाली, जी.एल., पूर्वनिर्दिष्ट, 191-192। **47.** वही, पृ. 204-205। **48.** पृथ्वीराज विजय, सर्ग 10, श्लोक 43। **49.** प्रोग्रेस रिपोर्ट, वेस्टर्न सर्किल, 1908, पृ. 49। **50.** पृथ्वीराज विजय, सर्ग 5, श्लोक 17,112। **51.** पृथ्वीराज विजय, सर्ग 6, श्लोक 109। **52.** त्रिगुणायत, सतीश कुमार, प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म-- एक ऐतिहासिक सर्वेक्षणा भारतीय विद्या मंदिर-कोलकाता, 2009) पृ. 104, 106, 158, 165, 186, 207, 217-218।

सह-आचार्य - संस्कृत, राजकीय कन्या महाविद्यालय गणगौरी बाजार, जयपुर
द्वारा : डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
जवाहर नगर, भरतपुर
राजस्थान-321001

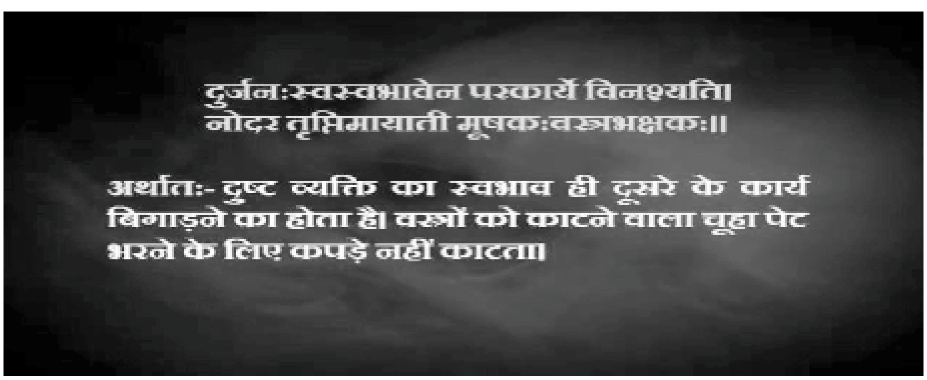

मनु मतानुसार वानप्रस्थ सिद्धांत

गिरिन्द्र मोहन ठाकुर

भारतीय शास्त्रों में व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याणपरक कर्मों का अपूर्व समन्वय दृष्टिगोचर होता है। वायु पुराण में दक्ष द्वारा शिव से की गई प्रार्थना के प्रसंग में शिव को वर्णाश्रम व्यवस्था को विधिपूर्वक प्रवर्तित करने वाला कहा गया है, (सिंह 2020 : (30/218) : 206-07)। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त (दयानंद 2005 : (10/90/2) : 1313) के अतिरिक्त मनु (शास्त्री 1996 : (1/33) : 13) ने भी चारों वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा से मानी है-- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आश्रम शब्द "श्रम" से बना है। "आश्राम्यन्ति अस्मिन इति आश्रमः" का अर्थ है ऐसा जीवन जिसमें मनुष्य अत्यधिक श्रम करता हो। (चौब 1982 : 267) गौतम धर्मसूत्र के अनुसार, "ब्रह्मचारी गृहस्थी भिक्षु वैखानसाः" (पांडेय 1966 : (1/3/2) : 30), बौधायन धर्मसूत्र के मत में "ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थ परिव्राजक इति", (श्रीनिवास 1907 (2/6/14) : 243) मनु के मत के अनुसार "ब्रह्मचारी, गृहस्थश्च, वानप्रस्थी यतिस्थिता" (शास्त्री 1996 : (6/87) : 232)। अर्थात्, प्राचीन ऋषि-मुनियों ने व्यक्ति के जीवन को संयमित, नियमित और क्रियाशील बनाने के लिए चार आश्रम उद्घाटित किए-- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम, व्यक्ति का निर्माण, ज्ञानार्जन की, त्याग की भावना, उत्पन्न की अवस्था है और ब्रह्म का प्रतीक है। गृहस्थाश्रम संसार को भोगने का आश्रम है। वैदिक संस्कृति में इस त्यागमय संसार को भोगने के बाद जीवन की अगली पड़ाव वानप्रस्थ अवस्था को बताया है। जब मनुष्य संसार से तृप्त होकर पुनः ब्रह्मचर्य पूर्वक रहकर ईश्वरोपासना और समाज सेवा करता है।

आश्रम व्यवस्था के जीवन दर्शन अब भी प्रभावी हैं। वानप्रस्थ के नियम मुख्यतया दो क्षेत्रों में जीवन को तराशने का कार्य करता है--- 1. स्वास्थ्य जागरूकता 2. आदर्श चरित्र। स्वास्थ्य जागररूकता के अन्तर्गत शरीर में उपस्थित विकृति को दूर करते हैं तथा उम्र बढ़ने के साथ-साथ आने वाले शारीरिक दुर्बलताओं से लड़ने हेतु प्रकृति अनुकूल शरीर ढ़ालते हैं। आदर्श चरित्र के अन्तर्गत गृहस्थाश्रम के लोभ, मोह, स्वार्थ, अर्थ, काम तथा बेइमानी सम्बन्धी आदतों को दूर करना तथा समस्त जीव कल्याण की ओर अनावृत हो जाना है।

स्वस्थ्य जागरूकता

1. आहार

वानप्रस्थ के नियम ग्रामीण आहार (पोष्टिक घृत आदि) त्यागने की सलाह देता है (शास्त्री

1996 : (6/3) : 216) क्योंकि ग्रामीण आहार परस्पर निर्भरता से उत्पादित होती है और सहज रूप में उपलब्ध नहीं होती है। ग्रामीण उत्पादन को खाद्य उत्पाद बनाना एक जटिल प्रक्रिया है, जैसे दुग्ध से घृत बनाना। अतः वानप्रस्थी को शाक-सब्जी तथा उष्ण (बॉयल) खाना जैसी अनुकूल प्रक्रिया के आहार ग्रहण करना चाहिए।

धरती पर उपजे तथा जल (सरोवर) आदि में एकदित हुए शाक और वृक्षों के फल फल मूल आदि खाने चाहिए। फलों से निकले हुए तेल भी खाए जा सकते हैं (शास्त्री 1996 : (6/13) : 218)। शहद, माँस, भूतृण, शिग्रुक, श्लोमन्तक आदि वर्णन किया है। मुन्नयन (निवार आदि) या साग, फल-फूल आदि पूर्व संचित किया गया अर्थात् बासी अश्विन मास में नहीं खाना चाहिए। दाँत और मुँह को उखल और मुसल समझा जा सकता है। पूर्णमासी और अमावस्या को एक बार पकी यवागू (जौ की लापसी) को खाये। (शास्त्री 1996 : (6/14) : 218)।

वानप्रस्थी को मंदिरा, मॉस, भूमि से उत्पन्न होने वाले कुकुरमुत्तों, सोहाजना तथा लेसदार लसुढे जैसे फल नहीं खाने चाहिए (शास्त्री 1996 : (6/14) : 218)।

2. सुविधात्याज्य

वानप्रस्थी को धर्मानुष्ठान, यज्ञ ती वही गृहस्थी की भाँति करना आवश्यक था लेकिन अन्य दैनिक सुविधाजनक स्थितियाँ उनके लिए त्याज्य थी। महाभारत में इसका उल्लेख है (पाण्डेय 2010 : (61/5) : 199)। गृहस्थाश्रम की अच्छी आदतों को जारी रखें किन्तु सुविधा को त्यागे। चूंकि सुविधाएँ कमजोर बनाती है, अस्वाभाविक बनाती है, मौसम के विपरीत करती हैं। वस्त्रालंकार त्यागने की बात कही गयी है। मौसम अनुकूल शरीर को साधने की बात कही गयी है।

वानप्रस्थी को वन में रहते हुए व्यक्ति को शरीर ढकने के लिए मृगचर्म अथवा वल्कल (वृक्षों की छाल) धारण करने चाहिए। उसे जटाएँ, दाढ़ी-मुंछ, केश और नाखुन नहीं कटवाना चाहिए, धारण किये रहने चाहिए (शास्त्री 1996 : (6/67) : 217)।

3. साफ-सफाई

मनु ने तीन बार स्नान (प्रातः, मध्याह, संध्या) का निर्देश दिया है (शास्त्री 1996 : (6/22) : 220)। इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य और वशिष्ठ ने भी तीन बार स्नान के निर्देश दिए हैं। विष्णु पुराण दिन में दो बार स्नान का निर्देश दिया है। दरअसल इसका उद्देश्य साफ सफाई पर अतिशय ध्यान देना था। कई कंकड़ समूहों के बीच छन कर आता हुआ शुद्धतम सागर जल, पुनः पुनः शरीर को स्वच्छ (सेनिटाइज) करने का काम करता था।

4. व्यायाम

वानप्रस्थी को सर्दी, गर्मी को सहन करना चाहिए। कठिन से कठिन तप करता हुआ ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि (चार दिशाओं में अग्नि और ऊपर सूर्य) से शरीर को तपावे, वर्षाकाल में वर्ष में रहे और हेमन्त ऋतु में भीगे कपड़े पहने, सुबह, दोपहर, शाम मे देव, ऋषि तथा पितरों का तर्पण करे और तीव्र तपश्चर्या करके अपने शरीर को सुखाता रहे (शास्त्री 1996 : (6/23) : 220)। दरअसल हानिकारक सूक्ष्मजीव एक निश्चित स्थिर तापमान में ही जीवित रह सकता है। इसी निमित्त शरीर को हानिकारक सूक्ष्मजीव से दूर करने के लिए पुनः पुनः शीतल जल में स्नान कर निम्न तापमान तथा पंचाग्नि तपश्चर्या करके अपने शरीर को उच्च तापमान में सामंजस्य बैठाता है।

किसी भी प्रकार का शारीरिक सुखोपयोग नहीं करना चाहिए और ब्रह्मचारी व्रत धारण कर पृथ्वी पर सोना चाहिए। सम्भोग के विषय में ऋतुकाल होने पर प्रथम चार पर्व, पूर्णिमा और अमावस्या की दो तथा एकादशी और त्रयोदशी की दो रात्रियों को छोड़कर शेष रात्रियों में स्त्री से सम्भोग करने वाला पुरुष किसी भी आश्रम से सम्बन्धित क्यों न है, ब्रह्मचारी कहलाता है (शास्त्री 1996 : (3/50) : 88)।

वानप्रस्थ अवस्था में पाचनतंत्र क्रमशः कमजोर

हो रही होती है। इसी कारण भोजन सरलता से पचता नहीं है तो शारीरिक पाचन अंग को आराम देने के उद्देश्य से उपवास का विधान है। वानप्रस्थ को अपनी सामर्थ के अनुसार रात्रि अथवा दिन में अन्न जुटाकर एक बार खाना चाहिए। यदि वह चाहे तो उसे एक दिन उपवास करके दूसरे दिन सांयकाल को अथवा तीन दिन उपवास करके चौथे दिन सांयकाल को भोजन करना चाहिए (शास्त्री 1996 : (6/19) : 219)। वानप्रस्थ काल में शरीरोपयोगी भोजन रुचिवर्धक नहीं होते हैं अतः भोजन के प्रति रुचि जाग्रत रखने के उद्देश्य से भी उपवास का सहारा लिया जाता था।

वानप्रस्थी को या तो धरती पर बैठे रहना चाहिए या फिर दिन भर खड़े रहना चाहिए। उसे अपने स्थान और आसन की परिधि में घुमना चाहिए। वानप्रस्थ रशरीर से घुटनों तक जलवायु का सेवन करता हुआ, जितेन्द्रिय व अपराजित होकर सरल गति से इधर-उधर आना जाना रखे। (शास्त्री 1996 : (6/31) : 221) निष्कर्षतः शरीर संचालित रखें।

5. इच्छामृत्यु

वानप्रस्थी यदि किसी ऐसे रोग से अक्रांत हो जाए, जिससे बचने की आशा न हो तो इशाण कोण की ओर मुँह करके धीरे-धीरे योगनिष्ठ होकर जुलवायु का भक्षण करता हुआ शरीर त्याग पर्यंत चलता रहे। (शास्त्री 1996 : (6/31) : 221) मिताक्षर एवं अपरार्क ने याज्ञवल्क्य की व्याख्या में उद्धरण दिया है कि वानप्रस्थी को किसी लम्बी यात्रा में लग जाना चाहिए या जल या अग्नि में अपने आप को छोड़ देना चाहिए या अपने को ऊँचाई से नीचे ढकेल देना चाहिए।

आदर्श चरित्र निर्माण

1. स्वाध्याय

वानप्रस्थ लेने के बाद उपनिषद् आदि शास्त्रों के अध्ययन करने का नियम था (शास्त्री 1996 : (6/8) : 217) तथा उसी के अनुसार आचरण आदि का नियम था। मनु कहते हैं कि गृहस्थित होमाग्नि और उसके सब समान साथ लेकर जान से संयतन्द्रिय होकर वन में रहे। वाणप्रस्थ में प्रवेश करने के पश्चात् भी उसे वेदाध्ययन करते रहना चाहिए। वनवासी नियमों का पालन करते हुए वेद के विविध भागों को अपने आत्मज्ञान के निमित्त सदा मन में पढ़ना चाहिए क्योंकि ऋषि, ब्रह्मर्षी, सन्यासी तथा गृहस्थी के शरीर शुद्धि और विद्या तप के लिए इन उपनिषद वाक्यों का निरन्तर अभ्यास किया है।

पंचमहायज्ञ सम्पादित किए जाने की बात होती है- अध्ययन-अध्यापन, नित्यप्रति ब्रह्मयज्ञ है। देवयज्ञ प्रतिदिन देवताओं के लिए स्वाहा के साथ अग्नि में हवन करने को कहते हैं। देवताओं के लिए अग्नि में पकवान देना ही वैश्वदेव यज्ञ है। पितरों के लिए तर्पण, बलि श्राद्ध आदि पितृयज्ञ हैं। जीवों को अन्नदान भूतयज्ञ है।

ये पांच महायज्ञों को निरंतर करना चाहिए (शास्त्री 1996 : (6/24) : 220)।

2. व्यस्तता

वानप्रस्थी को प्रत्येक अमावस्या तथा पूर्णिमा सहित प्रत्येक पर्व पर समयानुसार यथोवत विधि से वैज्ञानिक अग्निहोत्र करते रहना चाहिए (शास्त्री 1996 : (6/9) : 217)। इसी प्रकार नक्षत्रेष्टि, आग्रयण, चतुर्मास, उत्तरायण तथा दाक्षायण इन वेदकर्मों को क्रमशः करते रहना चाहिए। इस प्रकार के पूजन विधान हमें व्यस्त रखने के साथ-साथ अनुशासित जीवन का पाठ भी पढ़ाता है।

3. संयम

वानप्रस्थ के नियम संयमता की प्रवृत्ति अपनाने की सलाह देता है। मनु ने माँस का सर्वथा निषेध किया है लेकिन गौतम के अनुसार व्याघ्र आदि हिंस पशुओं द्वारा मारे गए जीवों का भाँस खा सकता है। शिकार करने न जाए, अपनी शारीरिक क्षमता को समझते हुए संयमित रहे। वह वानप्रस्थ धर्म स्थित है, जो शुद्ध फल, फूल, मूल जो समय पर पककर अपने आप गिर जाएँ उसे खाकर जीवन यापन करना चाहिए (शास्त्री 1996 (6/21) 219)। जीभ पर संयम रखे,

सुपाच्य, सुग्राह्य चीजों का ही सेवन करें। वैखानस शास्त्र के विधान के अनुसार अग्नियों को विधिपूर्वक अपनी आत्मा में समारोपित करके मुनिवृत्ति वाला वानप्रस्थ फलफूल को खाता हुआ अग्नि और ठिकाने का भी परित्याग कर दे (शास्त्री 1996 (6/25) 220)।

4. सेवाभाव

सामर्थ्यानुसार सब का उपकार करना चाहिए, मन को वश में रखें, नित्य दान करे। किसी से प्रतिग्रह न ले और सब जीवों पर दया करें (शास्त्री 1996 : (6/8): 217)।

भोजन के लिए सुलभ सामग्री में से यथाशक्ति बलि (गाय, श्वान और काक आदि पञ्चवैश्वदेव) और याचक को भिक्षा (जल, कन्द-मूल, फल) प्रदान करनी चाहिए और भिक्षा से प्राप्त अन्न से स्वागत सत्कार करना चाहिए (शास्त्री 1996 : (6/7) : 217)।

5. संचय निषेध

वानप्रस्थियों को तपस्वियों से केवल जीवन निर्वाह के लिए उपेक्षित भिक्षा ग्रहण करनी चाहिए (शास्त्री 1996 : (6/27) : 220)। वानप्रस्थी यह भी कर सकता है कि ग्राम से आठ ग्रास परिमाण भर भिक्षा लेकर किसी पत्ते पर अथवा कसोरे में रखकर उसी से उदरपूर्ति के रूप में जीवन निर्वाह करें (शास्त्री 1996 : (6/28) : 221)। पूर्व संचित अन्न को खाने की पूर्णतया मनाही की गई है (शास्त्री 1996 : (6/18) : 219)। बासी खाना स्वास्थ्य वर्धक भी नहीं है। ये तो स्पष्ट बात है कि पूर्व संचित धन को सही प्रबंधन से खर्च न किया जाए तो वह बर्बाद हो जाता है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जहाँ धन संचय की होड़ लगी है, दूसरे तरफ व्यर्थ खर्च को भी बखूबी समझा जा सकता है।

6. आत्मनिर्भर

वानप्रस्थी को हल चले खेतों में, किसी के द्वारा छोड़े अन्न को तथा व्याकुल होने पर भी ग्राम में उत्पन्न होने वाले कन्दमूलों और फलों का सेवन नहीं करना चाहिए (शास्त्री 1996 : (6/17) : 219)। अतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पूर्ण त्याग की बात की गई है। बुजुर्ग अवस्था एकांत, अकेले व स्वनिर्भरता की व्यवस्था है। सन्यासावस्था के लिए ग्रामीण व्यवस्था को त्यागकर आत्मनिर्भर होना ही पड़ेगा। अतः वानप्रस्थ अवस्था आदमी को आत्मनिर्भर बनाती है।

अतः वानप्रस्थ अवस्था में मनुष्य सत्य और असत्य का भेद समझता है। वानप्रस्थ का नियम दुःख और तृष्णा से मुक्ति की अवस्था है। यह आसक्ति से दूर, अध्यात्म और ब्रह्मज्ञान में लीन होने की अवस्था है। व्यक्ति ने बाह्य और आन्तरिक तप के माध्यम से अपने व्यक्तित्व का विकास किया। बाह्य तप के अंतर्गत काया-क्लेश, अनशन, वृत्ति, परिसंख्यान, रस परित्याग आदि नियम थे और अभ्यान्तर तप के अंतर्गत विनय, प्रायश्चित, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग आदि हैं। इन नियमों का पालन करते हुए व्यक्ति संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है।

सन्दर्भ

1. सिंह, शिवजीत 2020। वायु पुराणम। वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन। **2.** दयानन्द, सरस्वती 2005। ऋग्वेदभाष्यम। नई दिल्ली : विश्व उत्थान परिषद। **3.** शास्त्री, जगदीशलाल 1996। मनुस्मृति। दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास। **4.** चौबे, अर्जुन कश्यप 1982। धर्मशास्त्र का इतिहास (पी.वी. काणे)। लखनऊ : उत्तर प्रदेग हिन्दी संस्थान। **5.** पांडेय, उमेश चंद्र गौतम धर्मसूत्रपाणि। वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस। **6.** श्रीनिवास, एल. 1907। बौधायन धर्मसूत्र। मैसूर : गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस। **7.** पांडेय, रामनारायण दत्त 2010। महाभारत शांति पर्व। गोरखपुर : गीताप्रेस।

साहित्य संस्थान
ज.रा. ना. राजस्थान विद्यापीठ
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)
ई-मेल - girindraicon999@gmail.com
मो.- 8578893285

मनुस्मृति वर्णित व्यभिचार, प्रायश्चित तथा दण्ड विधान

संतोष कुमार पाण्डेय

साहित्य समाज का दर्पण होता है। इसमें किसी भी समाज की अच्छाई व बुराई का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। मनुस्मृति समेत स्मृति ग्रन्थ भी इसके अपवाद नहीं हैं। इन स्मृति ग्रन्थों के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक बुराई के रूप में व्यभिचार का उल्लेख मिलता है। स्मृति ग्रन्थों के रचनाकारों ने न सिर्फ इसकी निन्दा की बल्कि वर्णसंकरता का मूल कारण मानते हुए इसे रोकने के लिए प्रायश्चित के साथ-साथ समुचित दण्ड का भी विधान किया गया।

व्यभिचार का अर्थ है भ्रष्ट होना। इसके अन्तर्गत किन्हीं दो अविवाहित स्त्री-पुरुष (जो पति-पत्नी नहीं हैं) के बीच आपसी सहमति से स्थापित किए यौन सम्बन्ध शामिल किए जाते हैं। स्मृति ग्रन्थों में व्यभिचार का क्षेत्र अति विस्तृत माना गया। मनुस्मृति में किसी पराई वैवाहिक स्त्री अथवा पुरुष का परस्पर संभोग करना, इससे प्रेरित किसी भी विचार शब्द या कार्य को व्यभिचार की श्रेणी में रखा गया। चूंकि इस अनैतिक कृत्य से पति-पत्नी के पवित्र रिश्तों में अविश्वास, कलह, ईर्ष्या तथा छल-कपट जैसी भावना का जन्म होता है इसलिए इसे रोकने के लिए स्मृतियों, खासकर मनुस्मृति में प्रयास किए गए। इस समय का समाज पुरुष प्रधान (पितृसत्तात्मक समाज) होने के कारण पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को ही इस अनैतिक कार्य के लिए अधिक जिम्मेदार ठहराया गया जबकि इस कार्य में स्त्री व पुरुष दोनों की समान भागीदारी होती है। भारतीय समाज में आरम्भ से ही जहां एक तरफ स्त्री को माता, पत्नी, बहन, पुत्री इत्यादि रूपों में सम्मानित स्थान दिया गया, वहीं दूसरी तरफ इस तरह का निन्दनीय तथा अनैतिक कृत्य करने वाली स्त्रियों के लिए पुरुषों के समान या कभी-कभी पुरुषों की तुलना में अधिक कठोर सामाजिक दण्ड के साथ-साथ प्रायश्चित का भी विधान किया गया ताकि इस प्रकार की सामाजिक बुराई पर अंकुश लगाकर वर्णसंकरता को रोका जा सके। **(बीज शब्द :** व्यभिचार, व्यभिचारी पुरुष, व्यभिचारी स्त्री, पति-पत्नी, संभोग, स्मृति ग्रन्थ, मनुस्मृति, सामाजिक बुराई, अनैतिक कृत्य, वर्णसंकरता, प्रायश्चित दण्ड)।

स्मृति ग्रन्थ भारतीय परम्परा के वे ग्रन्थ हैं, जो किसी ऋषि के द्वारा आचार संहिता तथा विधि विधान के रूप में लिपिबद्ध अथवा संकलित किए गए। ये एक प्रकार से सामाजिक आचरण-शास्त्र हैं। परम्पराओं का संकलन-स्मरण किए जाने के कारण इन्हें स्मृति नाम दिया गया। ये अधिकांशतः पद्य में लिखी गई। इनमें प्राचीन लौकिक व्यवहार, धर्मव्यवस्था, विधि-नियम, तीर्थ माहात्म्य, धर्माचरण इत्यादि की महिमा का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

स्मृति ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं - मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, विष्णु स्मृति, अत्रि स्मृति, अंगिरा स्मृति, हारीति स्मृति, यम स्मृति, औशनम स्मृति, वृहस्पति स्मृति, कात्यायन स्मृति, व्यास स्मृति, पराशर स्मृति, गौतम स्मृति, दक्ष स्मृति, आपस्तम्ब स्मृति, वशिष्ठ स्मृति, शंख स्मृति, संवर्त स्मृति, देवल स्मृति इत्यादि। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि अधिकांश स्मृतियों के नाम उनके संकलनकर्ता ऋषियों के नाम पर रखे गए। इन स्मृतियों के संकलन का समय भिन्न-भिन्न है। उदाहरण के लिए मनुस्मृति का 200 ई. पूर्व से 200 ई., याज्ञवल्क्य स्मृति का 100 ई. पूर्व से 300 ई., नारद स्मृति का 300 ई. पूर्व से 400 ई., पराशर स्मृति का संकलन 300 ई. पू. से 500 ई., वृहस्पति स्मृति का 300 ई. पूर्व से 500 ई., कात्यायन स्मृति का 400 ई. पूर्व से 600 ई., देवल स्मृति पूर्व मध्यकालीन है। उपर्युक्त सभी स्मृतियों में मनुस्मृति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। भारत में इसका सर्वप्रथम मुद्रण 1813 ई. में कलकत्ता में हुआ। इसमें 2694 श्लोक हैं जो 12 अध्यायों में विभाजित है। इसके अध्यायों में वर्णित प्रमुख विषय इस प्रकार हैं -- वर्णाश्रम धर्म की शिक्षा, धर्म की परिभाषा, ब्रह्मचर्य की शिक्षा तथा विवाह के प्रकार, गृहस्थ जीवन, वानप्रस्थ जीवन, राजधर्म तथा दण्ड विधान, न्याय व्यवस्था, पत्नी-पत्नी के कर्त्तव्य, चारों वर्णों के अधिकार तथा उनके कर्त्तव्य, दान-स्तुति तथा प्रायश्चित, कर्म विवेचन तथा ब्रह्म (मोक्ष) की प्राप्ति। मनस्मृति को हिन्दू धर्म का प्रथम विधान माना जाता है। इसे मुख्य रूप से जाति व्यवस्था को स्थापित करने तथा उसे धार्मिक आधार प्रदान करने के उद्देश्य से लिखा गया माना जाता है।

मनुस्मृति में अनेक स्थानों पर व्यभिचार से सम्बन्धित वर्णन प्राप्त होते हैं। इसमें व्यभिचार को 'संग्रहण' बताया गया है जिसमें स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंध एवं व्यवहार का निरूपण है। व्यभिचार के तीन स्तर पर स्वीकार किए गए -- 1, मौखिक स्तर पर, 2. शारीरिक स्तर पर, 3. मानसिक स्तर पर। इन तीनों प्रकार के व्यभिचारों में शारीरिक व्यभिचार को सबसे निकृष्ट स्तर का बताया गया तथा इसके लिए प्रायश्चित के साथ-साथ कठोर दण्ड का भी प्रावधान किया गया। मनुस्मृति के समान अन्य स्मृतियों में भी इस प्रकार की व्यवस्था दी गई। व्यभिचार क्या है? इस विषय में वर्णन करते हुए मनुस्मृति में कहा गया कि यदि कोई व्यक्ति नदी के तट अथवा संगम पर, घने जंगल में किसी पराई स्त्री से बात करता है तो वह स्त्री-संग्रह का दोषी माना जाएगा। किसी पराई स्त्री को सुगन्धित इत्र/तेल भेजना, स्त्री के पहने हुए वस्त्र तथा आभूषण को स्पर्श करना अथवा स्त्री के साथ एक ही आसन पर बैठना व्यभिचार है।[1] इसके साथ-साथ किसी स्त्री का परपुरुष को स्वयं के शरीर, वस्त्र तथा आभूषण को स्पर्श करने की अनुमति देना भी व्यभिचार की श्रेणी में रखा गया। नारद स्मृति में व्यभिचार का वर्णन करते हुए कहा गया कि किसी दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ अनियमित समय पर मिलना, उसके साथ बैठना, उससे वार्तालाप करना इत्यादि व्यभिचार की श्रेणी में आता है।[2] मनुस्मृति में एक स्थान पर बताया गया कि यदि कोई पुरुष चारण आदि का स्त्रियों, दासियों, ब्रह्मचारी स्त्रियों से एकान्त में वार्तालाप करता है तो यह व्यभिचार तो नहीं है परन्तु ऐसा करने पर उसे दण्डित अवश्य किया जाएगा।[3] वशिष्ठ स्मृति में व्यभिचार का वर्णन करते हुए चार प्रकार की स्त्रियों को त्याग देने योग्य बताया गया-1. शिष्य से संभोग करने वाली। 2. निम्न जाति के पुरुष के साथ संभोग करने वाली। 3. पति के गुरु के साथ संभोग करने वाली। 4. पति को मराने का प्रयत्न करने वाली।[4]

उपर्युक्त सभी वर्णनों से स्पष्ट है कि किसी पुरुष द्वारा पराई स्त्री से बातचीत करना, उसकी अनुमति से अथवा बिना अनुमति के उसे स्पर्श करना, कीमती वस्त्र-आभूषण या बहुमूल्य उपहार देना, सुगन्धित तेल, इत्र इत्यादि देना, पराई स्त्री के साथ आसन पर बैठना, उससे घर के बाहर नदी तट पर, जंगल में या फिर किसी एकान्त स्थान पर मिलना इत्यादि को व्यभिचार के अन्तर्गत माना गया। इसमें किसी पराई वैवाहिक स्त्री अथवा पुरुष का परस्पर संभोग करना

या इससे प्रेरित कोई भी विचार शब्द अथवा कृत्य को व्यभिचार की श्रेणी में रखा गया। मनुस्मृति में इसे तीन प्रकार के पापयुक्त कर्मों में शामिल किया गया है- - 1. चोरी करना, 2. हत्या करना, 3. परस्त्री से संभोग करना।[5] जो व्यक्ति इस प्रकार के अनैतिक कृत्य को करता है, वह ब्रह्मराक्षस बन जाता है तथा यदि कोई स्त्री इस प्रकार के अनैतिक कृत्य को करती है तो वह अगले जन्म में सियार (शृंगाल) के गर्भ से उत्पन्न होती है।[6] मनुस्मृति में व्यभिचार को वर्णसंकरता का मूल कारण बताया गाय तथा इसे महान अधर्म कहा गया। प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों में विवाह का मूल उद्देश्य स्त्री-पुरुष का एकीकृत होना तथा सन्तान उत्पन्न करके अपने वंश को आगे बढ़ाना था। भारतीय परम्परा चारों पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के क्रमिक पालन पर बल देती है। विवाह के पश्चात संयमित काम की पूर्ति को स्मृति ग्रन्थों में न्यायोचित तथा मोक्ष की प्राप्ति में सहायक बताया गया। यह वंश परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए अनिवार्य भी है। स्वयं मनुस्मृति में पत्नी के गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया कि एक गुणी पत्नी वही है जो स्वयं के विचारों, शब्दों तथा काम को संयमित रखती है।[7] विवाह पश्चात काम की पूर्ति से पति-पत्नी का वैवाहिक जीवन खुशहाल होता है, उनमें विश्वास की भावना दृढ़ होती है जबकि व्यभिचार से इनमें अविश्वास की भावना जन्म लेती है, इसीलिए इसे महान अधर्म माना गया तथा मनुस्मृति समेत लगभग स्मृति ग्रन्थों में इसे रोकने का प्रयास किया गया।

व्यभिचार के लिए प्रायश्चित

प्रायश्चित धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट वह कृत्य है जिसके करने से व्यक्ति का कृत पाप नष्ट हो जाता है। मनुस्मृति में व्यभिचारिणी स्त्री तथा व्यभिचारी पुरुष के लिए पाश्चाताप के रूप में 'चन्द्रायण व्रत' करने का निर्देश दिया गया है।[8] इस व्रत में त्रिकाल स्नान, कृष्ण पक्ष में भोजन में प्रतिदिन एक-एक ग्रास की कमी करना तथा पुनः शुक्ल पक्ष में भोजन में प्रतिदिन एक-एक ग्रास की वृद्धि करने का विधान है। मनुस्मृति में इस व्रत का वर्णन करते हुए कहा गया है कि -- एकैकं हासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्। उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतत्तच्चान्द्रायणं स्मृतम्।।[9] अर्थात् त्रिकाल (प्रातःकाल, मध्याह्न काल, सायंकाल) स्नान करते हुए (पूर्णिमा को 15 ग्रास भोजन कर) कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन एक-एक ग्रास भोजन घटाया जाए एवं पुनः शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन भोजन में एक-एक ग्रास बढ़ाया जाए, यही चन्द्रायण व्रत है।

मनुस्मृति एक स्थान पर व्यभिचार के प्रायश्चित के लिए चर्मपुट, धनुष, बंकरा तथा भेड़ का दान करने का निर्देश दिया गया।[10] एक अन्य स्थान पर प्रायश्चित स्वरूप पुरुष द्वारा स्त्री को भोजन, वस्त्र तथा निवास स्थान देने का भी वर्णन है।[11] मनुस्मृति के समान अन्य स्मृतियों में भी व्यभिचार के प्रायश्चित बताए गए। उदाहरण के लिए याज्ञवल्क्य स्मृति में ऐसा उल्लेख मिलता है कि व्यभिचारिणी स्त्री मासिक धर्म होने पर शुद्ध हो जाती है।[12] मनुस्मृति में ऐसा उल्लेख मिलता है कि व्यभिचार करने वाला पुरुष तपस्या करके इस पाप से मुक्त हो सकता है। ठीक इसी प्रकार यदि कोई स्त्री व्यभिचार कर लेती है तो वह भी पुरुषों के समान प्रायश्चित कर सकती है। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष पर मोहित हो जाती है तथा व्यभिचार करती है तो वह भी प्रजापत्य संस्कार करके शुद्ध हो सकती है। यदि किसी स्त्री के साथ उसी जाति के पुरुष ने व्यभिचार किया है तो वह तीन दिन तक उपवास करके इसके पाप से मुक्ति पा सकता है। नारद स्मृति के अनुसार जो पुरुष किसी निषिद्ध स्त्री के साथ संभोग करता है, ऐसे पापी पुरुष को केवल तपस्या के द्वारा शुद्ध किया जा सकता है।[13] मनुस्मृति में एक जगह व्यभिचार के विस्तृत स्वरूप (मानसिक व्यभिचार) का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि जो स्त्री मन में अपने पति का अहित या पर पुरुष को सोचती है तो वह मानसिक व्यभिचार करती है तथा इसकी शुद्धि मंत्रों से होती है।[14]

दण्ड :- मनुस्मृति में स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए व्यभिचार के प्रायश्चित स्वरूप अनेक उपाय बताए गए, परन्तु यदि व्यभिचार (संभोग) के परिणास्वरूप स्त्री गर्भवती हो जाती है तो इसके लिए

कोई प्रायश्चित संभव नहीं है। इसमें व्यभिचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत माना गया तथा बुआ, मौसी, मामा, चाचा, गुरु इत्यादि की पुत्री के साथ बनाए गए अवैध यौन सम्बन्ध को व्यभिचार की श्रेणी में सम्मिलित किया गया (मनुस्मृति, 11/170-171) तथा जो व्यक्ति इन सगे-सम्बन्धियों (रिश्तेदारों/पाटीदारों) के साथ जान-बूझकर व्यभिचार करता है, उसके लिए कोई प्रायश्चित नहीं बताया गया। इस स्मृति में सिर्फ सामान्य प्रकृत्ति वाले व्यभिचार के लिए प्रायश्चित का विधान किया गया जबकि गम्भीर प्रकृत्ति वाले अथवा जान-बूझकर किए जाने वाले व्यभिचार के अपराध में कठोर दण्ड का विधान किया गया तथा ऐसे आपराधिक कृत्य को रोकने के लिए दण्ड को ही प्रधान उपाय के रूप में स्वीकार किया गया।

स्मृति ग्रन्थों में व्यभिचार को वर्णसंकरता का मूल कारण बताया गया तथा इसे महान अधर्म की श्रेणी में रखा गया इसीलिए इसे रोकने के लिए प्रायश्चित के साथ-साथ दण्ड की भी व्यवस्था की गई। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि प्रायश्चित तथा दण्ड में मूल अन्तर यह है कि प्रायश्चित किसी अपराध के लिए पश्चाताप के रूप में किया गया कोई स्वैच्छिक कार्य है जबकि दण्ड के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए अपराध के लिए राजा/राज्य से सम्बन्धित अधिकारी द्वारा सजा दी जाती है। दण्ड शारीरिक अथवा आर्थिक या फिर दोनों प्रकार का हो सकता है। स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए व्यभिचार के अपराध में दण्ड देने की व्यवस्था की गई। दण्ड मुख्यतः वर्णाश्रम धर्म को ध्यान रखकर था। अर्थात् व्यभिचार के एक समान अपराध के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण को अलग-अलग दण्ड था। मनुस्मृति के अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि "यदि कोई शूद्र वर्ण का व्यक्ति किसी सुरक्षित/ असुरक्षित स्त्री के साथ संभोग करता तो राजा उसका लिंग कटवा देता। इसी प्रकार पति से सुरक्षित ब्राह्मण स्त्री के साथ यदि कोई वैश्य वर्ण का व्यक्ति संभोग करता तो राजा द्वारा उसकी समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली जाती तथा उसे एक वर्ष का कारावास दिया जाता। यदि सुरक्षित ब्राह्मण स्त्री के साथ कोई क्षत्रिय पुरुष संभोग करता तो राजा उसका सिर मुण्डित करवा देता तथा उस पर 1000 पण का अर्थ दण्ड लगा सकता था। यदि असुरक्षित ब्राह्मण स्त्री के साथ इस प्रकार का अनैतिक कृत्य वैश्य तथा क्षत्रिय वर्ण का व्यक्ति करता तो उस पर क्रमशः 500 पण एवं 1000 पण का अर्थ दण्ड लगाया जाता। यदि कोई वैश्य/क्षत्रिय वर्ण का पुरुष किसी सुरक्षित ब्राह्मण स्त्री के साथ संभोग करता है तो उसे शूद्र वर्ण की भाँति दण्डित किया जाना चाहिए। अर्थात् राजा को यह अधिकार है कि उस व्यक्ति को अग्नि में जलाकर मार डालने का आदेश दे।"[15] यदि ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति किसी क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र वर्ण की स्त्री के साथ संभोग करता है तो वह भी दण्ड का पात्र है। मनुस्मृति के अनुसार - *अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन। शतानि पञ्च दण्डयः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम्।।*[16] अर्थात् क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा के संभोग करने वाला ब्राह्मण 500 पण से तथा अन्त्यज स्त्री के साथ संभोग करने वाला ब्राह्मण 1000 पण से दण्डनीय होगा।

इस स्मृति में एक स्थान पर राजा को दूसरे पुरुषों की पत्नियों के साथ संभोग में लिप्त पुरुषों को भयंकर दण्ड देकर देश से निकाल देने का निर्देश दिया गया -- *परदाराभिमर्षेषु प्रवृत्तान्नन् महीपतिः। उद्वेकेनारदण्डश्चिनयित्वा यात्रायेत्।।*[17] मनुस्मृति में व्यभिचार को वर्णसंकरता का जनक बताया गया है तथा इसे रोकने पर विशेष जोर दिया गया है। इसी कारण राजा को निर्देश दिया गया कि जो मनुष्य पराई स्त्री के साथ संभोग करे, उसे कठोर दण्ड दे। राजा ऐसे व्यक्तियों के कान, नाक, होठ, लिंग इत्यादि कटवा दे। इसी स्मृति में एक स्थान पर कहा गया है- *तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः। येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते।।*[18]

परस्त्री से संभोग से वर्णसंकर पुत्र का जन्म होता है, इस वर्णसंकर द्वारा किया गया अधर्म सबके नाश में समर्थ होता है। इस स्मृति में न सिर्फ व्यभिचारी पुरुषों को दण्डित करने की बात कही गई बल्कि व्यभिचारी स्त्रियों को भी कठोर दण्ड देने का निर्देश

दिया गया है। एक स्थान पर कहा गया कि यदि कोई स्त्री अपने पिता अथवा बान्धव के धनी होने तथा स्वयं के सौन्दर्य के अभिमान से किसी परपुरुष के साथ संभोग करे तो उसे राजा द्वारा कई लोगों के सामने या फिर सार्वजनिक स्थान पर कुत्ते से कटवाकर दण्डित करना चाहिए।[19] एक अन्य श्लोक में कहा गया कि जो व्यक्ति गुरु की पत्नी से संभोग करता है उसे दण्डस्वरूप तपती हुई लोहे की शैय्या पर सोने या लोहे की स्त्री बनवाकर उससे आलिंगन करवाया जाना चाहिए।[20] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय व्यभिचार इतना बढ़ गया था कि गुरु की पत्नी (गुरु माता) भी इससे बच नहीं पाती थी। मनुस्मृति की भांति अन्य स्मृति ग्रन्थों में भी व्यभिचारिणी स्त्री को दण्ड देने का निर्देश दिया गया। उदाहरण के लिए गौतम स्मृति में कहा गया कि दुराचारी स्त्री को बन्दी बनाकर रखना चाहिए तथा उसे केवल जीविका के लिए भोजन, वस्त्र प्रदान करना चाहिए। ओशनम् स्मृति तथा विष्णु स्मृति के वर्णनानुसर जो स्त्री जानबूझकर व्यभिचार करती है, उसे घर की चाहरदीवारी में कैद करके रखना चाहिए, ऐसी स्त्रियों को पहनने के लिए गन्दे वस्त्र ही प्रदान करना चाहिए, उसे जमीन पर सुलाना चाहिए तथा सिर्फ उतना ही भोजन प्रदान करना चाहिए जिससे वह जीवित रह सके। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति में भी व्यभिचारी स्त्रियों को समस्त अधिकारों से वंचित करने के साथ-साथ जीविकोपार्जन के लिए अनिवार्य भोजन तथा मलिन वस्त्र प्रदान कर सदैव जमीन पर सुलाए जाने का निर्देश दिया गया।[21]

उल्लेखनीय है कि मनुस्मृति में व्यभिचारी स्त्रियों को इस तरह का कठोर शारीरिक व मानसिक दण्ड देने का आदेश नहीं दिया गया है। मनुस्मृति के शब्दों में "परपुरुष संसर्ग में निन्दित ऐसी स्त्रियाँ सियार कुल (शृंगाल योनि) में जन्म लेती हैं तथा ये समस्त पाप रोगों से निन्दित होती हैं।"[22] अतः स्पष्ट होता है कि मनुस्मृति में दण्ड की तुलना में प्रायश्चित पर अधिक जोर दिया गया। इसमें पारलौकिक जीवन का आश्रय लेकर उन्हें डराकर नैतिक रूप से सुधारने पर ही अधिक जोर दिया गया। इसमें व्यभिचार सम्बन्धी जो दण्ड का उल्लेख है, उससे एक बात स्पष्ट पता चलती है कि इस समाज जहाँ व्यभिचारी पुरुष व्यभिचार करने के बाद प्रायश्चित द्वारा अथवा दण्ड द्वारा सामाजिक बहिष्कार से बच जाते थे, वहीं व्यभिचारिणी स्त्रियों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था। मनुस्मृति के श्लोक सं. 4/220 के अनुसार "व्यभिचारी स्त्रियों द्वारा दिया गया अन्न खाने योग्य नहीं होता है, वह वीर्य (शुक्र) के समान त्याज्य है।" इस स्मृति में कुछ स्थानों पर व्यभिचार के अपराध के लिए पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को ही अधिक जिम्मेदार ठहराया गया है। उदाहरण के लिए श्लोक सं. 9/14 में कहा गया है कि "स्त्रियाँ सुन्दर रूप की प्रतीक्षा नहीं करती हैं, यह पुरुष है, बस इसी विचार से वे सुन्दर अथवा कुरूप पुरुषों के साथ संभोग करती हैं।" इसी प्रकार श्लोक सं. 9/17 में मनु ने "स्त्रियों के लिए शैय्या, आसन, आभूषण, काम, क्रोध, लोभ, कुटिलता, द्रोह भाव तथा दुराचरण इस सृष्टि के प्रारम्भ से माना है" तथा इसी के परिणामस्वरूप स्त्रियों की रक्षा करने का निर्देश दिया गया है ताकि वे परपुरुषों की तरफ आकर्षित न हों। मनुस्मृति में प्रायः इस प्रकार के वर्णन पितृसत्तात्मक समाज के प्रभाव के कारण मिलते हैं। इस स्मृति पर स्त्री विरोधी होने का आरोप लगाया जाता है जबकि ये बात पूर्ण रूप से सत्य नहीं है क्योंकि इसी स्मृति में स्त्रियों के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया कि- *यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूजयन्ते सर्वास्त्राफलाः क्रिया।।* (मनुस्मृति 3/56)।

अर्थात् जिस समाज अथवा परिवार में स्त्रियों का आदर किया जाता है, वहाँ पर देवता निवास करते हैं तथा जहाँ पर इनका आदर-सम्मान नहीं होता है, वहाँ पर सभी काम निष्फल हो जाते हैं, भले ही वे (स्त्रियों का अनादर करने वाले) कितना भी श्रेष्ठ कर्म कर लें, उन्हें दुःखों का ही सामना करना पड़ता है। इसमें स्त्रियों को घर की लक्ष्मी कहा गया (मनुस्मृति 1/26)। श्लोक सं. 1/16 में पति व पत्नी को एक दूसरे के

बिना अपूर्ण बताया गया। इसके अनुसार साधारण से साधारण धार्मिक अनुष्ठान भी पुरुष बिना स्त्रियों के नहीं कर सकते हैं। इसी स्मृति के श्लोक संख्या 3/114 में नवविवाहित स्त्रियों, अल्पवयस्क कन्याओं, रोगी तथा गर्भिणी स्त्रियों को घर में आए अतिथि से भी पूर्व भोजन कराने का निर्देश दिया गया है। इसी प्रकार श्लोक सं.3/57 में कहा गया कि जिस परिवार में स्त्रियाँ अपने पति के गलत आचरण के कारण अत्याचार/व्यभिचार इत्यादि दोनों के कारण दुःखी रहती हैं, उस कुल का शीघ्र ही नाश हो जाता है तथा जिस कुल (परिवार) में स्त्रियाँ पुरुषों के उत्तम आचरण से प्रसन्न रहती हैं, उस कुल की यश-कीर्ति में सदैव वृद्धि होती रहती है-*शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्। न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।* (मनुस्मृति, 3/57)।

मनुस्मृति में जहाँ एक तरफ स्त्री को परिवार में माता, बहन, पुत्री, पत्नी के रूप में अत्यधिक सम्मानित स्थान दिया गया, उन्हें घर की लक्ष्मी समझकर प्रत्येक स्वरूप में पूज्यनीय माना गया वहीं दूसरी तरफ व्यभिचार जैसे अनैतिक कृत्य में संलिप्त पाए जाने पर इनके लिए दण्ड की भी व्यवस्था की गई। इस समय समाज का स्वरूप पितृसत्तात्मक था। इसी कारण व्यभिचार के अपराध के लिए पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को ही मुख्य रूप से जिम्मेदार ठहराया गया जबकि इस कुकृत्य में स्त्री व पुरुष दोनों की समान रूप से भागीदारी होती है। व्यभिचार सम्बन्धी दण्ड विधान स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए बनाया गया परन्तु पुरुष वर्ग प्रायश्चित तथा दण्ड द्वारा इन अपराधों से मुक्त हो जाता, वहीं स्त्री इन प्रायश्चित तथा दण्ड विधानों के बावजूद भी इससे पूर्ण रूप से मुक्ति नहीं पा सकती थी। स्त्री यदि व्यभिचार सम्बन्धी दोषी पाई जाती तो उसे स्त्री के चरित्र से जोड़कर एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता, उसे समस्त दुर्गुणों से युक्त समझकर समाज में अपमानित दृष्टि से देखा जाता। इसके पीछे का मुख्य कारण तत्कालीन समाज का पुरुषवादी दृष्टिकोण ही था।

निष्कर्ष : मनुस्मृति में व्यभिचार का क्षेत्र अति व्यापक है। इसमें पति/पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री या पुरुष के साथ संभोग को अथवा इससे प्रेरित कोई भी विचार, शब्द या कार्य को व्यभिचार के अन्तर्गत रखा गया। इस स्मृति में व्यभिचार को अत्यधिक निन्दनीय तथा घृणित कार्य बताया गया, इसे वर्णसंकरता का मूल कारण बताते हुए महान अधर्म की संज्ञा दी गई तथा इसे रोकने के लिए प्रायश्चित के साथ-साथ दण्ड का भी विधान किया गया। इसमें व्यभिचारी स्त्री तथा पुरुष को समाज से बहिष्कृत करने का भी निर्देश दिया गया। यद्यपि इस अनैतिक कृत्य को रोक पाने में मनु कितने सफल हुए, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है परन्तु इस तरह के आपराधिक कृत्य को करने वाले स्त्री तथा पुरुष के लिए सामाजिक स्तर पर बहिष्कार, व्यक्तिगत स्तर पर प्रायश्चित तथा राज्य के स्तर पर राजा द्वारा अपराधी के लिए दण्ड का प्रावधान करना निश्चित रूप से मनुस्मृति के रचनाकार की दूरदर्शी सोच को प्रदर्शित करता है।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति, 8/356-358। **2.** नारद स्मृति, 12/62-69। **3.** मनुस्मृति, 8/363। **4.** वशिष्ट स्मृति, 21/10। **5.** मनुस्मृति, 12/7। **6.** वही, 5/164। **7.** वही, 5/165। **8.** वही, 11/117। **9.** वही, 11/216। **10.** वही, 11/138। **11.** वही, 11/182-188। **12.** याज्ञवल्क्य स्मृति 1/72। **13.** नारद स्मृति, 12/77। **14.** मनुस्मृति, 9/21। **15.** वही, 8/374-377। **16.** वही, 8/35। **17.** वही, 8/352। **18.** वही, 8/353। **19.** वही, 8/371। **20.** वही, 8/372। **21.** याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/70। **22.** मनुस्मृति, 9/30।

शोधार्थी-प्राचीन इतिहास पुरातत्व
एवं संस्कृति विभाग
तिलकधारी स्तानकोत्तर महाविद्यालय
जौनपुर (उत्तर प्रदेश)
मो. : 9415311389

राष्ट्रीय शिक्षा और भाषा नीति : समग्र दृष्टिकोण

डॉ. वी. गोविंद

प्रस्तावना - देश का समग्र विकास प्रत्यक्ष रूप से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर निर्भर करता है, जो नागरिकों में आवश्यक ज्ञान और कौशल का निर्माण कर राष्ट्रीय कार्यक्षमता में सुधार लाने में सहायक होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (एनईपी) का उद्देश्य ऐसे शैक्षिक परिवेश का निर्माण करना है जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, नवाचार और अनुसंधान की वर्तमान चुनौतियों का सफलतापूर्वक समधान कर सके तथा भारत को एक महाशक्ति के रूप में स्थापित करने में योगदान दे सके। यह नीति पहुंच, समानता, गुणवत्ता और उत्तरदायित्व जैसे मूलभूत स्तंभों पर आधारित है।

एनईपी 2020 को इस दृष्टिकोण से तैयार किया गया है कि यह देश के युवाओं को वर्तमान और भावी वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिए सक्षम बनाए तथा भारतीय शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन ला सके। भाषा नीति, जिसे विभिन्न संदर्भों में भाषा-शिक्षा नीति, शिक्षा में भाषा नीति, अथवा भाषा योजना नीति कहा जाता है जो शैक्षिक संदर्भ में भाषा के प्रयोग और स्वरूप पर केंद्रित होती है। यह केवल औपचारिक शिक्षा तक सीमित नहीं होती, बल्कि घरों, समुदाओं और समाजीकरण की अनौपचारिक प्रक्रियाओं को भी समाहित करती है। इस नीति का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि कैसे भाषा नीतियाँ- विशेष रूप से अल्पसंख्यक एवं स्वदेशी भाषाओं के संदर्भ में शैक्षिक प्रक्रियाओं, शिक्षण पद्धतियों और पाठ्यचर्या के माध्यम से व्याख्यायित और क्रियान्वित होती हैं।

शैक्षिक भाषा नीतियाँ दो स्तरों पर कार्य करती हैं, औपचारिक और अनौपचारिक। ये नीतियाँ भाषा के रूप, कार्य, उपयोग और अधिग्रहण को प्रभावित करती हैं, और विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक परतों में विकसित होती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने तीन-भाषा सूत्रों के प्रारंभिक क्रियान्वयन के माध्यम से विद्यालय स्तर पर बहुभाषावाद को बढ़ावा देने का प्रस्ताव रखा है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि एनईपी 2020 की आवश्यकता क्यों उत्पन्न हुई और यह कितनी हद तक भारतीय समाज के समग्र विकास में सहायक हो सकती है। विशेष रूप से, यह अध्ययन इस बात पर केंद्रित है कि भाषा नीती, बहुभाषावाद और एनईपी में निहित भाषिक दृष्टिकोण किस प्रकार प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक छात्रों के

समग्र बौद्धिक और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बीज शब्द : एनईपी 2020, शैक्षिक नवाचार, अनुसंधान, बहुभाषावाद, भाषाई सामाजीकरण, त्रिभाषा सूत्र, स्वदेशी भाषाएँ।

मूल आलेख

समानता आधारित समाज की स्थापना और मानव संसाधनों की पूर्ण क्षमता का विकास किसी भी राष्ट्र की प्रगति के मूल घटक माने जाते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) इसी दिशा में एक दूरदर्शी पहल है, जो भारत की सतत प्रगति और वैश्विक नेतृत्व की आकांक्षा को साकार करने हेतु आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय एवं समता, वैज्ञानिक चेतना, राष्ट्रीय समावेशन तथा सांस्कृतिक संरक्षण जैसे आयामों को सशक्त करने पर बल देती है। इस लक्ष्य का आधार सभी के लिए उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा की सार्वभौमिक पहुंच है।

भारत ने 2015 में संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य (SDG-4) को अपनाते हुए 2030 तक सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने और आजीवन सीखने के अवसरों को बढ़ावा देने का संकल्प लिया। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार ने NEP 2020 को प्रारंभिक से लेकर उच्च शिक्षा तक के एकीकृत सुधार हेतु रूपरेखा के रूप में प्रस्तुत किया । यह नीति डॉ. के कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में गठित समिति की अनुशंसाओं के आधार पर तैयार की गई है, जिसका उद्देश्य आजन्म शिक्षण की संस्कृति को प्रोत्साहित करना और सार्वभौमिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुलभ बनाना है।

पूर्ववर्ती दो नीतियों की तुलना में NEP-2020 को अधिक व्यापक, समावेशी और परिणामोन्मुखी नीति के रूप में देखा जा रहा है, जिसे लगभग पाँच वर्षों की व्यापक योजना और परामर्श प्रक्रिया के बाद लागू किया गया है। इस नीति की सबसे विशेष बात यह है कि यह स्वतंत्रता के बाद पहली बार भाषाई विविधता और भाषा की शक्ति को केंद्र में लाती है। 'भाषा' शब्द का इसमें कुल 206 बार प्रयोग किया गया है, 126 बार बहुवचन रूप में (languages) और 80 बार एकवचन रूप में (language)। यह संकेत है कि यह नीति किसी एक भाषा तक सीमित न रहकर भारत की विविधा भाषाई समृद्धि को सहेजने का कार्य कर रही है। व्यापक दृष्टिकोण से देखें तो यह स्पष्ट है कि भाषा समाज को जोड़ने वाला एक प्रमुख सेतु है। विशेषकर शिक्षा एवं अधिगम की प्रक्रिया में भाषा की भूमिका केंद्रीय होती है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी भाषा का अत्यधिक वर्चस्व बच्चों के सहज अधिगम में बाधा उत्पन्न करता है, जिससे उनकी अभिव्यक्ति और व्यक्तित्व विकास प्रभावित होते हैं।

मनोवैज्ञानिक शोध बताते हैं कि बच्चा अपनी मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में अधिक सहजता और गति से सीखता है। NEP 2020 इस तथ्य को स्वीकार करते हुए प्रारंभिक शिक्षा के स्तर पर मातृभाषा/गृहभाषा या स्थानीय भाषा को माध्यम बनाने की बात करती है, ताकि बच्चों को उनकी सांस्कृतिक जड़ों सो जोड़ा जा सके और वे आत्मविश्वास के साथ ज्ञान अर्जित कर सकें।

नई शिक्षा नीति में शिक्षा प्रणाली के चार प्रमुख घटकों जैसे छात्र, शिक्षक, पाठ्यक्रम एवं भौतिक संसाधनों को ध्यान में रखकर एक संतुलित और प्रभावशाली व्यवस्था की कल्पना की गई है। भाषाई विविधता को संरक्षित कर छात्रों को बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक और बहुपरिप्रेक्ष्य में शिक्षा प्रदान करने की दिशा में यह नीति एक क्रांतिकारी परिवर्तन की आधारशिला रखती है। इस प्रकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 केवल एक शैक्षणिक दस्तावेज नहीं, बल्कि भविष्य के समतामूलक, ज्ञानप्रधान और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध भारत की संरचना की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : शिक्षा के पुनरुत्थान की व्यापक रूपरेखा

भारत की शिक्षा प्रणाली में व्यापक परिवर्तन लाने की एक ऐतिहासिक पहल के रूप में। यह नीति भारत सरकार द्वारा जुलाई 2020 में अनुमोदित की गई, जिसका उद्देश्य 21वीं सदी की बदलती सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था को समावेशी, लचीली, बहु-विषयक एवं नवाचार केंद्रित बनाना है। एनईपी 2020 शिक्षा सुधार के अनेक आयामों को स्पर्श करती है, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं -

1. समग्र और बहु-विषयक शिक्षा : यह नीति शिक्षा को रटने की प्रवृत्ति से मुक्त कर उसे समझ आधारित, रचनात्मक और समस्या - समाधान केंद्रित बनाने पर बल देती है। इसमें कला, मानविकी, विज्ञान, खेल, गणित, सामाजिक विज्ञान और व्यावसायिक कौशल का समन्वित समावेश प्रस्तावित है ताकि छात्र बहुआयामी दृष्टिकोण विकसित कर सकें।

2. प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ECCE) : एनईपी 2020 के अनुसार 3-6 वर्ष की आयु का समय मस्तिष्क विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इस नीति में खेल आधारित, गतिविधि प्रधान शिक्षण और 'उम्र अनुकूल' पाठ्यक्रम को प्राथमिकता दी गई है। साथ ही ECCE हेतु प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता सुनिश्चित करने पर बल दिया गया है।

3. स्कूली शिक्षा में संरचनात्मक सुधार : इसमें 5+3+3+4 की नई पाठ्य संरचना को अपनाती है, जो बच्चों की विकासात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप है। यह पाठ्यक्रम के भार को कम कर 'अवधारणात्मक समझ' को सुदृढ़ करने, 'डिजिटल साक्षरता' और 'व्यावसायिक शिक्षा के प्रारंभिक एकीकरण' को बढ़ावा देती है। शिक्षण पद्धतियों को लचीला और बहु-विकल्पीय बनाने की दिशा में भी यह नीति अग्रसर है।

4. भाषा नीति और बहुभाषावाद : एनईपी 2020 मातृभाषा/ गृह भाषा/स्थानीय भाषा में प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने पर बल देती है ताकि बालक सहजता से ज्ञान अर्जित कर सके। त्रिभाषा सूत्र के तहत यह नीति बहुभाषिकता को बढ़ावा देती है, जिससे विद्यार्थियों की भाषिक समझ और सांस्कृतिक चेतना का विस्तार होता है।

5. उच्च शिक्षा में नवाचार और लचीलापन : NEP 2020 के अंतर्गत राष्ट्रीय अनुसंधान प्रतिष्ठान (National Research Foundation - NRF) की स्थापना का प्रस्ताव है, जिससे उच्च शिक्षा में अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलेगा। लचीली क्रेडिट प्रणाली, बहु-प्रवेश और बहु-निकास विकल्प, और विश्वविद्यालयों का अंतर्राष्ट्रीयकरण इसकी विशेषताएं हैं। यह नीति उच्च शिक्षण संस्थानों की स्वायत्तता, गुणवत्ता, और नवाचार क्षमता को सशक्त करने की दिशा में कार्य करती है।

6. शिक्षक, शिक्षा और व्यावसायिक विकास : NEP 2020 शिक्षकों की शिक्षा-व्यवस्था का मूल आधार मानती है। यह शिक्षक, शिक्षा कार्यक्रमों को पुनर्गठित कर चार वर्षीय एकीकृत बी.एड. कार्यक्रम को अनिवार्य बनाती है। इसमें सतत व्यावसायिक विकास (Continuous Professional Developement), नवाचार-आधारित शिक्षण और शिक्षकों के कैरियर मार्गदर्शन को विशेष महत्व दिया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भाषा नीति एवं योजनाः एक समन्वित दृष्टिकोण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) और भाषा नीति एवं योजना, ये दोनों परस्पर संबद्ध क्षेत्र हैं, जो किसी राष्ट्र की शैक्षिक दिशा और भाषिक विविधता से जुड़े दीर्घकालिक लक्ष्यों और रणनीतियों का निर्धारण करते हैं। इनका उद्देश्य शिक्षा की गुणवत्ता, समावेशिता और प्रभावशीलता को भाषाई संदर्भ में

सुदृढ़ करना होता है। आइए इन दोनों आवधारणाओं की गहराई से विवेचना करें।

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) : उद्देश्य और दायरा – राष्ट्रीय शिक्षा नीति किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली को संचालित करने वाले दृष्टिकोण, सिद्धांतों और रणनीतियों का एक समग्र दस्तावेज होता है। यह नीति प्रारंभिक बाल्यकाल से लेकर उच्च शिक्षा तक की शैक्षिक गुणवत्ता, सार्वभौमिक पहुंच, समान अवसर और समावेशन को सुनिश्चित करने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करती है। NEP के प्रमुख घटकों में शामिल हैं -- पाठ्यचर्या विकास, शिक्षक प्रशिक्षण, शैक्षिक अवसंरचना, मूल्यांकन और मूल्य निर्धारण प्रणाली, शैक्षिक प्रौद्योगिकी, व्यावसायिक शिक्षा एवं समावेशन और समानता, जिसका उद्देश्य शिक्षा को समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्धिक आवश्यकताओं के अनुरूप सुसंगत बनाना है।

2. भाषा नीति एवं योजना : अवधारणा और उद्देश्य – भाषा नीति वह रणनीतिक रूपरेखा है जिसके माध्यम से सरकार विभिन्न भाषाओं के उपयोग, संरक्षण, शिक्षण और विकास के लिए दिशा-निर्देश तय करती है। इसका मुख्य उद्देश्य भाषाई विविधता को संरक्षित रखते हुए शिक्षा में सभी वर्गों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करना होता है। भाषा नीति के प्रमुख उद्देश्य हैं : भाषाई विविधता का संरक्षण एवं संवर्धन, मातृभाषा और अल्पसंख्यक भाषाओं के अधिकारों की सुरक्षा, द्विभाषी अथवा बहुभाषी शिक्षा मॉडल का समावेश, भाषा दक्षता के माध्यम से आर्थिक और कूटनीतिक अवसरों को विस्तार देना, सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना आदि। इसमें भाषा अधिगम के लिए संसाधनों का विकास, शिक्षण सामग्री की उपलब्धता और प्रशिक्षित भाषा- शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है।

3. शिक्षा नीति और भाषा नीति के बीच अंतर्संबंध : भाषा नीति और योजना, राष्ट्रीय शिक्षा नीति का अभिन्न हिस्सा है। ये नीतियाँ यह तय करती हैं कि किस भाषा में शिक्षा प्रदान की जाएगी, पाठ्यक्रम किस प्रकार से तैयार किया जाएगा और मूल्यांकन प्रक्रिया कैसी होगी। शिक्षण की भाषा का सीधा प्रभाव शैक्षिक निष्पादन, भाषाई पहचान और सामाजिक समरसता पर पड़ता है। विशेष रूप से बहुभाषिक देशों में, प्रभावी भाषा नीति को शैक्षिक, भाषाई, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों को ध्यान में रखकर तैयार किया जाना आवश्यक है। इससे शिक्षा अधिक समावेशी, न्यायसंगत और सुलभ बनती है।

4. भाषा, एक सामाजिक शक्ति : भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक शक्ति का स्रोत भी है। इसके प्रभाव के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं -

- संचार और अभिव्यक्ति : भाषा, व्यक्तित्व विकास, आत्म-विकास, सामाजिक भागीदारी और प्रभावशाली वकालत का माध्यम है।

- ज्ञान और सूचना तक पहुँच : भाषा, ज्ञानार्जन और उसकी व्याख्या की कुंजी है। यह व्यक्ति को शिक्षा, मीडिया और राजनीति में सक्रिय भागीदारी का अवसर देती है।

- सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक अवसर : प्रमुख भाषाओं में दक्षता व्यक्ति को बेहतर रोजगार और वैश्विक अवसर प्रदान करती है।

- सांस्कृति पहचान और संरक्षण : भाषा, किसी समुदाय की सांस्कृतिक विरासत का वाहक होती है और सामूहिक पहचान को बनाए रखने का माध्यम भी।

5. बहुभाषावाद और भाषा शिक्षकों की भूमिका

- NEP 2020 बहुभाषावाद को शिक्षा का केंद्रीय मूल्य मानती है। इसके अंतर्गत उच्च शिक्षा संस्थानों में भाषा विभागों की स्थापना की जाएगी।

- प्रशिक्षित भाषा शिक्षक तैयार किए जाएंगे जो

देशभर के स्कूलों में योगदान देंगे।

- सभी भारतीय भाषाओं के संरक्षण और विकास हेतु योजनाएँ बनाई जाएंगी।

- पाली, प्राकृत और फारसी जैसी भाषाओं के लिए अलग-अलग राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किए जाएंगे।

- भाषा शिक्षकों के लिए सतत व्यावसायिक विकास कार्यक्रम (CPD) की व्यवस्था की जाएगी।

- इससे बच्चों की मौखिक और लेखन क्षमता का विकास होगा, और भारतीय भाषाओं में शिक्षण को नया आयाम प्राप्त होगा।

6. बहुभाषावाद का नीतिगत कार्यान्वयन : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुभाषावाद (Multilingualism) पर विशेष बल दिया गया है। इस नीति के अंतर्गत स्कूली शिक्षा प्रणाली में प्रस्तावित परिवर्तनों का उद्देश्य विद्यार्थियों के बहुआयामी व्यक्तित्व के विकास को प्रोत्साहित करना है। यह दस्तावेज आधुनिक भारत के पुनर्निर्माण एवं भारतीय शिक्षा प्रणाली को 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप उन्नत करने का एक सुव्यवस्थित और व्यावहारिक प्रयास प्रस्तुत करता है।

इस शिक्षा नीति में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (Early Childhood Care and Education ECCE) को शामिल किया गया है, ताकि बच्चों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित किया जा सके। साथ ही, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने की सकारात्मक पहल की गई है।

प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए अंग्रेजी को अनिवार्य माध्यम के रूप में अपनाने की बाध्यता को समाप्त कर दिया गया है। इसके स्थान पर, भारतीय भाषाओं के व्यापक प्रयोग को प्रोत्साहित कर बुनियादी शिक्षा में दीर्घकालिक और सार्थक परिणाम प्राप्त करने की दिशा में कदम उठाए गए हैं। इससे स्थानीय भाषाओं के उन्नयन का मार्ग प्रशस्त होगा, साथ ही भारतीयता की भावना और राष्ट्रीय एकता को भी सुदृढ़ किया जा सकेगा।

निष्कर्ष : भारत की शिक्षा प्रणाली में भाषा शिक्षा को अत्यधिक प्राथमिकता दी गई है, क्योंकि यह न केवल सशक्त सामाजिक ताने-बाने को विकसित करने में सहायक है, बल्कि युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए भी अनिवार्य है। हालांकि, भारत के वर्तमान संघीय ढांचे (Federal Structure) और भाषाई विविधता (Linguistic Diversity) के चलते किसी भी स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक महत्व या श्रेष्ठता नहीं दी गई है। नीति दस्तावेज में उल्लिखित त्रिभाषा सूत्र (Three-language Formula) हमारे शैक्षिक ढांचे को सुदृढ़ करेगा और सामाजिक असमानताओं को दूर करने में सहायक सिद्ध होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) के अधिकांश प्रस्तावों को व्यापक सराहना प्राप्त हुई है। वर्तमान सामाजिक-शैक्षिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, समाज के व्यापक कल्याण के लिए आवश्यक परिवर्तनों की आवश्यकता है।

शिक्षा न केवल मानव अस्तित्व की आधारशिला है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन की भी कुंजी है। NEP 2020 अपनी नवीन दृष्टिकोण के साथ भारतीय शिक्षा प्रणाली में सकारात्मक और दूरगामी परिवर्तन लाने में सक्षम है, क्योंकि शिक्षा में बदलाव समाज के समग्र विकास के लिए अत्यावश्यक है। इस नीति का उद्देश्य भारतीय समाज में समग्र (Holistic) विकास को गति देना है। साथ ही, यह नीति सभी भारतीय भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन को प्रोत्साहित करती है। पहली बार मातृभाषा (Mother Tongue) को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाने का सार्थक प्रयास किया गया है, जिससे व्यापक जनसंख्या की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति और भारतीय भाषाओं को सशक्त करने का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

स्थानीय भाषाओं में शिक्षा न केवल लुप्तप्राय भाषाओं को पुनर्जीवित करने में सहायक होगी, बल्कि यह युवाओं को उनकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। इससे बच्चों की रचनात्मक क्षमताओं में गुणात्मक सुधार होगा। भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक महानता को युवा पीढ़ी के मन-मस्तिष्क में स्थापित करना अत्यंत आवश्यक है, और यह कार्य मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषा के माध्यम से ही संभव है। मातृभाषा के ज्ञान और अध्ययन के बिना कोई भी सामाजिक या शैक्षिक व्यवहार पूर्णतः सार्थक नहीं माना जा सकता। किसी भी राष्ट्र के लिए ऐसी शिक्षा नीति अत्यंत आवश्यक है जो उसके ऐतिहासिक प्ररिप्रेक्ष्य, वर्तमान आवश्यकताओं और भविष्य की संभावनाओं को समाहित कर सके।

यह एक विडंबना रही है कि जब 1968 में पहली और 1986 में दूसरी शिक्षा नीति लागू की गई थी, तब शिक्षा क्षेत्र को अपेक्षित महत्व नहीं दिया गया था। इसके विपरीत, नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं को उचित सम्मान प्रदान किया गया है। यह नीति लोकतांत्रिक मूल्यों और बहुसंख्यक आबादी (Majority) के हितों को ध्यान में रखकर तैयार की गई है।

सहायक स्रोत

1. अग्निहोत्री, आर.के. एंड खन्ना, ए. (संपा.), (2016), भारत में बहुभाषावाद : क्षेत्र में आवाजें, स्प्रिंगर। **2.** बारिक, एय.सी. (2021), भारत में भाषा नीति और योजना : भारत का भाषाई सर्वेक्षण और आगे, स्प्रिंगर। **3.** दूआ, हंस राज (2008), "बहुभाषावाद की पारिस्थितिकी" मैसूर : यशोदा पब्लिकेशन। **4.** गुप्ता, ए.एफ., एंड गुप्ता, एम. (संपा.), (2020), बहुभाषावाद, शिक्षा और परिवर्तन -रूटलेज। **5.** गोविंदराज एथिराज। (5 अगस्त, 2020) "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : शिक्षण खेल के मैदान की भाषा में होना चाहिए।" https:'www.indiaspend.com/inational-education-police-2020। **6.** मोहंती, ए.के., पांडा, एम.स, एंड फिलिपसन, आर. (संपा.), (2018). दक्षिण एशिया में अंग्रेजी : शिक्षाशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। **7.** एमएचआरडी। "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020", मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली। **8.** एनसीईआरटी। (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार। **9.** https://jasbaba.com/2020/08/three-lanuage-formula-history-and-analysis.। **10.** रदरफोर्ड, विलियम ई. (1987), "द्वितीय भाषा व्याकरणः सीखना और शिक्षण" लंदन; न्यूयॉर्क : लॉन्गमैन।

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय कड़गंची
कलबुर्गी, कर्नाटक-585367
मो. 9494250061

दूसरों की मदद करते हुए यदि दिल में खुशी हो, तो वही सेवा है बाकी सब दिखावा है।

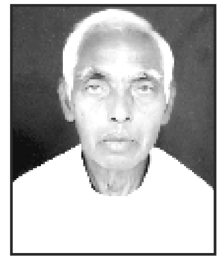

नागार्जुन और उनकी 'राम के प्रति' कविता

डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

प्रसिद्ध अंग्रेजी समीक्षक सर आर्थर क्वीलर काउच का कहना है -- "The work of so and so is good, because it is the perfect expression of his personality." अच्छे लेखक उन्हें ही मानना चाहिये, जिनकी रचनाएँ मानव-मंगल की सृष्टि करती हुई संसार को कल्याण मार्ग पर अग्रसर कर सकें। अतः काव्य-कृति के अध्ययन के पहले हमें उसके जीवन और व्यक्तित्व पर भी विचार कर लेना चाहिये। प्रगतिवादी काव्यधारा के यशस्वी कवि वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' का जन्म ज्येष्ठ मास पूर्णिमा 10 जून, सन् 1911 ई. को बिहार स्थित दरभंगा जिले के ग्राम तैरनी में हुआ था। बाल्यकाल में माता के देहावसान के कारण ननिहाल सतलखा में कुछ समय रहे। कवि नागार्जुन का घरेलू नाम ढक्कन मिसिर, असली नाम वैद्यनाथ मिश्र, हिन्दी लेखक कवि नाम नागार्जुन, मैथिली भाषा के लेखन में 'यात्री' और दूसरों के द्वारा आदरपूर्वक पुकारे जाने वाला, कुछ आदर और कुछ फक्कड़ी स्वभाव को व्यक्त करने वाला नाम 'बाबा', सब एक ही व्यक्ति का परिचय देने वाले नाम हैं। पिता का नाम गोकुल मिश्र, माँ का नाम उमादेवी।

नागार्जुन ठेठ देहाती किस्म के चरित्र और व्यक्तित्व के मालिक रहे। डॉ. नामवर सिंह जैसे विख्यात आलोचक, नागार्जुन के अन्याय के खिलाफ लड़ाई के आह्वान की खूबियों-खासियतों की वजह से उन्हें 'आधुनिक कबीर' के सम्मान से नवाजते दिखाई देते हैं। बाबा अपनी मिसाल आप ही थे, घुमक्कड़ थे ही। आप का जन्म तरौनी के संस्कार शील मैथिल ब्राह्मण परिवार में हुआ। कहा जाता है कि वंश का इतिहास कालान्तर में फलता-फूलता रहता है। यही कारण है कि आपकी शिक्षा विद्या की नगरी काशी संस्कृत विद्यालय में हुई थी। आप वहाँ से व्याकरण मध्यमा उत्तीर्ण हुए। आपकी अध्ययनशीलता, स्मरणशक्ति गजब की थी। कम आयु में पालि भाषा के पंडित बन गए, काम चलाऊ अंग्रेजी सीखी। आप कलकत्ता (अब कोलकाता) के संस्कृत कॉलेज में पढ़ते समय पन्द्रह रुपये छात्रवृत्ति में से पाँच रुपये पिताजी के पास भेजते थे। आप घुमक्कड़ वृत्ति से ही गुजारा करते थे। कई बार जेल यात्रा करनी पड़ी थी। जनता के प्रति समर्पण भाव उनमें इतना था कि उसके कारण उन्होंने मैथिली भाषा में छोटी-छोटी पुस्तकें लोकप्रिय शैली में लिखकर स्वयं उन्हें ट्रेन के यात्रियों के बीच बेचा था। आप बहुभाषा ज्ञाता थे। आपको मैथिली, संस्कृत, पालि, अर्द्ध मागधी, अपभ्रंश, सिंहली, तिब्बती, मराठी, गुजराती, बंगाली, पंजाबी तथा सिंधी भाषाओं का ज्ञान था।

नागार्जुन ने अपनी अमृतमयी लेखनी से सन् 1933 ई. में हिन्दी भाषा में 'राम के प्रति' कविता लिखी थी। यह कविता पंजाब की राजधानी और विद्या की नगरी लाहौर के साप्ताहिक हिन्दी पत्र 'विश्व बंधु' में छपी थी।

महापुरुषों की शृंखला में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक, याचक सम्राट और श्वेतवस्त्रधारी देशभक्त विद्वान महामना पं. मदन मोहन मालवीय (25.12.1861-1946) के सम्पर्क में आकर, अविभाजित पंजाब के जिला झंग के निवासी गोस्वामी गणेशदत्त (2.11.1889--10.6.1959) जीवन धारा ही बदल गई। मालवीय जी के सम्पर्क से आपने लाहौर में 'सनातन धर्म सभा' के गठन के द्वारा पंजाब में नवजागरण का मंत्र फूँका। अपने संस्कृति, शिक्षा और समाज सुधार के कार्यों को गति देने की दृष्टि से आपने सन् 1993 ई. में लाहौर से साप्ताहिक 'विश्व बंधु' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। गणेश दत्त पंजाब के गुजरानवाला जिले के विश्वविख्यात ईश्वरोन्मत्त गणितज्ञ संत संन्यासी और व्यावहारिक वेदान्त के प्रचारक स्वामी रामतीर्थ (22.10.1873--17.10.1906) या रामबादशाह के परम प्रशंसक थे।

'विश्व बंधु' साप्ताहिक जनवरी, 1933 ई. के अंक में हिन्दी और संस्कृत के ज्ञाता- यशस्वी कवि नागार्जुन ने अपनी कल्पनाशक्ति से 'राम के प्रति' कविता में स्वामी रामतीर्थ के उत्कट वैराग्य का सही चित्रण प्रस्तुत किया। कविता 82 पंक्तियों में है। इस कविता के प्रसंग में उल्लेखनीय तथ्य है कि बंगाल से अलग होकर बिहार स्थापना के 100 वर्ष पूरे (1912-2012) होने पर बिहार सरकार के कला संस्कृति एवं युवा विभाग की ओर से प्रकाशित 'बिहार के 100 रत्न' पुस्तक के पृष्ठ 81 पर लिखा है --"उनकी पहली हिन्दी कविता सन् 1933 ई. में लाहौर से प्रकाशित साप्ताहिक 'विश्वबंधु' में छपी थी। कविता का शीर्षक 'राम के प्रति' था। यह कविता संभवतः अनुपलब्ध है।" इन पंक्तियों के लेखक को हाल ही में सन्तमत सत्संग के निष्ठावान विद्वान संन्यासी स्वामी ज्ञानानन्द खगड़िया (बिहार) के सौजन्य से प्राप्त हुआ है, 'विश्व बंधु' का उक्त अंक। जिसमें नागार्जुन की 'राम के प्रति' कविता है।

'राम' यानी स्वामी रामतीर्थ गणित शास्त्र के विलक्षण प्रोफेसर थे। वे 'गुदड़ी के लाल' और 'कुदरती लाल' दोनों थे। उनकी आध्यात्मिक मस्ती गजब की थी। स्वामी जी के पुत्र मदन मोहन गोस्वामी अपने पिता को 'दिव्य जादूगर' कहा करते थे। स्वामी राम त्याग के मूर्ति और प्रेमावतार थे। प्रेम मानव के अन्तर का वह विशिष्ट गुण है जिससे वह देवता की श्रेणी में पहुँच जाता है।

युवा विद्वान संन्यासी स्वामी रामतीर्थ सतत् आत्मचिन्तन और एकान्तवास से अपने पवित्र चरित्र को उस श्रेणी तक पहुँचा चुके थे, जहाँ पहुँच कर मनुष्य समझने लगता है- 'सारा संसार मेरा है और मैं उसका हूँ।' वे अपनी आध्यात्मिक मस्ती में कहा करते थे-- 'मैं नूर हूँ, मैं नूर हूँ, मैं नूरों का नूर हूँ।' स्वामीजी रुपये-पैसे को स्पर्श नहीं करते थे। उनकी आध्यात्मिक स्थिति की झलक निम्नलिखित पद्यावली में इस प्रकार मिलती हैः- मैं वहाँ हूँ जहाँ पहुँच कर भी। कोई मुझे वह पहुँच नहीं पाता।। परन्तु इस स्थिति की अनुभूति, अनुभूति-प्राप्त को ही होती है।

कवि नागार्जुन द्वारा प्रणीत 'राम के प्रति' में राम के उत्कट वैराग्य की कहानी है। स्वामी राम 14 जुलाई 1900 ई. को गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर के गणित शास्त्र के 'रीडर' पद से त्यागपत्र देकर दिनांक 21 जुलाई 1900 ई. को 'राम की खोज में राम हिमालय की की ओर जाकर ऋषिकेश स्थित कैलास आश्रम के प्रथम पीठाचार्य अनन्त विभूषित परम वैरागी सन्त स्वामी धनराज गिरि और पाणिनिकल्प स्वामी प्रकाशनन्द पुरी के पावन चरणों में बैठकर केवल द्वैत की साधना कर रामबदाशाह कहलाये।' स्वामीराम के उत्कट वैराग्य के संबंध में कवि नागार्जुन ने 'राम के प्रति' कविता में मार्मिक एवं सजीव चित्र खींचा है, जो

पठनीय, चिन्तनीय एवं प्रेरणादायक है--

राम के प्रति

राम तीरथ छोड़कर घर-बार जब जाने लगे।
स्त्री के नयन छम-छम नीर बरसाने लगे।।
बस पतिवरता ने स्वामी राम के पावों गहे।
पकड़कर दामन पति से शब्द उसने ये कहे।।
नाथ अपनी दीन दासी पर यह कृपा कीजिए।
साथ रखकर मुझको भी सेवा का मौका दीजिए।।
तब स्वामी राम तीरथ ने कहा कुछ बात है।
साथ ले चलना नहीं तुझको कि औरत जात है।।
सुन के पति के बैन पत्नी और तब कही।
मिसाल हैं अनेकों यहाँ दाम्पत्य की।।
राम जब वन को गये संग थी उनकी सिया।
आप मेरे राम हैं फिर क्यों मुझे पीछे किया।।
तुझ को घर से पीहर से जर से प्यार है।
बस इसी कारण मेरी प्यारी मेरा इनकार है।।
तब कहा देवी ने जो कुछ है गंवा देती हूँ मैं।
आप के सदके में धन से मन हटा लेती हूँ मैं।।
संपती को ऐ पति आतिश लगा देती हूँ मैं।
आज्ञा दें तो यह सारा धन लुटा देती हूँ मैं।।
तब स्वामी राम तीरथ ने कहा इनकार है।
सहज है कहना मगर करना बहुत दुश्वार है।।
यह सुना तो खोल अपने घर के सारे धर दिये।
बर्तन और बिस्तर और जर सब धर दिये।।
अपने जेवर भी उतारे ढेर सारे कर दिये।
माँगने वालों के वैराग में पल्ले भर दिये।।
उस पर भी स्वामी रामतीरथ मुस्कुरा पड़े।
कहते हैं प्यारी है अभी झंझट तुझे बड़े।।
बच्चों की माँ हो ममता तोड़ोगे किस तरह।
बतलाओ अपने लाड़ले को छोड़ोगे किस तरह।।
बोली औरत नाथ उसकी न है कुछ फिकर।
गर यह नहीं है उसका तो एक और भी है घर।।
नल राजा ने जब जंगल का राह लिया था।
दमयंती ने दामन पकड़ा पिया का था।।
बच्चों का यही झगड़ा राजा ने किया था।
दमयंती ने ननिहाल उन्हें भेज दिया था।।
अब मैं भी नाथ साथ आपका निभाऊँगी।
बच्चों को अपने मैके में मैं भेज आऊँगी।।
प्यारी तू अपने प्यार का नाता ही तोड़ दे।
जो सबकी माँ है उस तरफ उसका मुँह मोड़ दे।।
सुनते ही दिल धड़क गया खामोश रह गये।
ममता के मारे माँ की आँखों से नीर बह गये।।
खामोश हो गयी थी या बेहोश सी थी हुई।
कुछ सोचकर वह अकवका उठकर खड़ी हुई।।
लख़्ते जिगर उठाये तो ख़ूने जिगर का पिया।
लेकर चली ओ माँ का धड़कने लगा जिया।।
अंगुली लगायी दूसरी गोदी उठा लिया।
विपदा के मारे माँ ने रुख बाजार का किया।।
बच्चों से आकर भीड़ में दामन छुड़ा लिया।
और लाल दूसरा भी एक जानिब बिठा दिया।।
हसरत से देखा और मुख से अलविदा कही।
आँखों से आँसुओं की नदी एक बह चली।।
कुछ न रहा सब कुछ गँवा कंगाल हो गई।
सब आफरी के मुँह सी तक नहीं गई।।
दिल में विचारी कि बस आरजू यही।
रखी थी लाज जानकी ने राम नाम की।।
हिरनी का बच्चा जैसे शिकारी ले गया।
देखी स्वामी राम ने पत्नी की वह दशा।।
बच्चों को छोड़ आयी है देखा तो रो दिये।
त्यागी ने वैरागी के कपड़े भिंगो दिये।।
लेने लगे वह इम्तहाँ मगर रहा सही।
कहते हैं प्यारी एक और एक मान लो कही।।
मुझसे कहो कि स्वामी रामतीरथ मर गया।
जीते जी मेरे नाथ मुझको विधवा कर गया।।
सुनते ही चीख मार चौराहे पर गिर गई।
कोई कटार थी जो कलेजे में फिर गई।।
बोले स्वामी रामतीरथ फिर इनकार है मेरा।
क्यों कर अभी पति से प्यार है तेरा।।
देवी के दोनों नैन आँसुओं से भर गये।
खुलने लगे जो लौ तो गाल पीले पड़ गये।
रुकते हुए कहा कि तीरथ राम मर गये।
मेरे पति वह मुझ को विधवा कर गये।।
ऐसा सुना तो राम तीरथ झट उबल पड़े।
कुछ रहता था जिसका औ उसकी तरफ बढ़े।।

कहते हैं कि छोड़ दो दुनिया के भोग को।
तूने सहा है पति पुत्र के वियोग को।।
मेरी तरह लुटा चुकी पूँजी रही-सही।
तेरा पति गया मेरी पत्नी खो गयी।।
गंगा उधर से चल पड़ी यमुना इधर बही।
बस आज से तू देवी मेरी माता हो गई।।
झट राम तीरथ पकड़ कर औरत के हाथ को।
बोले अब आओ माँ मेरी हमराह तुम चलो।।
हाय वह स्वामी रामतीरथ कहाँ गये।
रहमत के लाल चंद फरिश्ते कहाँ गये?

किसी भी कवि का व्यक्तित्व उसकी सम्पूर्ण जीवन साधना का सार होता है। व्यक्तित्व कोई वाह्य वस्तु नहीं। वह तो आन्तरिक वस्तु है। व्यक्तित्व हमारे अन्तर का ज्योतिर्मय निर्झर है। व्यक्तित्व हमारे अन्तर का गौरव-गान है। व्यक्तित्व हमारे अन्तर की गुरुता है- महत्ता है। व्यक्तित्व के दो पहलू हैं - अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। काव्य में कवि के बहिर्मुखी व्यक्तित्व का उतना महत्व नहीं जितना अन्तर्मुखी व्यक्तित्व का होता है। यही काव्य कृति को सरसता, मौलिकता और महत्ता प्रदान करता है। नागार्जुन हिन्दी वाङ्मय के एक निराले कवि हैं। जीवन के यथार्थ से तादात्म्य स्थापित करके मानवीय दुखों की इन्होंने सच्ची अनुभूति की वे सामाजिक यथार्थ से सदा जुड़े रहे। इनकी रचनाओं में ग्राम सौंदर्य और प्रकृति का मनोरम चित्रण मनोहारी है। नागार्जुन का व्यक्तित्व बहुआयामी है। उन्होंने कई भाषाओं में रचना की और अनुवाद भी किए हैं। बाल साहित्य की रचना भी की है। 'पत्रहीन नग्न गाछ' पर 1969 ई. में 'साहित्य अकादमी' की ओर से पुरस्कार मिल चुका है। उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान द्वारा उन्हें 1983 में विशिष्ट साहित्यकार के रूप में सम्मानित तथा पुरस्कृत किया गया। मैथिली साहित्यकार के रूप में 1971 में उन्होंने रूस यात्रा भी की।

नागार्जुन की कृतियाँ : **काव्य (हिन्दी)** 1. युग धारा, 2. शपथ, 3. प्रेत का बयान, 4. खून और शोले, 5. चना जोर गरम, 6. सतरंगे पंखों वाली, 7. प्यासी पथराई आँखें, 8. तालाब की मछलियां, 9. पुरानी जूतियों का कोरस, 10. तुमने कहा था, 11. हजार-हजार बाहों बाली, 12. खिचड़ी विपल्व देखा हमने, 13. भस्मासुर-खण्ड काव्य- चित्रा, पत्रहीन नग्न गाछ (मैथिली काव्य संकलन), धर्मालोक शतकम् (सिंहली लिपि में प्रकाशित संस्कृत लघु काव्य), देश दशकम्, कृषक दशकम्, श्रमिक दशकम् (संस्कृत कविताएं)। **अनुवाद :** मेघदूत, गतिगोविन्द, विद्यापति के गति तथा बंगला, गुजराती, संस्कृत की दर्जनों गीत/पुस्तकों का हिन्दी रूपान्तर। **उपन्यास :** पारो, बलचलमा, नवतुरिया (मैथिली), इमरतिया, उग्रतारा, कुंभीपाक, जमनिया का बाबा, दुःखमोचन, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, रतिनाथ की चाची, वरूण के बेटे, हीरक-जयंती (अन्यनाम अभिनन्दन)। **लघु प्रबन्ध :** एक व्यक्ति : एक युग (निराला के विषय में)। **गद्य संग्रह :** अन्नहीनं क्रियाहीनम्। कहानी-संग्रह : आसमान में चंदा तैरे। कवि की अनेक स्फुट रचनाएँ जो समय-समय पर हिन्दी की भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। हिन्दी व मैथिली में लिखे नागार्जुन के सम्पूर्ण साहित्य में अन्याय के खिलाफ लड़ाई का आह्वान है।

इनके पंच भौतिक शरीर का अवसान 5 नवम्बर, 1998 ई. को सतासी वर्ष की आयु में हुआ। सच तो यह है कि दुःख के प्रति आत्मीयता, फक्कड़पन, अक्खड़पन और फटकार का मिश्रित रूप नागार्जुन के व्यक्तित्व के आयाम हैं। सच्चे व्यक्तित्व में जादू होता है- मन्त्र मुग्ध करने की शक्ति होती है। सच्चे व्यक्तित्व वाले की वाणी तपःपूत एवं मंगलमयी होती है- उसमें मधु का माधुर्य होता है- नवनीत की कोमलता होती है- चाँदनी की शीतलता होती है। स्वामी रामतीर्थ के दिव्य व्यक्तित्व से प्रभावित दिवंगत हिन्दी सेवी नागार्जुन के चरणों में शत्-शत् नमन् है।

रामतीर्थ कुंज
ग्राम + पो.- राँकोडीह (Rankodih)
वाया-क्रोशी कॉलेज
जिला-खगड़िया - 851205 (बिहार)
मो. - 9102604042

आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

राजेन्द्र परदेसी

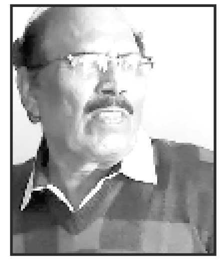

हिन्दी साहित्य में छायावाद अपने रचना वैशिष्ट्य एवं युग वैशिष्ट्य की दृष्टि से काफी चर्चित एवं चौंकाने वाला काल रहा है, जिसमें प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवी आद्यन्त एक ही काव्यधुरी पर प्रायः छायावाद के चक्र को निरन्तर गतिशील बनाए रखे। पूर्व छायावाद, रचनात्मक स्तर पर उत्तर छायावाद से थोड़ा अन्तर अवश्य रखता है, किन्तु विकास की दृष्टि से देखा जाय तो उत्तर छायावाद का इतिहास मूलतः पंत और निराला के काव्य-विकास का ही इतिहास है। महादेवी वर्मा ने अपने काव्य-गीतों की पूर्व परम्परा को ही विकसित की है या अगली कड़ी के रूप में अपनी काव्य-परम्परा की निरंतरता को बनाए रखीं। उत्तर छायावाद में निराला तथा पंत के काव्य में कुछ वैचारिक बदलाव अवश्य दिखाई देते हैं। निराला ने जहाँ काव्य में अधिक लोकोन्मुख होकर मानवीय संवेदना से सरोकार कायम किये वहीं पंत ने चिन्तन-शक्ति को थोड़ा विस्तार देते हुए यथार्थ छवियों को काव्य में उतारा। वस्तुतः उत्तर छायावाद इन्हीं दोनों कवियों के सृजन से अधिक फूलता-फलता रहा, फिर छायावाद की व्याप्ति में प्रगतिवाद तक पहुँचते-पहुँचते अन्य हिन्दी कवियों की भी मौजूदगी दिखायी देती है, किन्तु वे सभी हाशिये पर ही बने रहे, किसी ने केन्द्रीय भूमिका प्रस्तुत नहीं की। पंत निराला एवं महादेवी के बाद उत्तर छायावाद के कवियों में केवल एक कवि-व्यक्तित्व उभरकर छायावाद को दीर्घजीवी बनाने में अपनी केन्द्रीय भूमिका प्रस्तुत की, आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री हैं, जिनके आविर्भाव से न केवल छायावादी काव्य-जगत को समृद्धि मिली, अपितु काव्येतर विधाओं का भी विकास हुआ। वैसे तो उत्तर छायावाद में शास्त्री जी के समकालीन रामकुमार वर्मा, समित्राकुमारी सिन्हा और विद्यावती कोकिल जैसे उल्लेखनीय कवि हुए किन्तु शास्त्रीजी के समानान्तर कोई स्थापित नहीं हो सका।

18 जनवरी 1916 (माघ शुक्ल 1972 वि.) को गया जिले के मैगरा गांव में जन्मे आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री के पिता का नाम पंडित रामानुग्रह शर्मा और माता का नाम श्रीमती अनुपमा देवी था। बाल्यकाल में ही शास्त्रीजी के सिर से मां के आंचल की छांव छिन गई, फलतः इनके पालन-पोषण का पूरा दायित्व पिता ने ही निबाहा। इनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा मैगरा के अपर प्राइमरी स्कूल और शारदा संस्कृत विद्यालय में सम्पन्न हुई, तदुपरांत मध्यमा, परीक्षा दधपा (गया) से उत्तीर्ण की, फिर बिहार-उड़ीसा संस्कृत एसोसियेशन द्वारा संचालित

शास्त्री और साहित्याचार्य की परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त कर स्वर्णपदक प्राप्त किया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुए उन्होंने पुनः शास्त्री और शास्त्राचार्य की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। इनमें उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। शिक्षा पूरी होने पर सर्वप्रथम ये लाहौर के ओरियंटल संस्कृत कालेज में अस्थायी तौर पर प्राध्यापक हुए। रायगढ़ (मध्यप्रदेश) के तत्कालीन राजा ने इन्हें राजकवि के रूप में सम्मानित किया। आगे चलकर मुजफ्फरपुर के धर्म समाज संस्कृत कालेज में प्राध्यापक हुए। फिर रामदयालु सिंह महाविद्यालय में संस्कृत विभाग के विभागाध्यक्ष पद पर वर्षों कार्यरत रहे। उस महाविद्यालय से अवकाश प्राप्ति के पश्चात् बिहार सरकार ने इन्हें विश्वविद्यालय का विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्त किया।

जानकी बल्लभ शास्त्री का साहित्य में आगमन छायावाद और प्रगतिवाद के मिलन बिन्दु पर हुआ। साहित्य के इस संधिकाल में आविर्भूत शास्त्री की काव्ययात्रा की शुरुआत संस्कृत भाषा से हुई जो 19 वर्ष की अवस्था में जो कोमल भावाभिव्यक्ति, पदलालित्य, बिम्बविधान, चित्रात्मकता एवं आलंकारिक वैशिष्ट्य के कारण काफी चर्चित एवं समादृत हुई। विषयवस्तु, भावाभिव्यंजना, शिल्पविधान एवं छंद योजना की दृष्टि से शास्त्री ने 'काकली' में अभिनव प्रयोग करके अपनी प्रखर काव्य प्रतिभा का परिचय दिया। 'काकली' के मधुर गीतों की सृष्टि से 'अभिनव जयदेव' के नाम से जाने गए जानकी वल्लभ शास्त्री ने संस्कृत के कालिदास कृत मेघदूत के समान एक प्रबंधात्मक खण्डकाव्य 'वाणीमंदिरम्' भी लिखा।

उर्दू ग़ज़ल की नजाकत को संस्कृत में ढालने का अभिनव प्रयोग भी शास्त्री ने किया। उनमें संस्कृत में अनुवाद कला भी बेजोड़ थी, जो किसी को भी सहज ही आकृष्ट कर लेती थी। निराला की 'जूही की कली' का भावानुवाद करके शास्त्री ने अपनी इस कला का चमत्कार दिखाया। इससे प्रभावित होकर छायावाद के उत्कृष्ट कवि निराला ने उनकी अनन्यतम रचना 'काकली' के लिए उन्हें 'बालपिक' कहकर सम्बोधित किया। इस सम्बोधन के साथ निराला ने उन्हें हिंदी काव्य में प्रवृत्त होने की प्रेरणा भी दी। परिणाम स्वरूप शास्त्री ने हिन्दी काव्य-जगत को अनेक काव्य-संग्रहों से समृद्ध किया। उनकी हिन्दी काव्य-कृतियों में रूप-अरूप, लीला पद्म (हिन्दी गीत); गाथा (व्यंग्य कथा-काव्य) तीरतरंग, शिप्रा, मेघगीत (गीतिकाव्य), धूपतरी, संगम, श्याम संगीत इत्यादि।

जानकी वल्लभ शास्त्री मूलतः गीतकार थे। उनके गीतों में छायावादी संस्कारों की ही अनुगूंज मिलती है। इनके गीत छायावादी काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। शास्त्री ने 'राधा' महाकाव्य की रचना कर अपनी प्रबंध पटुता से साहित्य जगत को परिचित कराया। इसमें शास्त्री ने 'राधा-कृष्ण' के पारम्परिक कथानक को एक नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके प्रणय की पारदर्शिता को दर्शाया है। राधा एक साधारण नारी के रूप में नहीं अपितु एक निश्च्छल स्नेह की मूर्तमान देवी है, जो कृष्ण को प्रेरणा प्रदान करती है-

राधिका कोई न नारी एक
भावना वह हृदय हारी एक।
रक्तमज्जा की नहीं वह देह
राधिका का अर्थ निश्चल नेह।

निराला के काव्य की तर्ज पर शास्त्री ने भी दीन-दुखियों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए अपनी काव्य-कृति 'गाथा' में जो एक कथा-काव्य है, व्यंग्य की धार को तेज किया -

बेचा जाता धर्म यहाँ तांबे के टुकड़ों पर
ईश्वर फुसलाए जाते दोने भर दही बड़ों पर।
पर मंदिर के फाटक पर भूखे मर जाए आह
उन पर दृष्टि न पड़े धर्म और ईश्वर की यह चाह।

काव्य-गीतियों के साथ शास्त्री ने गीति-नाट्यों की रचना करके अपनी कारयित्री प्रतिभा को प्रखर

बनाया। गीति नाट्यों में पाषाणी, तमसा, इरावती प्रमुख हैं जिनमें अतीत को नए संदर्भ प्रदान किये गये हैं।

कवि के अतिरिक्त एक गद्यकार की भूमिका में भी शास्त्री का व्यक्तित्व साहित्य-जगत में उभरकर सामने आया। उनका कवि कर्म जितना उज्ज्वल और उत्कृष्ट है, लेखकीय व्यक्तित्व भी उतना ही विराट और व्यापक उनका उपन्यास 'एक किरण सौ झांइया' तथा 'कालिदास' हिन्दी उपन्यास जगत के लिए अप्रतिम धरोहर हैं। इन उपन्यासों में शास्त्री ने आधुनिकता एवं प्राचीनता का रूपांकन करके एक ओर नये युग की युवा पीढ़ी के, अपने बेवाक कथन से उनके दिल-दिमाग को झकझोरने का प्रयास किया, तो दूसरी ओर भारत की पुरातन संस्कृति की महत्ता को उजागर किया है। जीवन की द्वन्द्वात्मकता के बीच सामाजिक विद्रूपताओं, विडम्बनाओं और विसंगतियों का सवाल भी उनकी कहानियों में उठाया गया है। कानन, अपर्णा इत्यादि कहानियाँ इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं। उपन्यास और कहानियों के अतिरिक्त शास्त्री नाट्य-रचनाओं में भी प्रवृत्त हुए। उन्होंने आठ नाटकों की रचना की है- प्रतिध्वनि, कालीदास जयंती, यात्री, अशोक वन, कालचक्र, देवी, शकुन्तला और ऋतुराज। इन नाटकों में समाज, संस्कृति, इतिहास, कल्पना का अपूर्व संयोग है। निबंधकार की भूमिका में उनकी आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय मिलता है। 'साहित्य-दर्शन' उनका आलोचनात्मक निबंध संग्रह है जिसमें उनकी कोमल कल्पनाओं के अनेकानेक रंग भी उभर कर प्रस्तुत हुए हैं। इन विधाओं के अतिरिक्त शास्त्री के रचना-संसार में संस्मरण से लेकर सम्पादन तक उनकी कारयित्री प्रतिभा की झलक मिलती है। संस्कृति के वातायन, निराला के पत्र, महाकवि निराला, मानस-चिन्तन इत्यादि में उनकी बहुआयामी छवि के दर्शन होते हैं। इनके सम्पादन में 'राका' और 'बेला' दो पत्रिकाओं का भी प्रकाशन हुआ, जो साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- श्री जानकी वल्लभ शास्त्री के समान सुदृढ़ साहित्यिक आधार और विशाल साहित्यिक परम्परा बिरले को प्राप्त होगी। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने इन्हें आधुनिक काल का सबसे विद्वान कवि कहा है। विद्वत्ता का संबंध संभवतः इनके आचार्यत्व से है। ये एक साथ ही कालिदास और दंडी दोनों को अपने में समेटे हुए हैं। फलतः इनका काव्य-रस कुछ ज्यादा ही गूढ़ और गंभीर होता है, जिसका संपूर्ण रसास्वादन संस्कारशील पाठक ही कर पाता है। यह सच है कि इनका काव्य उतना लोकप्रिय नहीं हुआ, पर लोकप्रियता, काव्यगत गरिमा की ऊँचाई का मापदंड नहीं है।

साहित्य जगत में निरंतर साहित्य साधना में लगे और सम्मान के साथ जीने वाले आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री द्वारा सन् 1995 में पद्मश्री अवार्ड को अस्वीकार करने के बाद पुनः वर्ष 2010 में फिर पद्मश्री अवार्ड देने की पेशकश हुई तो उन्होंने उसे भी अस्वीकार कर दिया था। वे शासकीय व्यवस्था से पूरी तरह असंतुष्ट थे। किन्तु इससे उनकी रचनात्मकता पर कोई विपरीत असर नहीं दिखायी देता। वे सृजन में ही अपनी जिन्दगी की सफलता के आनंद की अनुभूति करते थे। सृजन उनकी जिन्दगी का एक अनिवार्य हिस्सा बन चुका था जिससे वे आखिरी पड़ाव तक जुड़े रहे। ऐसा लगता है कि सृजन में ही उनकी जिजीविषा संनिहित थी। उनकी जिन्दगी का एक छोर सर्जना से सम्बद्ध था तो दूसरा छोर मूक प्राणियों के प्रेम से। सृजन ही उनका शृंगार था। हिन्दी के इस कालजयी पुरोधा साहित्यकार ने 7 अप्रैल 2011 को अंतिम सांस ली। यद्यपि शास्त्री जी हमारे बीच नहीं हैं परन्तु उनकी धारणा के अनुसार उन्हें साहित्य जगत् भूल नहीं सकेगा। उन्हीं के शब्दों में -

जिंदगी का हर रंग पैमाना गढ़ेगा
एक दिन मुझको तो ये जमाना ढूंढेगा।।

44, शिव विहार, फरीद नगर
लखनऊ - 226015
मो. - 9415045584

अल्पचर्चित तेलुगु कृष्ण भक्त कवि क्षेत्रय्या

डॉ. रंजना राज़दान

हवा का रुख/समन्दर में उठती तरंगों की उथल-पुथल/पहाड़ों का मौसम समझ पाना मुश्किल बात है। क्षेत्रय्या पर कुछ कहना मेरे लिए अंधेरे में रास्ता टटोलने जैसा है। संत महात्मा तथा अनेक भाषाओं के अनेक विद्वान/मनीषी कहते आए हैं -- 'बेसी मत पढ़ो'-बेसी = ज्यादह न पढ़ूँ तो क्षेत्रय्या को कैसे समझूँ? आचार्य रजनीश का मानना है -- जो व्यक्ति विश्वास कर लेता है, वह कभी खोजता नहीं। खोज तो संदेह से होती है। मुझे संदेह है इसी वजह से तो 'क्षेत्रय्या' खोज रही हूँ। कहा जाता है -"ज्ञानं भारः क्रियां विना" निष्क्रिय ज्ञान बोझ ढोने के समान होता है।

वैष्णव दर्शन में भगवान के दो रूपों की चर्चा की गई है और भक्ति के भी दो रूप बताए गए हैं।[1] 'नारदपाञ्चरात्र' में इसी उत्तमा भक्ति का वर्णन मिलता है[2] -- जो भक्ति "परमप्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा" कही गई है। और जिसे -- "सा परानुक्तिः ईश्वरेः" बताया गया है।[3] लौकिक हो या अलौकिक आनन्द राग-समन्वित होता है और बंधन का कारण भी। इसीलिए मोक्ष को महत्त्व दिया गया है; कहा गया है--"प्रपञ्चसम्बन्धविलयो मोक्षः।" जीव स्वभावतः मोक्षाभिलाषी है, जो ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करके आनंदित होने की कामना करता है। क्योंकि जीव संसारी है और ईश्वर असंसारी। अतः दोनों के संबंध को 'छायातपौ' छाया और धूप की तरह विलक्षण बताया गया है। दोनों तादात्म्यभाव को प्राप्त करके आनंदित होते हैं। यही आनन्द तेलुगु कवि क्षेत्रय्या के काव्य वर्णित है। "कृष्ण भक्ति का आधार रतिभाव है।"[4] रति का व्यापक अर्थ है - अनुराग या प्रेम।

इसी प्रकार 'कामसूत्र' की 'जयमंगला' टीका में रस शब्द का प्रयोग रति/काम शक्ति/आदि के अर्थ में हुआ है। "रसो रतिः रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायः।"[5] 'कामसूत्र' के सात अधिकरणों में पाँचवें अधिकरण में "पारदारिकों" अर्थात् परस्त्रीरत विषय और छठे अधिकरण में वेश्याओं का विचार किया गया है।[6] देवदासी शब्द का अर्थ मंदिर या देवों की सेविका और वेश्या (जिसे मंदिर में नाचने के लिये लगाया गया हो)[7] किया गया है। इसके साथ ही 'वात्स्यायन' ने कवियों के लिए वारांगनाओं का संसर्ग आवश्यक बताया है। क्योंकि वे गुण-संपन्न हैं।[8] संस्कृत विद्वानों के अतिरिक्त 'विद्यापति' ने भी 'वेश्या हाट' में विशद वेश्या वर्णन किया है।[9] इसके साथ ही वेश्याओं के शृंगार-प्रसाधन का वर्णन किया

गया है।[10] इसी प्रकार कीर्तिलता की स्तंभतीर्थ वाली प्रति और संस्कृत टीका में भी वेश्या-वर्णन विस्तृत रूप में मिलता है।[11] इसके आगे भी स्तंभतीर्थ वाली प्रति और संस्कृत टीका में लिखा मिलता है- देखिए[12] इतना अध्ययन आलोच्य कवि क्षेत्रय्या को समझने के लिए मेरी दृष्टि में अनिवार्य है। यह बताना आवश्यक है कि क्षेत्रय्या का मन जिस युवती पर क्षुब्ध हो उठा था, वह एक 'देवदासी' थी। यद्यपि देवदासियाँ गायन, नृत्य आदि कलाओं में पारंगत हुआ करती थीं, फिर भी उन्हें समाज में प्रायः हेय दृष्टि से ही देखा जाता था। इस प्रथा को बंद करने का प्रयास चलता रहा है।

तेलुगु साहित्य का आदिकाल ग्यारहवीं सदी के आरंभ से डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने माना है।[13] डॉ. बी. राजनीकांत राव क्षेत्रय्या का जन्म (लगभग 1695) सोलहवीं सदी के आखिरी दशक में मोव्वा में होना मानते हैं।[14] नारायण तीर्थ और सिद्धेन्द्र की तरह क्षेत्रय्या संन्यासी नहीं थे। "वह प्रकृति और जीवन में विद्यमान सौन्दर्य के प्रबल प्रशंसक थे। परमात्मा के अत्यंत निष्ठावान् भक्त थे जैसा कि 'बजती किंकिणी वाले गोपाल' में दिखता है। इसके साथ ही क्षेत्रय्या मानव-व्यवहार के सूक्ष्म द्रष्टा और प्रेमजीवन को संपूर्णता में चित्रित करने वाले पदों के महान शिल्पी थे।"[15]क्षेत्रय्या सत्रहवीं शताब्दी में रहे -- He lived in the 17th century." जैसे कि "Abburi Ramakrishana Rao" ने एक बार कहा था क्षेत्रय्या के पद असाधारण/अतुलनीय हैं इस अर्थ में कि संगीतज्ञ उनमें संगीत सुन लेते हैं, नर्तक उनमें नृत्यकला के दर्शन करते हैं और कविगण उनमें काव्य देखते हैं। जैसे मधुरा भक्ति के भाव/शब्द-योजना नायिका-नायक भाव पर केंद्रित हैं। इन लालसापूर्ण/कामुकतापूर्ण अस्पष्ट गीतों की शैली श्रृंगारिक है, लेकिन "Not in spirit"। वे पद कोणार्क और खजुराहो की मूर्तिकला की तरह उत्तेजक नहीं-- "They are, on the contrary, sparklers like the Kangra and Basohli miniatures."[16] डॉ. नवीन के विचार से - He (क्षेत्रय्या) had written about 4000 devotional songs in praise of lord Krishna. XXX His songs became very popular only when they were to Karnataka music."[17] भगवान के विरह में विलाप करती नायिकाओं के रूप में क्षेत्रय्या ऐसी आत्मा का प्रतीक बनकर प्रस्तुत होते हैं जो परमात्मा से मिलने के लिए विकल है। उनके पदों में प्रेम-निमग्न स्वगत-चिंतन, अकेलापन, विरह-व्यथा, संदेशवाहक दूतियों के साथ वार्तालाप आदि में मानव-स्वभाव की हर भावना को उकेरा गया है। उपलब्ध "चार हजार के लगभग पदों में शायद ही कोई पद ऐसा हो, जो वास्तव में किसी राजा को नायक मानकर लिखा गया हो।"[18]

विद्यापति ने अपने पदों में अपना स्वयं का और आश्रयदाता राजा के नाम का उल्लेख किया है। क्षेत्रय्या ने कहीं भी अपने नाम का उल्लेख नहीं किया। विद्यापति के नायक कृष्ण और नायिका राधा हैं; लेकिन क्षेत्रय्या के पदों में राधा का कहीं नाम नहीं है। हाँ, कृष्ण तो हैं लेकिन वह मुव्वगोपाल हैं।[19] भानुदत्त की 'रसमंजरी' का तेलुगु में किसी अज्ञात लेखक ने 'श्रृंगार रस मंजरी' नाम से अनुवाद किया है और उसमें क्षेत्रय्या के लगभग दो सौ पदों को यथास्थान सम्मिलित किया है। इस संदर्भ में नायिका-भेद प्रसंग द्रष्टव्य है।[20] भारतीय साहित्य के निर्माताओं में क्षेत्रय्या को आदरपूर्वक प्रतिष्ठित किया गया है। पी. साम्ब मूर्ति ने क्षेत्रय्या को "तेलुगु पदम के महान रयचिता" और "संगीत रूप 'पदम' के जनक" कहा है। त्यागराज, श्याम शास्त्री और अन्य बड़े संगीतकार उनके प्रशंसक रहे हैं।[21] इसी तरह सुब्बाराम दीक्षितार लिखते हैं-- "क्षेत्रय्या रसशास्त्र और अलंकार शास्त्र में बताई नायक-नायिकाओं की विशेषताएं अत्यंत विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करते थे। उनके शब्द उदात्त विचारों से भरे हैं और अत्यन्त अर्थगर्भित हैं।"[22] तेलुगु के कवि

क्षेत्रय्या भक्त तो थे ही किन्तु ईश्वर-भक्ति को भी पति-पत्नी अथवा प्रेमियों के स्तर से ही अधिक समझा जा सकता है।[23] नदी एक ही होती है लेकिन यायावर के लिए सुखद, डूबने वालों के लिए दुःखद और नदी जिनका निवास स्थान है, वे जीवन उदासीनता का भाव लिए रहते हैं। ऐसे ही कृष्ण भक्त हैं जो भक्ति में सुख की अनुभूति करते हैं। आलोचक क्षेत्रय्या के भक्त या शृंगारी कवि की पड़ताल करते हुए दुखी होते हैं कि स्पष्ट नहीं होता उन्हें भक्तों में शुमार किया जाए या श्रृंगारी कवियों में। अध्येता तटस्थ/उदासीन भाव अपनाए रचना को पढ़ जाया करते हैं। रामानुजाचार्य लिखते हैं - ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ आसक्ति के कारण अन्य पदार्थों के प्रति उदासीनता आ जाती है- 'अनुरागाद्विरागः' जीवात्मा ब्रह्म का ही एक रूप है-- जैसे-"नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा" अर्थात् नीले बादलों में बिजली की तरह प्रकाश का स्फुरण ऐसा कहा गया है। मुव्वा के गोपाल सर्वोच्च ईश्वर से अपने रहस्यवादी अत्युत्तम विचारों के आदान-प्रदान के लिए क्षेत्रय्या ने श्रृंगार को माध्यम की तरह प्रयोग किया है। "XXX But the overall impact of each padam is spiritually uplifting, because while technically it is a lyric in form, basically it is a hymn in spirit."[24] समकालीन होते हुए भी त्यागराज और क्षेत्रय्या के आराध्य क्रमशः 'राम' एवं 'कृष्ण' रहे। मुव्वगोपाला पदावली में देखिए-- "While tyagaraja was a devotee of Rama, Kshetrayya is more of masses depicting different movements in "sringara" XXX Krishna is the central figure in his compositions. XXX Kshetrayya is an artiste of great sublimity."[25] क्षेत्रय्या के समय से श्रृंगारिक गीतों के लिए 'पदम' और भक्तिपरक गीतों के लिए संकीर्तन शब्दों का प्रयोग होता है।[26]

'क्षेत्रय्या' और 'क्षेत्रज्ञ' पर चर्चा की गई है। 'सांख्यदर्शन' में - "अकल्पो निर्गुणः क्षेत्रज्ञः पुरुषः" कहा गया है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में लिखा है-- 'यह शरीर क्षेत्र है और जो इसको जानता है उसे क्षेत्रर् कहते हैं।"[27] क्षेत्रय्या से संबंधित अपने शोध-प्रबंध में गंगप्पा ने लिखा है -- "जो अपने शरीर को आनंद प्राप्त करने का साधन मानता है, वह 'क्षेत्रज्ञ' माना जाता है।" इसके साथ ही गंगप्पा ने अन्य अर्थ में भी क्षेत्रय्या या 'क्षेत्रज्ञ' कहा है; उनके अनुसार-तीर्थस्थानों/प्रसिद्ध मंदिरों तथा देवस्थआनों को जानने वाले को 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है।[28] 'क्षेत्रय्या' या 'क्षेत्रज्ञ' उन्हें इसलिए भी कहा गया-- "Because of his habit of traveling from one place to another singing his songs at tempels. He came to be called Kshetrayya or Kshetaggya=one who travels." 'आंध्र कौमुदी' मंडालक्ष्मी नरसिंह कवि ने क्षेत्रय्या का उल्लेख किया है (सत्रहवीं शताब्दी) "मुव्वगोपाल भक्तेन क्षेत्रज्ञ कविना" अर्थात् मुव्वगोपाल के भक्त कवि क्षेत्रज्ञ के द्वारा। इसी तरह सुब्बाराम दीक्षितार जिन्होंने क्षेत्रय्या की जीवनी से संबंधित टिप्पणी में कहा है कि उन्होंने अपने बचपन में मुव्वपुरी के गोपाल मंदिर में गोपाल मंत्र की दीक्षा ली थी।[29]

किंवदन्तियों के अनुसार क्षेत्रय्या (1559) ने जीवन की शुरुआत "एक आवारा और रसिया व्यक्ति के रूप में की लेकिन समय बीतने के साथ उनका मन/हृदय पूर्णतः परिवर्तित होकर मुव्वगोपाल में रम गया। बजती किंकिणी वाले भगवान गोपाल सर्वोत्तम प्रेमी थे-- अपनी परिणीता पत्नी के प्रेमी/अन्य की पत्नी के प्रेमी और गणकाओं के प्रेमी।"[30] तेलुगु साहित्य के आलोचक सी.आर. रेड्डी ने 1950 में विस्साअप्पा राव को अपने पत्र में लिखा है -- XXX "क्या मैंने एक चरवाहे को सड़क पर 'मंचि दिनामुनेडे' गीत गाते सुना था- ऐसा आपको बताया?" इससे यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रय्या साधारण लोगों के बीच भी अपनी जगह बनाने में सफल रहे थे। इसी पत्र में सी.आर. रेड्डी क्षेत्रय्या के युवावस्था में आवारा होने की बात पर भी आश्चर्यचकित हैं-- "क्या आपको यकीन है कि क्षेत्रय्या यौवन के दिनों में आवारा रहे होंगे? XXX

वह इन्द्रियपरक कल्पना में खूब रहने वाले हैं। मुझे तनिक भी संदेह नहीं है कि वह अपने व्यवहार में काम-प्रिय न रहे होंगे। सिर्फ कल्पनाजीवी ही वास्तविकता से घृणा करते हैं। XXX काम को पूरी स्वीकृति प्रदान करने वाली कलाकृतियों की परंपरा शुद्ध रूप से भारतीय है।" सी.आर. रेड्डी का मानना है कि यह कहना आसान नहीं कि क्षेत्रय्या के पदों में धर्म/अर्थ/काम/मोक्ष-- इन चारों पुरुषार्थों को लेकर संतुलित दृष्टिकोण का अभाव है।"[31]

विद्वान आलोचक क्षेत्रय्या में भक्ति को दरकिनार कर श्रृंगार को प्रमुखता देते हैं और स्वाभाविक है कि अश्लीलता देख लेते हैं। क्षेत्रय्या को समझने के लिए शरीर/मन/बुद्धि आत्मा चारों स्तरों को देखना होगा। रासलीला का संकेत देता क्षेत्रय्या का यह पद (वेडुकतो - देवगांधारी राग, आदिलाल) अध्येताओं द्वारा एकाधिकार बार उद्धृत किया गया है-- "रसिकों के राजकुमार जो रासलीला में लीन रहते थे/ कहते हैं कि दस (या इक्कीस) पीढ़ियों से व हमारे कोष हैं।"[32] विद्यापति कृष्ण की रासलीला का वर्णन करते हैं। बसंत की रात है और कृष्ण रसिक हैं। इसीलिए रस-रंग के बीच सरस रास खेला जा रहा है-- "ऋतुपति-राति रसिक ब्रजराज। रसमय रास-रभस-रस माझ।"[33] मुव्वगोपाल पुरुषोत्तम होने के कारण परम आत्मा के रूप में प्रस्तुत है। वह साधारण अर्थ में रसिक नहीं है लेकिन उन्हें "रसिकों का राजकुमार" कहा गया है। मुव्वगोपाल XXX जनता के पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे आध्यात्मिक कोष के संरक्षक हैं और अनुपल्लवी में क्षेत्रय्या कहते हैं कि "ईश्वर ने अपूर्व कृपा से उनके साथ परिणय संबंध स्थापित किया है।" मुव्वगोपाल "रसिकों के राजकुमार" तो अवश्य कहे गए हैं लेकिन वह "लम्पट" नहीं हैं, क्योंकि वह सात और तीन पीढ़ियों से रचनाकार की जन्मस्थली को कोषनायक हैं।"[34]

कांची के वरदराज मंदिर के पास उस काल के अत्यंत मोहक दृश्य के बीच क्षेत्रय्या अपने नायक को परमात्मा के रूप में संबोधित करते हैं। वेश्याओं के मोहल्ले में मुव्वगोपाल के रात्रिकालीन कारनामों का जिक्र करते हुए एक गायिका का क्षेत्रय्या एक ऐसा अकिंचन कहती है 'जिसके हाथ कानी कौड़ी नहीं' लेकिन 'जो प्रणय-निवेदन से बाज नहीं आता।' वस्तुतः नागर चातुरी और प्रणय-निवेदन की कुशल अभिव्यक्ति के मामले में कोई भी उनके जिनता सफल न हुआ।"[35] कहा जा सकता है श्रृंगार को व्यक्त करने वाली विषयवस्तुओं/चरित्रों और घटनाओं का विस्तार क्षेत्रय्या के पदों में देखा जा सकता है। क्षेत्रय्या ने अन्नमाचार्य/ नारायण तीर्थ/ सिद्धेन्द्र की परंपरा को आगे बढ़ाया।[36] जयदेव द्वारा रचित अष्टपदी की तरह क्षेत्रय्या के पदों में श्रृंगार सर्वोपरि है। 'प्रिफेस' में प्रो. एम.वी. राम सरमा लिखते हैं -- "As an artist Kshetrayya's message is implied, His padams propagate bhakti, but harmoniously blended with sringara."[37] प्रो. एम.वी. राम सरमा आगे डॉ. बी. रजनीकांत राव से क्षेत्रय्या के जीवन के विषय में मतभेद प्रकट करते हैं--"To me the love of Kshetrayya and Mohanangi is a natureal emotional experience as both" - नृत्य और संगीत के उत्कट प्रेमी थे।[38] लेकिन इसके विपरीत डॉ. बी. रजनीकांत राव ने क्षेत्रय्या के संस्कृत की कथाओं में रुचि न रखने और संगीत और नृत्य की कक्षाओं में अधिक रुचि लेने और इसके साथ ही कक्षा में देवदासियों की उपस्थिति की ओर ध्यान आकर्षित होने का वर्णन किया है। समय व्यतीत होने के साथ क्षेत्रय्या का विवाह तथा उसका देवदासी (जिसे मोहनांगी नाम दिया गया है) के प्रति आकर्षण बढ़ना और एक दिन यथावसर मोहनांगी की समक्ष प्रेम-निवेदन करना तथा उस युवती मोहनांगी का चुनौती देना-"किस तरह एक आचार्य कुल का निपट गँवार और आवारा लड़का उससे प्रेम-निवेदन कर सकता है? अगर उसके पास क्षमता हो तो गाँव के इष्ट देवता के बारे में स्वयं कोई पद लिखे। तब ही वह उसके प्रति प्रेम नहीं तो कम-से-कम सम्मान का भाव जता

सकेगी।" इस निष्फल संवाद के बाद उन्होंने पद रचना की, जिसके नायक वह स्वयं थे और इसमें ईश्वर से अनुनय-विनय किया गया था।[39] इस इंकार के पीछे मोहनांगी के पीछे मोहनांगी का देवदासी होना भी संभव प्रतीत होता है। 'इन्नि विधमुला पूजिंचेरा स्वामी' इस पद में देवदासी मोहनांगी के प्रति स्वयं क्षेत्रय्या का प्रेम अभिव्यक्ति पाता है। वह देवदासी है, उसका मनुष्य मात्र से प्रेम करना निषिद्ध है। डॉ. रजनीकांत राव ने लिखा है-- "It is of interest to note that the hero an this lyric is not Muvvagopala but the composer Kshetrayya himself XXX. यह पद 'Sripati sutu' का पूर्ववर्ती है।[40]

काव्य-प्रेम के अतिरिक्त संगीत और नाटक/रंगमंच के प्रति जन-मानस का रुझान बहुत था। साथ ही यह कटु-सत्य भी मानना पड़ता है कि वेश्यागमन व परस्त्री-गमन हेय-दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। यही कारण है कि "क्षेत्रय्या की रचनाओं में परकीया और सामान्या को जो स्थान मिला है, वह स्वकीया को नहीं।"[41] रूप-गर्विता और प्रेम-गर्विता दोनों रूप में क्षेत्रय्या स्वयं को गोपी मानकर मुव्वगोपाल की भक्ति करते हैं। क्षेत्रय्या लिखते हैं अनेक नामों से पुकारे जाने वाले मुव्वगोपाल अर्थात् कृष्ण ही है। क्षेत्रय्या ने कृष्णा नदी के किनारे रहते हुए 'Sang Many "Padams" जिनमें कृष्ण और गोपियों के प्रसंगों को लेकर मुव्वगोपाल की प्रशंसा को अभिव्यक्ति मिली। तत्पश्चात् क्षेत्रय्या 'Moved on to the court of "Tanjore" और उन्होंने जीवन की सन्ध्या वहीं गोदावरी के किनारे व्यतीत की। त्यागराज के बाद महान विचारक के रूप में क्षेत्रय्या को बहुत प्रशंसा मिली; वे अपने प्रदेश में लोकप्रिय हो गए। क्षेत्रय्या के पदों में संयोग-वियोग की विभिन्न स्थितियों का चित्रण मिलता है।[42] जिनको अभिव्यक्त करने के लिए क्षेत्रय्या ने स्वयं को स्वकीया/ परकीया/सामान्य/परिणीता और Other woman के रूप में प्रस्तुत किया है।

स्वकीया - इस पद में नायिका स्वकीया है, पतिभक्त है और सारे भौतिक सुख एवं प्रेम के कारण उत्पन्न चेहरे का लावण्य/मनोहारित्व अपने खूबसूरत पति मुव्वगोपाल पर न्योछावर करती है। यह पूर्णरूपेण भक्ति-समन्वित पद है -- "O charming master, what services of worship/ shall I arrange for you?? क्या चमेली-जुही के फूलों से सुसज्जित शय्या बिछा दूँ या गुलाब के फूलों का कालीन/गलीचा बिछाऊँ? जिससे चलती हवा के संग फूलों की खुशबू आए। या चंदन का लेपन करूँ तुम पर या तुम्हें पान का बीड़ा दूँ O charming lord of Inapuri, my Muvvagopala/ why not I make you swim in the ocean of love?[43] यहाँ नायिका स्वीया है, ब्याहता है। यह नायक के क्षणिक क्रोध और उदासीनता को महसूस करते हुए चिन्तित दिखती है। दूती उसे सांत्वना देती है और उसके विश्वास को शक्ति और नायक को फिर उसके पास ले आने का वादा करके उसकी आशा को जगाए रखने में सहायक होती है। दूती का कहना है अगर नायक कभी-कभी नाराज होता है तो उसका यह अर्थ तो नहीं है कि वह तुमसे प्रेम नहीं करता? तुम्हें आशा क्यों छोड़नी चाहिए - XXX I shall bring your beloved here. यह लंबी-लंबी साँसें लेना बंद कर दो सुंदरी, अपने मन में किसी तरह का डर मत रखो - "By day or night, today shall I not unite you with your lord?" क्या तुम्हें सान्त्वना देने के लिए और कोई सहेलियाँ तुम्हारे पास हैं ? जब मैं तुम्हारी अपनी प्यारी सहेली यहाँ तुम्हारे पास है? Should you slicit others? आगे भी उसका राहत देता कथन है -- "O womean, if varada who is the same as Muvvagopala/once unites with you/ would he care to raise his eyes for others?" मेरे कहे का विश्वास करो अपने मन की मजबूती बनाए रहो और -- "Don't be angry have patience, oh, frail one, be on the winning side"[44] यहाँ नायिका स्वीया है। उसका मन पति-भक्तिपूर्ण है, उदार है।

अपने पति के छिपा कर किए जाने वाले अनैतिक कार्य-कलापों के प्रति पत्नी समझौता करने वाली है। अपनी विश्वस्त सहायिका से बात करते हुए अपनी स्थिति को उजागर करती है कि वह -- "Between the hope of his come-back and continued stalement" उलझी है। उसका मानना है - "Destiny can't be by-passed, young woman, one has to face it sometime!" वह आगे भी अपनी मनोव्यथा का खुलासा करती है कि कामना/लालसा की बड़ी लहर भले ही उसे मेरे प्रिय के सामीप्य-सुख की प्रसन्नता मिल जाए और इसके साथ ही वह कितनी भी मिठबोली हो तथा कामसूत्र में वर्णित प्रेम की चौरासी प्रेम-भंगिमाओं का प्रदर्शन करने में कितनी भी निपुण हो फिर भी क्या वह मेरे प्रिय को छुपा सकती है? और यह सवाल भी उठता है-- "Would he be attached forever to her/ would it be as though I never loved him? But what does it matter, it's all part of life/ facing opposites like having and not having!" क्या औरतें एक भला चाहने वाले पति के लिए नहीं तरसतीं? उन्हें दोष नहीं दिया सकता और क्यों दिया जाए? "With deep-rooted passion as ever before/ wouldn't Muvvagopala himself/be paying me a visit; would water in the well/ o woman, ever be rising in a flood."[45]

यहाँ नायिका आदर्श गृहिणी है। 'Heroine is an ideal house wife suffering from lonesomeness after a tiff with lover, sends her supplication to her beloved through a messenger-maid. She is quite tender in her feelings towards him, and he should not mistake her past actions which were all done in good faith and devotion for him.[46] यहाँ नायिका दूती से अनुनय करती है कि वह मुव्वगोपाल के पास जाकर संदेश दे कि उनका व्यवहार शालीनता की सीमा पार कर गया है--"Oh at this juncture / he is obstinate and could not come here and does not heed my prayers/ it is impossible to withstand cupid's frontal attack my dear."[47] नायिका का अवसाद अनुभव किया जा सकता है --"हे सखी!/ जिन्होंने मुझे इतना प्यार दिया / वही मुव्वगोपाल अब नहीं आते/ और मेरे प्रति उदासीन हो गए हैं / यह तो कोई शालीनता नहीं।"[48] हृदय का ताप क्षेत्रय्या के काव्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखारा/निखरा दृष्टिगत होता है। जैसे भाड़ में भूना जाता हुआ चना बालू से छिटक कर बाहर नहीं होता वैसे ही क्षेत्रय्या का गोपीभाव भी प्रिय से वियुक्त होकर यंत्रणा पाता है, लेकिन उससे विरत नहीं होता। क्षेत्रय्या लिखते हैं - कि आखिरी बार मुव्वगोपाल मुझसे आलिंगन-बद्ध हुए थे लेकिन "अब उनका मक्खन-सा हृदय हो गया है पत्थर/वे मुझे चले गए हैं छोड़कर/अब शायद कभी न आएँ/ और मुझे देख न पाएँ/ युवती! मेरे मुव्वगोपाल को / किसी अच्छी जगह पर सुरक्षित और प्रसन्न रहने दो XXX मेरा धीरज अपार है।"[49]

परकीया :- क्षेत्रय्या सोलह हजार गोपियों का हवाला देते हैं। देखिए- "निन्नु नेनु मरतुना ओ चेलिया" में कवि क्षेत्रय्या कहते हैं - "क्या मैं तुम्हें भूल सकता हूँ... / मुझे वेंकटेश कहकर पुकारते हुए/ जो मुव्वगोपाल ही हैं/ तुमने सोलह हजार गोपियों के साथ/अनथक प्रेम करने के लिए बधाई दी/ XXX प्रेम क्रीड़ा में इतनी कुशल होने के कारण/ अपने तौर-तरीकों की ओर मेरा ध्यान खींचा था/ मैं भूल सकता हूँ भला??"[50] Here the heroine is parakiiya, being a devadaasi under the social taboo from having any independent love affairs but having had a secret love with the hero, for her skill in speech by her hero, for her skill in speech and action! यहाँ क्षेत्रय्या अपनी युवा मित्र मोहनांगी को याद करते हुए कहते हैं-"Do I forget you XXX your response to start with, being in the negative/ when I laid down simulating sleep/ did you not realize and come near me/ to drink the nectar of may lips/ and having held them tight together. Fo that my face/ did not move either side/ did

you not press very hard and drink out of them/ and shake off like an adroit sweet-heart!!"[51] विद्यापति में भी ऐसा पद उपलब्ध होता है। राधा की सखी उससे मान-त्याग करने का आग्रह करती कहती है सोलह हजार रानियों के होते हुए भी कृष्ण तुम्हारे बिना आकुल हो उठते हैं और तुम मानसिक लज्जा छोड़ नहीं सकतीं। विद्यापति कहते हैं- "पाँच-पाँच गुन दस गुन चौगुन, आठ दुगुन सखि माझे/ विद्यापति मन आकुल तुअ बिनु, बिसरि न पाबसि लाजे।"[52] क्षेत्रय्या ने अपने मुव्वगोपाल को गोपियों से घिरा और प्रेमासक्त चित्रित किया है - "निन्नु नेनु मरतुना ओ चेलिया।"[53] इसी तरह जयदेव भी अपने कृष्ण को गोपियों के साथ रससिक्त अठखेलियाँ करते चित्रित करते हैं -- "शिलष्यति कामपि चुम्बति कामपि रमयति रामाम्। पश्यति सस्मितचारुपरामनुगच्छिति वामाम्।"[54]

इस पद में भी नायिका परकीया है जो दाम्पत्य-स्थिति से परे जाकर अवैध प्रेम-संबंध में/ श्रृंगारिका क्रियाओं में अत्यधिक माहिर है/प्रतिभाशाली है/ दूसरों को दुविधा/ असमंजस में रखने/ सताने और उसकी वासना/चाह/लालसा को जगाने में और स्वयं को नायिका के लिए प्रस्तुत करने में समर्थ है पूर्णिमा की रात में। इस पद में नायक की प्रार्थना है अपनी प्रिया से पूर्णिमा में अच्छा-सा वक्त गुजारने की। नायक नायिका से अनुनय करता है कि प्रिये प्रेम के खेल को प्रबलता से महसूस करने के लिए कितनी सुंदर चाँदनी-रात है। प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध गौरैया के जोड़े की तरह जब हम चुंबित-प्रतिचुंबित स्थिति में परस्पर उलझे हुए "XXX so without harassing me, ask me to start the game!! Fine moon-light..." बिस्तर के साथ बालों की सजावट/ गुलाब के फूलों का सुगंधित पानी और देह पर चंदन का लेप करके शरारती अंदाज में तुम्हारी लालसा को उद्दीप्त करके सुरुचिपूर्ण ढंग से मिलन के लिए - "I make your heart melt my dear, because tonight it is full moon!!" अक्सर मुझे मुव्वगोपाल कहकर बुलाना और चेहरे पर खिली मुसकान के साथ चुंबन लेना-इसके साथ ही "Pitching up myself as an adroit lover, you equal sport/ o young bride, so that the veil of passion is completely pulled down to night!! Fine moon-light..." यहाँ नायक द्वारा खुला निमंत्रण है।[55]

सामान्या :- नायिका सामान्य है। अतीत में दोनों विनीत भाव से आपस में परस्पर प्रेम में बँधे हुए थे। पुरानी यादों को बटोरते हुए नायिका प्रिय के पूर्व में किए गए वादों की याद दिलाती है कि तुम प्रेम के लोभ में कहीं और कभी गुमराह न होना। लेकिन नायिका महसूस कर रही है कि कहानी में बदलाव आ गया है।-- Days have come to this pass; destiny is jealous/ where are the mercies o Muvvagopala, my master!" उसका उलाहना है कि जैसे ही तुम पहुँचे थे क्या मैंने तुम्हें संकेत देकर बुलाया नहीं और आलिंगन में नहीं बाँधा था? प्रेम में डूबे--Were you not the beloved who got lost in ecstasy?" वह इससे आगे भी आरोप लगाती है कि जब तुम दूसरी स्त्री के पास से लौटकर आए तो -- XXX Was I not the woman/ who spread the carpet on your path?" जब मैं नवयौवना थी और स्वभाव से लजीली थी क्या वह तुम ही नहीं थे, जो बहुत दुलार करते थे? Muvvagopala when you joined me on you own, was I not the woman/ who wrenched a promise from you/ that wouldn't be friendly with any other woman.![56]

मोव्वा छोड़ने के बाद क्षेत्रय्या यात्रा के दौरान भी काव्य-संरचना में संलग्न रहे। भगवान मुव्वगोपाल के प्रेम-प्रसंगों का चित्रण करने वाले उनके गीत और मिठास से मंत्रमुध श्रोतागण उनके गीतों पर नृत्य और प्रस्तुत किए गए अभिनय से अभिभूत हो उठते थे। क्षेत्रय्या देवदासियों और राजनर्तकियों को गीत की शिक्षा देने के समस्त अवसरों का भरपूर उपयोग करते थे। वे जहाँ भी जाते थे वहाँ इष्ट देव 'मुव्वगोपाल' का नाम आता था। XXX वे इतने दुःसाहसी थे कि उस निर्धन अवस्था में भी गणिकाओं

के वास-स्थानों पर चले जाते थे।[57] क्षेत्रय्या का पद है- "चेत कासु लेडु गानि" जिसमें वह कहते हैं -- "उसके हाथ में एक धेला नहीं/लेकिन इशारे करता चलता है/हे सखी, आजकल तो/ मुव्वगोपाल छैला बना फिरता है/ XXX यहाँ आकर अपने छोटे-छोटे पद गाता/ जिस किसी भी समय मेरी/संवेदनाएँ छूकर भोलेपन से मुझे जीतकर/ मुव्वगोपाल अंततः/मेरी निधियों पर हाथ रख देता है।"[58] Here the heroine is a common courtesan - A mere mercinary. XXX from the portrayal of Muvvagopala's personality in this lyric, we can have almost the nearest glimpse of Kshetrayya's own personality and some character traits."[59] /यहाँ नायिका "सामान्य गणिका महज मुद्रालोभी है। वह उस नायक का वर्णन भी खुलकर करती है, जो दुश्चरित्र XXX और वेश्यागामी है।[60] क्षेत्रय्या लिखते हैं -- "XXX When all of us/ fragrant with jasmine studded plaits have been chatting together/ XXX and singing small lyrics/in time and out of time, having touched my sensitivities/ and credulously won over me, Muvvagopala/ has finally laid his hand on my treasure."[61] विद्यापति भी लिख गए हैं-- "कर धरु कुच आकुल भेलि नारी।" क्षेत्रय्या भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र से पूर्णतः परिचित थे। संयोग-वियोग की नायक/नायिका द्वारा अनुभूत सब दशाओं का उल्लेख क्षेत्रय्या के पदों में उपलब्ध होता है। प्रस्तुत पद में नायिका नायक मुव्वगोपाल को अकेला छोड़ आयी है और सखी नायक की व्याकुलता देख कर खीझ-भरा उद्गार अभिव्यक्त करती है-- (पद की पहली पंक्ति है) "एल वच्चितवे? सामिनेडबासि-एलागु काल्लाडेने? ओ ललनरो" अर्थात् हे ललने! मुव्वगोपाल को छोड़कर तुम क्यों चली आई हो? "Young lady Muvvagopala would be pining for you" और स्वप्न में भी वह तुम्हें पुकारा करता है। अपनी शय्या से चौंककर उठ बैठता है, आहें भरता है और आँसू भरे नेत्रों से तुम्हें ही खोजता रहता है। तुम उसे अकेला छोड़कर क्यों चली आईं? आगे भी सखी कहती है -- " He would welcome every thought and reference made to you /and recollects the pleasures of moments spent with you/XXX He deem you beyond comparison with others, o damsel! Why have you come away..."[62] ऐसा ही भाव विद्यापति के पद में द्रष्टव्य है - कृष्ण की व्याकुलता भी अभिव्यक्त होती है; जब दूती कृष्ण के पास से लौटकर राधा को उनके द्वारा अनुभूत दुःख जो मथुरा जाने के बाद वह भोग रहे हैं; उसका वर्णन करती है- "तनि बिनु राति दिबस नहि भाबए, ताहि रहल मन लागि/" क्योंकि राधा के बिना मैं --"आछिअ जइसे बिरागी।"[63] विद्यापति की राधा के लिए दारुण विरह-विह्वलता असह्य हो उठी है। सावन घिर आया है-"हिए नहि सहए असह दुः रे ..... XXX मोर मन हरि हरि लए गेल रे, अपनो मन गेल/" कृष्ण स्वयं तो चले ही गए अपने साथ मेरा मन भी ले गए। राधा सन्तप्त है-- "मोहि रहलो न जाए।"[64]

'ना मानुस वंटिडे मान सयिते' पद में क्षेत्रय्या की नायिका का प्रेम मुव्वगोपाल के प्रति पार्थिव प्रतिबंधों के परे अपार्थिव स्तर पर पहुँचता प्रतीत होता है। नायिका मानती है अगर हम दोनों का सोच/हमारी भावनाओं में समानता है तो मेरे द्वारा किए गए व्रत-उपवास सफल होंगे और मेरी प्रसन्नता द्विगुणित हो जाएगी।[65] यहाँ नायिका गणिका है। प्रेमी के प्रवासी होने से व्यथित है। " Some scholars accredit this lyric to annamacarya. The names of 'Varada' and 'Perundevi' in this lyric definitely lyric is considered by some scholars to be a courtesan, XXX she might have had from him. XXX the reference to the name of 'perundevi' in this lyric makes us rethink categorise the heroine to belong to the class of a devoted wedded wife. प्रिय के नैकट्य का सुख न मिलने पर यहाँ नायिका आलस्य को दरकिनार करती; जैसी भी लकीरें खींचती है, वे उसके प्रिय के रूप को साकार करती हैं और पलक झपकते हैं

चेतन होने के बाद -" It looks as though you were with me;/ my enamoured state is like this, you alone know it/ whom can I narrate all this o my varada."[67] अपनी विह्वलता भरी स्थिति का वर्णन आगे भी करती है नायिका, हाथ में तंबूरा लेकर सीढ़ी चढ़ते भी उसे अपने प्रिय के अनुसरण की अनुभूति होती है और "XXX when I start singing/ you seem to be singing along with me/ incomparable love of mine is very well known to you/ whom can I narrate all this, o my varada" नायिका अगर अपने 'वरद' को पेरुन्देवी के प्रिय के रूप में देखती है तो महसूस करती है जैसे वह अपने प्रिय से मिल सकी है। उसके लिए -- "It is a matter of great joy to hear the women of my clan/referring to you as my consort/"[68] क्योंकि - "विरहाकुल युगल-मिलन का रहस्य/ तुम्हें भलीभाँति मालूम है/हे मेरे वरद! यह सब मैं और किसे बता सकती हूँ भला!"[69]

परिणीता :-

क्षेत्रय्या के पद 'मगुव तन केलिक मंदिरमु' की पृष्ठभूमि के अनंतकृष्ण शर्मा ने 'क्षेत्रय्या के जीवन की दिव्य घटना' का उल्लेख किया है। एक दिन क्षेत्रय्या वरदराज के मंदिर में पूजा-आरती में उपस्थित थे। पुरोहितों ने भगवान के लिए पवित्र वैवाहिक शय्या सजाई और रानी पत्नी पेरु-देवी की प्रतिमा को अपनी जगह से उठाकर भगवान के कक्ष में रख दिया। किसी का ध्यान क्षेत्रय्या की तरफ नहीं गया; वह अंधेरे कोने में खंभे का सहारा लिए खड़े थे। संभवतः वह दिव्य युगल की प्रेम-लीलाओं की कल्पना करते हुए सम्मोहित हो चुके थे। सुबह जब क्षेत्रय्या सम्मोहन से जागे, तब उन्होंने भगवान के कक्ष से निकल कर सीढ़ियाँ उतरती एक स्त्री मूर्ति देखी और यह पद अभिव्यक्त हुआ।[70] क्षेत्रय्या लिखते हैं -- "वर के शयन-कक्ष से दिव्य दुल्हन निकल रही है/कांची के कामासक्त वरद को जगाती/ और सुबह होने की घोषणा करती/उसकी वेणी से बँधी गुलाबों की माला ढुलक रही है/ XXX अधखुली लंबी आँखों से झाँक रहा है उनींदापन/ XXX उसकी आकर्षक रुपच्छटा/उसकी थकान और समर्पण को दिखा और छुपा रही है।"[71] क्षेत्रय्या के द्वारा इसी कांची के वरदराज मंदिर में व्यतीत की गई रात की व्याख्या देखिए- "At dawn, Kshetrayya had a vision of the divine consort 'perundevi' coming out of the bridal chamber and this inspired lyric came out, as such, the heronie in this lyric is wedded wife and a divine woman. The contention of certain scholars who categorised her as a courtesan is obviously erroneous."[72] 'निन्नु जूडा गलिगेन इनाल्लकु' गीत है। The heroine in this lyric is a wedded wife, who is ardently in love with her husband who in her estimate is Muvvagopala incarnate and she is quite confident of his affection for her XXX.[73] क्षेत्रय्या लिखते हैं -- "कितने लंबे अर्से बाद मैं तुम्हें देख पायी/जब तुम्हें अंतिम बार देखा था/ तब से चार या पाँच पूर्णिमाएँ निहार चुकी हूँ/ हे मुव्वगोपाल! कल रात तुम मेरे सपने में आए - सचमुच/ सच मानो/ हे विष्णु![74] XXX इसके आगे क्षेत्रय्या एक पत्नी का हृदय खोलकर सबके सामने रख देते हैं -- " You alone are the centre of my world/ and my mind remains undiverted; o my Muvvagopala.?[75] क्षेत्रय्या 'निन्नु जूडा गलिगेन इनाल्लकु में नायिका के स्वप्न में दिखे मुव्वगोपाल उसे यथार्थ में कहीं नहीं मिलते। क्षेत्रय्या लिखते हैं-"हे मुव्वगोपाल!/ कल रात तुम मेरे सपने में आए-सचमुच/सच मानो/ हे विष्णु!/मैंने शय्या से उठकर/ तुम्हें खोजा लेकिन कहीं न पा सकी/मेरा आँचल आँसुओं से भीग गया। मैं दुःख में विलाप करती रही/पता नहीं, तुमने मेरे बारे में सोचा भी या नहीं/ओ मेरी तपस्याओं की सिद्धि/कितने लंबे अर्से के बाद मैं तुम्हें देख पायी।"[76] विद्यापति की राधा अपनी व्यथा सखी के सामने अभिव्यक्त करती है- "एकहि समय सखि सूतल रहे, अछल बालम्भ निसि मोर/ न जानल करवन तेजि गेल रे, XXX सून सेज हिय सालए रे, XXX"[77]एक

ही शय्या थी और रात भी थी, प्रिय पास था; लेकिन किस क्षण वह चला गया, सूनी सेज मेरा हृदय छलनी किए देती है।

Here heroine is ideal wedded wife; she is confident about her husband's faithfulness to her. She is an adept in art of love. इस पद में क्षेत्रय्या नायिका का संपूर्ण रूप से अपने पति के प्रति प्रेम में सराबोर होना चित्रित करते हुए कहते है- कुछ तो समझकर और कुछ बगैर समझे भी/मेरी सखियाँ ढेर सारी बातें करती रहती हैं।"[78] लेकिन वे ईर्ष्यालु हैं और बदमिजाज। वे मुझे दोषी ठहराती हैं कि मैं कनखियों से भी उनकी तरफ नहीं देखती और मेरा उनके प्रति प्रेम-भाव नहीं है।- "How can my eyes which are filled with/ magnificence of my beloved/ see any other with the same fervour? XXX they want me to be angry with/ Muvvagopala who is my prop? When my heart is always filled with/ my lord, where is the plea for anger?"[79] The lyric is a supplication to the beloved by the hero who is crafty, hollow-hearted and even treacherous to his love. The heroine is an ideal wife. sensitive to pleassures and pains of love, and makes no secret of the anger. This is one of the many lyrics of Kshetrayya in which, either his adolesent episode of love with devdaasi. Or his civility towards his own wife-is often reflected.[80] एक तरफ क्षेत्रय्या का प्रेम अपनी पत्नी रुक्मिणी के लिए है और दूसरी तरफ वह अपनी मित्र देवदासी के प्रेम में भी डूबे दिखते हैं। "He was always treated as Muvvagopala readily by his wife, but the devdasi never agreed to identify him with muvvagopala."[81] काव्यशास्त्रियों द्वारा यहाँ नायिका को स्वीया-पत्नी की श्रेणी में रखा है जिससे डॉ. बी. रजनीकांत राव की सहमति नहीं है।[82] नायक कहता है- "When passion overcame me beyond my control/XXX you did not respond with compassion/ XXX craving for your company, when I revolved around you/ you made my life miserable!/ as a resuit my eyes were filled with tears/ you never cared to wipe them fair one!/ क्षेत्रय्या आगे भी कहते हैं -- जब मैं चाँदनी रातों में अशांत/ परेशान हो उठता था; तब भी तुमने मुझसे अच्छी तरह बात करके मुझे शांत करने की कोशिश नहीं की। इसके विपरीत तुम ईर्ष्यालु हो उठीं XXX और " You did not beckon me, calling me Muvvagopala/and demonstrate your devotion/ fair-eyed-one you forgot the promises you made/ to me on the day when we met for the first time/ o my dear, you did not kindly receive me, even when/ I waited for hours together before you/ o woman, you did not care for civilities of such a lover/like me, and chose to remain proud, alas."[83] हे कोमलांगी! क्या प्यार करने के कारण/लोग मुझे गोपाल कह कर नहीं पुकारते?[84]

विद्यापति भी कृष्ण के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं -"कि कहब हे सखि! कान्हक रूप। XXX अभिवन जलधर सुंधर देह। पीत वसन जाति दामिनी- रेह।।" हे सखि! कृष्ण के स्वरूप के विषय में क्या कहूँ? नवीन मेघ के समान सुंदर देह है और उन्होंने पीले रंग का वस्त्र धारण किया हुआ था, जो ऐसा प्रतीत होता है जैसे सघन श्यामल मेघ के चमकती स्वर्णिम बिजली की रेखा हो।[85] क्षेत्रय्या लिखते हैं - 'एव्वाडे ओ भामा' पद देखिए "XXX कौन है वह.../नीलश्याम मेघ की तरह चमकता/ पीत कटिवस्त्र धारण किए/उसने मुझसे कहा कि मैं मुव्वगोपाल हूँ/ जिस पर सोलह हजार गोपियाँ मोहित हैं -/"[86] जयदेव ने भी अपने कृष्ण को ऐसे ही रूप में चित्रित किया है- "चन्दनचर्चित नीलकलेवर पीतवसन वनमाली। केलिचलन्मणिकुण्डल-मण्डितगणडयुग स्मितशाली हरिरिह मुग्धवधूनिकरे विलासिनी विलसति केलिपरे।"[87] यहाँ नायिकी स्वीया है। "This is a reconstruction of Kshetrayya's experience into a lyric, what all he could recollect and imagine to be the ruminations and state of mind suffering from

anguish of loneliness by his devoted wife Rukmini far away at home, Movva. This is a lyric compossed by Kshetrayya at Tirupati." क्षेत्रय्या कल्पना करते हैं कैसे अकेली रुक्मिणी उनके बगैर रातें गुजार रही होगी? कैसे सहेगी वह अकेलापन और उसकी कड़वाहट? नवयौवनावस्था में की गई प्रेम की अठखेलियाँ/आलिंगन आदि क्रियाकलाप जो प्रिय की अनुपस्थिति में असहनीय हो गए हैं, कभी भुलाए नहीं जा सकते। कवि लिखते हैं -- "O my maid, all the amours of my union with venkatesa who is the same as Muvvagopaala have turned out to be false, why should I recollect those episodes and depressing moods!/ I am unable to stand in one single place."[88] अन्यत्र भी ऐसा ही भाव देखिए- दाम्पत्य-संबंध का निर्वाह करती हुई ब्याहता, मिठबोली, प्रेम-प्रवीण पत्नी रुक्मिणी अपने पति के दुराग्रह और वर्तमान उदासीनता अपने प्रति अनुभव करके विक्षुब्ध है, फिर भी उसके मन में पति को लौटा लाने की अपनी क्षमता का अहसास भी है। वह भगवान को भी नहीं छोड़ती, जिसने उसे स्त्री-रूप में धरती पर भेजा है - 'The creator would not escape my curse/XXX for having made me a woman/XXX I am wedded, oh, I am cheated!!' भगवान एक पुरुष होने के कारण स्त्री-मन के भीतर क्या चल रहा, नहीं समझ/जान पाता है। प्रिय! क्या मैं इतनी अपरिपक्व हूँ - 'By all means, I lay my faith in Muvvagoopaala/with whom I have certainly had a memorable union/and now I cross my threshould/caring not for consequences!!'[89] यहाँ नायिका आदर्श ब्याहता पत्नी है, प्रेम-क्रियाओं में निपुण है लेकिन नायक धूर्त आचरण वाला है। नायिका उत्कृष्ट प्रेमिका है और नायक के कार्यों की प्रशंसा करते हुए याद करती है और इस तरह अपने अकेलेपन की वेदना को कम करने की चेष्टा करती है - "XXX what sort of a man is he if is unable, O my dear/to enjoy her youth with determination?" अगर कोई खिली चाँदनी में संगीत नहीं सुनता तो क्या यह आनंद है किसी प्रकार का? अगर प्रिया की रमणीयता/लावण्य को चित्रित नहीं किया जा रहा तो क्या वह गीत है? इस तरह कई और सवाल भी नायिका उठाती है और अंत में पूछती है - "XXX of what worth is the libn if it is/not endorsed and admired by Muvvagoopala?"[90] यहाँ नायिका आदर्श ब्याहता पत्नी है जो अपने प्रति पति की ईमानदारी पर विश्वास रखती है और पति के प्रति अपने अत्यधिक प्रेम के प्रति उसे अभिमान है। वह कहती है उदाहरण देकर 'तुम राजा नल हो तो मैं रानी दमयन्ती हूँ। तुम आकर्षक कृष्ण हो तो मैं रानी रुक्मिणी हूँ। तुम राजा राम हो तो मैं महारानी सीता हूँ। अगर हरिश्चंद हो सच्चाई में तो मैं तुम्हारी चंद्रमति हूँ। अगर तुम कामदेव हो तो मैं तुम्हारी प्रिया रति हूँ।' "Like you and me united who else is there, tell me dear/compatible with each other, like us, o muvvagoopaala."[91]

Other Woman : क्षेत्रय्या ने तपस्या करके स्वयं को 'गोपी' में ही रूपांतरित कर लिया था, जो दूसरी स्त्री के प्रति प्रेम रखने के कारण भगवान के प्रति गहरी ईर्ष्या रखने लगी है। फिर क्षेत्रय्या के मुँह से भक्ति, दाम्पत्य-प्रेम और ईर्ष्या-भाव भी पदों में अभिव्यक्त हुआ।[92] नायिका को "Other woman" पर घनघोर आपत्ति है। नायिका के पास सोते हुए भी दूसरी औरत की प्रशंसा उसे भाती नहीं है।[93] अन्यत्र भी नायिका 'दूसरी स्त्री' की उपस्थिति से संत्रस्त है। क्रमशः उदाहरण उपलब्ध होते हैं।[94] यहाँ नायक धृष्ट है और नायिका "A devoted wife having discovered the vagaries of her huband having had daliance with other women, chides him with all her courage and asks him to get out."[95] नायिका प्रचण्ड क्रोध में कहती है - 'क्या मैं यह सब बर्दाश्त कर सकती हूँ/तुम्हारे होंठ आलते की खुशबू में डूबे लगते हैं/तुम्हारे ललाट पर लाल तिलक की छाप उभर आई है/मेरे पास मत रुको, जाओ/मैं यह

सब बर्दाश्त नहीं कर सकती।' मुझे धोखा देकर तुम मेरे सामने ऐसे झूठ कैसे बोल सकते हो।[96] "XXX have not you gone to that conquet's house with langour? Where else have you managed to acquire these withered flowers? The garland around you neck have got into knots? Indeed about her, you entertain your love; straight to her about, why don't you move?"[97] इसी तरह विद्यापति की राधा भी अपने प्रिय कृष्ण से परायी स्त्री के परित्याग की मिन्नत करते हुए कहती है- 'राखह माधव मोरि विनती/देहे परिहरि पर-युवती।'[98] यहाँ विद्यापति की नायिका अपने कृष्ण से प्रार्थना करती है कि परायी युवती को छोड़ दो। क्षेत्रय्या का नायक अगर आप उसे 'धृष्ट' कहेंगे तो नायिका भी 'उद्दण्ड' व्यवहार करती दिखेगी - जब वह कहती है - "Don't stand near me, go away." क्योंकि मैं यह सब सह नहीं सकती। यहाँ नायिका की कोशिश है यह जान लेने की कि नायक का प्रेम-संबंध कहीं और भी है जो - "Having had an affair with some other woman." नायिका कहती है - "It's cool and peaceful in my heart/XXX o lord of my life/my master Muvvagoopala!" उसका कहना है तुम मेरे पास क्यों नहीं आते, तुम्हारा चेहरा इतना कुम्हलाया हुआ क्यों है? नींद से तुम्हारी आँखें बोझिल हो रही हैं - "Who is she that has pressed and kissed your glossy cheek my lord? XXX why do you hide? Why don't you tell me, what is the name of the/dame my lord." उसका सवाल है - कौन है वह स्त्री, जिसने तुम्हारे शरीर पर चंदन का लेप किया है? "XXX were you not mixing with me, as though you had been love-smitten?/How many timess Muvvagopaala do I come to know your pretentions?"[99] यहां नायिका धनलोपुप स्त्री है जो अपने प्रिय के बेवफा होने के परिणामस्वरूप आहत है, और अपने पूर्व प्रेमिका होने के कारण सतर्क/चेतन तथा जानकारी रखने वाली है। इसलिए आलोचना करती है प्रिय के वर्तमान व्यवहार/मनोवृत्ति और क्रिया-कलापों की। यह पद रचा गया जब क्षेत्रय्या श्री शैलम् गए थे। यहां नायिका अपने प्रिय नायक के दूसरी स्त्री के संपर्क में रहने के कारण स्वयं को नायक के सामने ही कष्ट देना चाहती है क्योंकि यह स्थिति उसे गवारा नहीं है। वह कहती हैं - "Makes me cut a small figure in front of the gracious lord!! मुझे धोखा देकर मेरा प्रिय दूसरी स्त्री पर प्रेम लुटा रहा है और मैं सुनती हूँ वह उसके आकर्षण में बँधा उसके पास रहता है- "He pressed his cheek with budding smile on hers and planted kisses!!" श्री शैलम् के स्वामी का अभिन्न मित्र होकर भी मैं नहीं जानती थी कि मुव्वगोपाल इतना बड़ा हो जाएगा-"That not withstanding my protestation and my privilege/ of being the earlier lover, I hear..." दूसरी स्त्री के पास जाना उसने जारी रखा हुआ है।[100]

Here heroine is a courtesan, who has had a tiff with her unfaithful lover, her jealousy for the other woman and lenience towards her lover are explicit, along with her capacity to chide him for his pranks.[101] सी. आर. श्रीनिवास आयंगर ने (1929-31) में लिखा है - हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि 'चेव्वंदि लिंग और मुव्वगोपाल एक ही है और चेव्वंदि लिगं कांची वरद का ही एक नाम है।'[102] डॉ. बी. रजनीकांत राव भी लिखते हैं - "XXX that cevvandi linga is none else but lord Nataraja of Cidambaram.[103] यहाँ नायिका सामान्या कलहांतरिता है, गणिका है और अपने विश्वास को तो देने वाले प्रेमी से नाराज है, उसका झगड़ा हो गया है। दूसरी औरत के प्रति उसकी ईर्ष्या भी स्पष्ट है। कवि लिखता है- "XXX वह अब बजती किंकिणी के साथ उस औरत के घर में/गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और आलाप लेकर/तम्बूरे पर अजीबोगरीब गीत गा रहे हैं/क्यों कोई गुस्सा हुए बिना रह सकता है? नायिका याद करती है कि पहली बार कमलाक्ष जब मेरे पास आए थे तो मुझे लुभाने के लिए उनके पास एक सफेद उत्तरीय के अतिरिक्त और कुछ नहीं

था।"[104] नायिका को ऐतराज होता है इस बात पर कि अब उनका दुपट्टा रेशमी हो गया - "But now, when he goes ot her, he dons a silk scarf/a garand of blossoms around his clean shaven head/and guiltedged upper cloth hanging over his shoulder."[105] भारतीय स्त्री की साहचर्य भावना की चाह और स्वयं को एक साधारण स्त्री के रूप में देखना यहाँ उजागर होता है। इसी कारण यह सहज ईर्ष्या भरा कथन है। क्षेत्रय्या प्रभु के साथ प्रेम की नयी संभावना पर सोचा करते थे। अतः स्वयं को गोपी भाव में देखने के परिणामस्वरूप ईर्ष्या उत्पन्न होती है। गोपी मुव्वगोपाल के प्रति काम विह्वल है और वह अनुभव करती है जैसे मुव्वगोपाल कहीं और देवदासियों के प्रेम में उसे भूल गए हैं। क्षेत्रय्या गोपीभाव में डूबे कहते हैं - 'मुव्वगोपाल! मैंने तो आपको छोड़कर/किसी और को निहारा तक नहीं मुव्वगोपाल! क्या मेरे प्रति आपका दिखावटी प्रेम निवेदन उचित है?'[106]

"The spot light in this lyric is more on the deity's showing more favours on another woman, while the heroine's anguish for him is heightened by her jealousy for the other woman. Kshetrayya writes-staying in that woman's house, like a servant, day and night, does it behove you, Muvvagopala, to go on with cheap chatter?"[107] इसके आगे भी नायिका का संतप्त स्वर सुन पड़ता है-'मुव्वगोपाल! मैंने तो आपको छोड़कर/किसी और को निहारा तक नहीं मुव्वगोपाल!' एक स्त्री के लिए इससे बड़ी विपत्ति और क्या हो सकती है कि उसका पति कहीं और दूसरी स्त्री में अनुरक्त हो गया हो? इसी संताप को व्यक्त करती नायिका कहती है - 'मेरा अपना किसी और का हो गया है/मेरे सुख का कोई साधन न रहा मुव्वगोपाल!/ क्या प्रेमविह्वल होकर/विलाप करते रहना ही है मेरी नियति?'[108] क्षेत्रय्या की नायिका अपने प्रिय मुव्वगोपाल के अन्य स्त्रियों के प्रति आकर्षित होने पर आपत्ति जताती है। वह कहती है - 'उन सभी के घर में एक नौकर की तरह/दिन-रात आपका ठहरना/और उसके साथ फूहड़ चुहलों में रमे रहना/क्या आपको शोभा देता है मुव्वगोपाल? XXX चिकनी चुपड़ी वाचाल कुलटा के प्रेम में/ आपका संतप्त होना क्या उचित है?'[109]

सारांश यह है कि 'क्षेत्रय्या पदमुलु' रसपूर्ण है, आनंद देता है। भट्टनायक ने लिखा है - 'काव्ये रसयिता सर्वो न बोद्धा न नियोगभाक्' अर्थात् काव्य रस प्रदान करता है, वह न तो पुराणों की तरह उपदेश करता है और न शास्त्रों की तरह विधि-निषेध।[110] कृष्ण ग्वाले के पुत्र थे, उनकी कमर और कलाइयों में बँधी किंकणी और कंगन बजते रहते थे। 'गोपालमंत्र' की दीक्षा ने क्षेत्रय्या को ऐसे गीत लिखने में सक्षम बनाया था, जो ईश्वरीय तथा लौकिक प्रेम के आदर्श रहे अवर्णनीय आनन्दरूप कृष्ण को आराध्य रूप में स्थापित करते हैं। 'बजती किंकणी वाले गोपाल सर्वोत्तम प्रेमी थे- अपनी परिणीता पत्नी के प्रेमी/ किसी अन्य की पत्नी के प्रेमी/और गणिकाओं के प्रेमी।'[111] कृष्ण के प्रेम की विलक्षणता इसमें है कि वह सबसे प्रेम करते हुए भी स्वयं निर्मम/निःसंग बने रहे।

पी. वी. राजमन्नार के अनुसार-- क्षेत्रय्या के पदों का रस शृंगार ही है और 'उज्ज्वल नीलमणि' में भक्ति को शृंगार-पृथक् रस सिद्ध करने का प्रयास सही नहीं लगता।[112] भगवान और भगवती से संबंधित दाम्पत्य-प्रेम के खुले चित्रण के साथ यही रस 'मधुरभक्ति' कहा जाने लगा।[113] भक्ति और शृंगार के बीच विभाजन रेखा खींचना संभव नहीं है। भारतीय मनीषी चार पुरुषार्थों को जीवन में महत्व देते आए हैं। इन चार पुरुषार्थों में 'काम' भी है। "क्षेत्रय्या के जीवन भर की साध थी प्रेम के लौकिक अनुभव को परमात्मा मुव्वगोपाल की अलौकिक प्रेम-लीलाओं के स्तर तक उठाना और जनता के सामने प्रस्तुत करना।"[114] शृंगार और भक्ति को प्रायः विरोधी मान लिया जाता है...। शृंगार जहां पूर्ण हो जाता है, भक्ति वहीं से प्रारंभ होती है।[115] स्व. वारणासि राममूर्ति

'रेणु' को अफसोस है कि इतना प्रतिभाशाली कवि और साथ ही मुव्वगोपाल=कृष्ण का भक्त क्षेत्रय्या संगीतज्ञ मंडल द्वारा उपेक्षित/अर्चचित/अल्प चर्चित रहा है। 'यह भी हम आंध्रों का दुर्भाग्य है कि हमारे ही संगीत के विशेषज्ञ इनकी ओर से उदासीन रहे हैं। वे अपने सभा-समाज में इनका गायन नहीं करते हैं। ये भी इस भ्रम के वशीभूत हैं कि ये महाभक्त अश्लील शृंगार के आचार्य हैं।' लेखक के विचार से जयदेव और विद्यापति से अधिक अश्लीलता तो 'क्षेत्रय्या में नहीं दिखती है।"[116] आजकल कुछ चैनल क्षेत्रय्या पर फिल्म प्रसारित कर रहे हैं और कुछ चैनल क्षेत्रय्या के पदों की संगीतबद्ध प्रस्तुति भी कर रहे हैं। संभवतः इन माध्यमों से स्व. वाराणसि राममूर्ति द्वारा व्यक्त उपर्युक्त अफसोस का शमन हो सके। कहा जाता है - 'किसी के लिए भी अमावस्या के बाद पूर्णिमा आती ही है।' हो सकता है जो सम्मान क्षेत्रय्या को जीते-जी नहीं मिल पाया, वह आधुनिक संचार-माध्यमों से इक्कीसवीं सदी में प्राप्त हो जाए। विद्यापति की राधा आजीवन कृष्ण के प्रेम से सम्मोहित रहीं; काम-क्रीडा-रत कितनी ही रातें व्यतीत की हैं पर कृष्ण के प्रेम का मर्म नहीं समझ पायी। देखिए- 'जनम-अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल/लाख-लाख जुग हिय-हिय राखल, तइओ हिय जरनि न गेल।"[117] कृष्ण के बोल से मेरा मन अघाता नहीं। अनंतकाल तक प्रिय को हृदय से लगाए रही, फिर भी हृदय तृप्त नहीं हो सका। फिर मुझ जैसे पाठक की बिसात ही क्या?

संदर्भ

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन प्रथम खंड, पृ. 426। **2.** द्र. वही प्रथम खंड, पृ. 663 (नारदपाञ्चरात्र-प्रीतिसंदर्भ, पृ. 724 तथा नारदीय भक्तिसूत्र, 2/3 तथा 16/17)। **3.** धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, पृ. 442 पर उद्धृत शाण्डिल्य भक्तिसूत्र। **4.** द्र. वही, पृ. 315। **5.** वात्स्यायन, कामसूत्र, 2.1.16। **6.** ए. बी. कीथ, अनु. मंगलदेव शास्त्री, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 500, प्रकाशक-मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण, द्वितीय-1986। **7.** संस्कृत-हिंदी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 473, संस्करण-1973। **8.** ए. बी. कीथ, अनु. मंगलदेव शास्त्री, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.-65। **9.** लेखक/सं. डॉ. शिवप्रसाद सिंह, कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, पृ. 258, दोहा-126, से 135 तक। **10.** द्र. वही, पृ. 260, दोहा 136-145। **11.** लेखक/सं. डा. शिवप्रसाद सिंह, कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, पृ. 282, स्तंभतीर्थ वाली प्रति और संस्कृत टीका, द्वितीय पल्लव, दोहा-126-135। **12.** द्र. वही, प. 282, दोहा-136-145। **13.** भगवत्शरण उपाध्याय, भारत के साहित्यों की कहानी, पृ. 28, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2014। **14.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 15। **15.** द्र. वही, पृ. 14-15। **16.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, Introduction (Dr. A.S. Raman), Page 34। **17.** Letter send me from Warangal on 2-1-2020। **18.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 23। **19.** स्व. वारणासि राममूर्ति 'रेणु', आदान-प्रदान पत्रिका, पृ. 255 पर 'तेलुगु साहित्य के विद्यापति श्री क्षेत्रय्या' लेख। **20.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 87। **21.** द्र. वही, पृ. 84। **22.** द्र. वही, पृ. 84-85। **23.** 'नैणसी' राजस्थानी पत्रिका, डॉ. अंबू शर्मा, का पत्र, 18-8-17। **24.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, Introduction (Dr. A.S. Raman), Page 34। **25.** Ibid, page-32। **26.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 13। **27.** श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 399-400, श्लोक 01-02। **28.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 19। **29.** द्र. वही, पृ. 24। **30.** द्र. वही, पृ. 17-18। **31.** द्र. वही, पृ. 18। **32.** द्र. वही, पृ. 21। **33.** सं. लेखक-डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल, विद्यापति, पृ. 64, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1997। **34.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-

क्षेत्रय्या, पृ. 24। **35.** द्र. वही, पृ. 85। **36.** द्र. वही, पृ. 87। **37.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, Introduction (Dr. A.S. Raman), lyric no. 42, page 88-89। **38**. Ibid, page-12। **39.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 29-30। **40.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, Introduction (Dr. A.S. Raman), Page 88-89। **41.** स्व. वारणसि राममूर्ति 'रेणु' आदान-प्रदान पत्रिका, पृ. 253 पर 'तेलुगु साहित्य के विद्यापति श्री क्षेत्रय्या' लेख। **42.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, page 32, Forword by Dr. B. Gplala Reddy। **43.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 141, Page 285-286। **44.** Ibid, lyric no. 130, page-261-262। **45.** Ibid, lyric no. 121, page-245। **46.** Ibid, lyric no. 65, page-135-136। **47.** Ibid, lyric no. 65, page-136। **48.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 98-99। **49.** द्र. वही, पृ. 95। **50.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 46-47। **51.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 36, Page 75-76। **52.** सं. रामवृक्ष बेनीपुरी, विद्यापति-पदावली, पृ. 110। **53.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 46-47। **54.** सं. डॉ. कपिला वात्स्यायन, गीतगोविन्द, पृ. 102 तथा संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 246 पर ए. बी. कीथ द्वारा द्वारा उद्धृत श्लोक। **55.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 127, Page 256। **56.** Ibid, lyric no. 123, page-248-249। **57.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 37। **58.** द्र. वही, पृ. 37-38। **59.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 25, Page 54-55। **60.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 38। **61.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 25, Page 55। **62.** Ibid, lyric no. 11, page-24-25। **63.** सं. रामवृक्ष बेनीपुरी, विद्यापति-पदावली, पृ. 145। **64.** द्र. वही, पृ. 137। **65.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 51। **66.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 9, Page 19। **67.** Ibid, lyric no. 9, page-20। **68.** Ibid, lyric no. 9, page-20। **69.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 51-52। **70.** द्र. वही, पृ. 53। **71.** द्र. वही, पृ. 53। **72.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 13, Page 28-29। **73.** Ibid, lyric no. 8, page-16-17। **74.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 43। **75.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 45, Page 95-96। **76.** Ibid, lyric no. 53, page-112-113। **77.** सं. रामवृक्ष बेनीपुरी, विद्यापति-पदावली, पृ. 131। **78.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 89। **79.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 158, Page 318। **80.** Ibid, lyric no. 52, page-101। **81.** Ibid, lyric no. 52, page-101। **82.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 73। **83.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 52, Page 111। **84.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 71। **85.** लेखक/संपादक - डॉ. त्रिभुवन शुक्ल, विद्यापति, पृ. 80। **86.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 96। **87.**

जयदेव-गीतगोविन्द, सं. डॉ. कपिला वात्स्यायन, पृ. 101 तथा संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 246। **88.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 116, Page 235। **89.** Ibid, lyric no. 128, page-258। **90.** Ibid, lyric no. 137, page-276-277। **91.** Ibid, lyric no. 136, page-274। **92.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 26। **93.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 110, Page 224। **94.** Ibid, lyric no. 100, page-204-205/lyric no. 112, page-227/lyric no. 113, page-229/lyric no. 114, page-231/lyric no. 115, page-233/lyric no. 118, page-238/lyric no. 121, page-245/lyric no. 122, page-247/lyric no. 99, page-202-203/lyric no. 123, page-248-249/lyric no. 125, page-252-253/lyric no. 132, page-266-267/lyric no. 151, page-304/lyric no. 154, page-310/lyric no. 155, page-312/lyric no. 156, page-314/lyric no. 159, page-321/lyric no. 160, page-322। **95.** Ibid, lyric no. 68, page-142। **96.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 63। **97.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 68, Page 142-143। **98.** लेखक/संपादक - डॉ. त्रिभुवन शुक्ल, विद्यापति, पृ. 114। **99.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 102, Page 208-209। **100.** Ibid, lyric no. 132, page-266-267। **101.** Ibid, lyric no. 43, page-92। **102.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 56। **103.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 43, Page 92। **104.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 57। **105.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 43, Page 92। **106.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 33। **107.** By Dr. B. Rajanikanta Rao, Muvvagopala padavali, Telugu lyrics of Kshetrayya, lyric no. 6, Page 12-13। **108.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 33। **109.** द्र. वही, पृ. 33। **110.** भट्टनायक, ध्वन्यालोकलोचन, पृ. 12। **111.** व्याख्याकार/लेखक-बी. रजनीकांत राव, अनु. गोरख पाण्डेय, भारतीय साहित्य के निर्माता-क्षेत्रय्या, पृ. 17। **112.** द्र. वही, पृ. 90। **113.** द्र. वही, पृ. 11। **114.** द्र. वही, पृ. 90। **115.** लेखक/संपादक - डॉ. त्रिभुवन शुक्ल, विद्यापति, पृ. 42। **116.** स्व. वारणसि राममूर्ति 'रेणु' आदान-प्रदान पत्रिका, पृ. 247 पर 'तेलुगु साहित्य के विद्यापति श्री क्षेत्रय्या' लेख। **117.** सं. श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, विद्यापति-पदावली, पृ. 148।

सचदेव कॉलोनी, 14 हरिद्वार रोड
देहरादून-248001 (उत्तराखंड)
मो. 8171155421

प्रकृति जीवन का स्त्रोत और उसका आधार है, प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा मानव जीवन की अनिवार्यता है।

माही का राजनीतिक इतिहास

(मलयालम उपन्यास 'मय्यषि पुषयुडे तीरंगलिल्' के विशेष संदर्भ में)

पूजा के पिल्लै

मलयालम के विभिन्न साहित्यकारों ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलायी है। उपन्यास इनमें से प्रमुख विधा है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर मलयालम के प्रसिद्ध उपन्यासकार एम. मुकुंदन कृत 'मय्यषी पुषयुडे तीरंगलिल' (मय्यषी नदी के किनारे) उपन्यास का विस्तृत मूल्यांकन करना प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य है। **बीज शब्द:** भाषा, साहित्य, विश्व साहित्य, भारतीय साहित्य, मलयालम साहित्य, मलयालम उपन्यास, मय्यषी नदी के किनारे, इतिहास, माही)। केरल, लक्षद्वीप और पुडुचेरी की राज्यभाषा, भारत की छह शास्त्रीय भाषाओं में से एक और उच्च कोटि के साहित्य को जन्म देनेवाली भारत की एक प्राचीन भाषा आदि रूपों में मलयालम भाषा ने भारतीय भाषाओं के बीच अपनी अलग पहचान प्राप्त कर ली है। डॉ. कल्पट्टा बालकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'मलयाला साहित्य चरित्रम्'(मलयालम साहित्य का इतिहास) में मलयालम भाषा के महत्व पर विचार करते हुए लिखा है : "मलयालम तीन करोड़ से अधिक केरल वालों की मातृभाषा है। 'लक्षद्वीप' की मुख्य भाषा भी मलयालम है। एक जीवंत व्यवहारभाषा के स्तर पर दक्षिण और उत्तर की कई स्थानीय विशेषताएँ भी मलयालम को प्राप्त हैं। मलयालम बोलने वाले लोग समस्त भारत में हैं। प्रवासी मलयाली भी कई लाख आते। मलयालम और केरल इन सबकी सांस्कृतिक चेतना की शक्तिशाली विरासत की सृष्टि करते है।"[1] चार प्रमुख द्रविड़ भाषाओं में से मलयालम अपनी साहित्यिक कृतियों को विकसित करने वाली अंतिम भाषा थी। फिर भी मलयालम साहित्य ने एक ऐमी परंपरा विकसित की जो स्थानीयता में निहित होने के बावजूद वास्तव में सार्वभौमिक है।

पाठकों की सबसे लोकप्रिय विधाओं में से एक के रूप में भी उपन्यास प्रसिद्ध है। मलयालम साहित्य भी इस क्षेत्र में अत्यंत संपन्न है। अनेक महत्वपूर्ण उपन्यासों का सृजन मलयालम साहित्य में हो चुका है। मलयालम के प्रसिद्ध उपन्यासकार एम. मुकुंदन द्वारा रचित 'मय्यषी पुषयुडे तीरंगलिल' (मय्यषी नदी के किनारे) (1974 ई.) इनमें से एक प्रमुख उपन्यास है। मय्यषी का इतिहास प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य विषय है। मलयालम साहित्य में आधुनिक भावबोध के आविर्भाव को स्पष्ट करने में प्रस्तुत उपन्यास की महत्वपूर्ण भूमिका है। डॉ. जोबिन चामक्काला ने 'मलयाला नोवल साहित्य माला' (मलयालम उपन्यास

साहित्य माला) नामक ग्रंथ में प्रस्तुत उपन्यास की आलोचना प्रस्तुत की है। उपन्यास का परिचय देते हुए उनका कहना है :- " 'मय्यषी पुपयुडे तीरंगलिल' एम. मुकुंदन के सबसे प्रख्यात उपन्यासों में से एक है। 1974 में प्रकाशित प्रस्तुत रचना मय्यषी नामक प्रदेश में हुए विदेशी शासन और उसके खिलाफ हुए मुक्ति संघर्ष की कथा प्रस्तुत करनेवाला काल्पनिक, ऐतिहासिक अभिलेख है।"[2] 1997 ई. में प्रमुख मलयालम-हिन्दी अनुवादक सुधांशु चतुर्वेदी ने नैशनल बुक ट्रस्ट के द्वारा 'मय्यषी नदी के किनारे' नाम से इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित भी किया है। तमिल, अंग्रेजी, फ्रेंच जैसी कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं में भी इस उपन्यास का अनुवाद हुआ है।

एम. मुकुंदन द्वारा रचित प्रस्तुत उपन्यास की पृष्ठभूमि पुडुचेरी संघ राज्य क्षेत्र में शामिल माही (मय्यषी) नामक एक छोटा भूभाग है। माही जिसे मलयालम में मय्यषी भी कहा जाता है, पूर्व में फ्रांसीसी लोगों के अधीन में था। वहाँ का शासन कार्य पूर्ण रूप से फ्रांसीसी अधिकारियों द्वारा संचालित हो रहा था। प्रस्तुत उपन्यास असल में माही के इस इतिहास से संबंधित है। डॉ. जोबिन चामक्काला आगे कहते हैं :-" 'मय्यषी पुषयुडे तीरंगलिल' उपन्यास का मूल्यांकन मय्यषी के स्थानीय या मौखिक परंपरा के काल्पनिक इतिहास के रूप में किया जा सकता है। कथा का केंद्र मय्यषी नामक एक छोटा प्रदेश है। ..... स्वतंत्रता-पूर्व मय्यषी पूर्ण रूप से सामंती मुखौटे से युक्त गाँव है। फ्रांसीसी उपनिवेश के हिस्से के रूप में उपलब्ध शिक्षा और आधुनिकीकरण ने वहाँ विज्ञान और प्रगति के द्वार खोल दिए। यह जनता में राष्ट्रवाद, स्वाभिमान और स्वतंत्रता की भावना पैदा करने में सक्षम था। इसके साथ स्वतंत्रता संग्राम के महान संघर्षों के लिए मय्यषी का समुदाय तैयार हुआ। वर्षों की लड़ाई के बाद ही फ्रांसीसी लोग मय्यषी छोड़ते हैं। स्वातंत्रोत्तर मय्यषी के सामाजिक जीवन की कुछ तस्वीरें प्रस्तुत करते हुए उपन्यास समाप्त होता है।"[3] प्रस्तुत कथन से यह स्पष्ट है कि इस उपन्यास को पूर्ण रूप से समझने के लिए उपन्यास की कथावस्तु के साथ-साथ उससे संबंधित इन ऐतिहासिक तत्वों पर भी ध्यान देना अनिवार्य है। इतिहास से सबंध रखने वाले प्रस्तुत उपन्यास को उसकी सम्पूर्ण अर्थवत्ता के साथ पाठकों तक पहुँचाना प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य है।

उपन्यास की कथावस्तु का आरंभ और अंत दोनों मय्यषी में होता है। शुरुआत में मय्यषी फ्रांसीसी लोगों की अधीनता में है। कुरम्बी अम्मा, फेलु अच्छन, दामु राइटर, कौसु अम्मा, दासन, चंद्रिका, कुंजनंदन मास्टर, पप्पन, उत्तमन, लेस्ली साहिब, मिस्सी, गस्तोन साहिब, आल्बेर साहिब, मूप्पन साहिब, दावीद साहिब आदि उपन्यास के प्रमुख पात्रों में से कुछ हैं। इनमें दामु राइटर और कौसु अम्मा का बेटा दासन केन्द्रीय पात्र है। पुडुचेरी से उच्च शिक्षा प्राप्त करके दासन घर लौटता है। वहाँ का फ्रांसीसी शासक दासन को उनके अधीन एक अच्छी नौकरी की पेशकश प्रदान करता है। लेकिन दासन अपने परिवारवालों की इच्छा के विरुद्ध उस नौकरी को अस्वीकार कर देता है और साथ ही फ्रांसीसी लोगों के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल होने का निश्चय लेता है। मय्यषी की पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी स्वतंत्रता के प्रति बिल्कुल भी सचेत नहीं थे और इसी कारण वे फ्रांसीसी शासन का समर्थन कर रहे थे। इनमें दासन के परिवार वाले भी शामिल थे। दासन की इन हरकतों के कारण बाद में वह परिवार से बाहर हो जाता है और जेल भी चला जाता है। कई घटनाओं के बाद उपन्यास के अंत में मय्यषी फ्रांसीसी अधीनता से मुक्त हो जाता है। उपन्यास के चरमोत्कर्ष में मय्यषी के स्वतंत्र होने और दासन की मृत्यु होने का दृश्य हम देख सकते हैं।

अगर हम इतिहास के पन्नों पर नजर डालें तो उपन्यास के कई अंशों को इसके साथ जोड़ सकते हैं।

जैसे कहा गया है, उपन्यास की पृष्ठभूमि आज के पुडुचेरी संघ राज्य क्षेत्र में शामिल माही (मय्यषी) नामक एक छोटा-सा प्रदेश है। भले ही यह पुडुचेरी संघ राज्य क्षेत्र का हिस्सा है, माही का केरल और उसके राजनीतिक इतिहास से बहुत गहरा संबंध है। जैसे नाम से ही स्पष्ट है, माही केरल की मय्यषी नदी के तट पर स्थित है। भौगोलिक दृष्टि से माही केरल से घिरा हुआ क्षेत्र है। माही के तीन हिस्से केरल के कन्नूर जिले से और एक हिस्सा कोषिक्कोड जिले से घिरा हुआ है। यहाँ की भाषा भी मलयालम है। 18 वीं सदी की शुरुआत में ही माही एक फ्रेंच औपनिवेशिक क्षेत्र बन गया था। फ़्रांसीसियों का पहला ठिकाना केरल के कन्नूर जिले में स्थित तलश्शेरी था। लेकिन इससे पहले ही ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कॉम्पनी ने इन इलाकों में अपना राज स्थापित कर दिया था। इसी कारण फ़्रांसीसी लोग वहाँ से जाने के लिए मजबूर हो गए थे। परंतु फिर वे माही में अपना प्रभुत्व कायम कर लेते हैं।

भारत सरकार द्वारा संचालित और राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र, माही द्वारा विकसित वेबसाईट पर माही के इतिहास के संबंध में बहुत सारी जानकारी दी गई हैं। उसमें इस घटना के संबंध में भी उल्लेख है :- "माही में फ़्रासीसियों का इतिहास 1721 में शुरुहुआ। जब अंग्रेज़ियों ने पश्चिमी तट पर अपना साम्राज्य स्थापित किया, तो उससे प्रेरित होकर फ़्रांसीसियों ने माही में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। केरल में उनका पहला ठिकाना तलश्शेरी था। ...... फ़्रांसीसियों ने चिरक्कल राजा और 'तलश्शेरी नाडुवाषि' श्री. कुरंगोत नायर के सहयोग से 1670 में तलश्शेरी में अपना किला बनाया। स्थानीय शासकों के समर्थन मिलने के बावजूद भी वे ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कॉम्पनी से नहीं लड़ सके। और फिर 1702 में उन्होंने पुन्नोल में एक गोदाम बनाया। पुन्नोल में असफल होने के कारण, 1721 में उन्हें माही में स्थानांतरित होना पड़ा।"[4] भारत को आज़ादी मिलने के बाद भी सात साल तक माही फ़्रांस के कब्जे में रहा। 16 जुलाई 1954 को माही स्वतंत्र हो गए और फ़्रांसीसियों ने माही को हमेशा के लिए छोड़कर चले गए। माही का यही इतिहास उपन्यास की कथावस्तु का आधार स्तम्भ है।

फ्रांसीसी उपनिवेश के अधीन होने के कारण बहुत सारे फ्रांसीसी लोग और उनके परिवार माही में रहते थे। प्रस्तुत उपन्यास में भी बहुत सारे फ्रांसीसी लोग हैं। लेस्ली साहिब, मिस्सी, गस्तोन साहिब, आल्बेर साहिब, मूप्पन साहिब, दावीद साहिब आदि इसका उदाहरण है। उपन्यास के बीच-बीच में वे फ्रेंच भी बोलते हैं। माही के सड़कों के नाम भी फ्रेंच में दिए गए थे। उपन्यास में यह 'रियूद रसिदाम्स', 'रियूद लग्लीस' आदि नामों से चित्रित किया गया है। तलश्शेरी से फ्रांसीसी लोगों के ऐतिहासिक संबंध के बारे में हम पहले से ही चर्चा कर चुके हैं। उपन्यास में अरमाँ साहिब का मलबार से आने और बाद में माही में बस जाने की कथा का उल्लेख है। तलश्शेरी में अपना वर्चस्व स्थापित करने में असफल रह जाने के कारण वे बाद में माही को अपने केंद्र के रूप में चुने थे। प्रस्तुत अंश वही ऐतिहासिक तथ्य से संबंधित है क्योंकि उत्तर केरल के जिलाओं को आमतौर पर 'मलबार' कहा जाता है। कन्नूर और तलश्शेरी इसी के अंतर्गत आते हैं। फ्रांसीसियों के माही में आने के बाद साम्यवाद के बीज वहाँ अंकुरित होने लगे थे। उपन्यास का नायक दासन और उनके साथी कुंजनंदन मास्टर, पप्पन, उत्तमन आदि इसी आदर्श से प्रेरित रहे। फ्रांसीसी कब्जे के खिलाफ लड़कर स्वतंत्रता की अवधारणा को सामने रखने वाले इन सभी पात्रों की विचारधारा साम्यवाद पर आधारित है। इस दौरान गाँधीवाद का प्रभाव भी माही के इतिहास में सशक्त थे। लेकिन गाँधीवाद के संबंध में अधिक जानकारी उपन्यास में उपलब्ध नहीं है।

21 अक्तूबर 1948 माही के स्वतंत्रता संग्राम के सबसे महत्वपूर्ण दिनों में से एक था। इस दिन माही के स्वतंत्रता सेनानियों ने मेयर के कार्यालय पर हमला

कर दिया और पुलिस स्टेशन, फ्रांसीसी शासक मूप्पन साहिब का बंगला आदि पर कब्जा कर लिया। उपन्यास के 23 वें अध्याय में इस घटना का वर्णन किया गया है। दासन और उसके साथी मय्यपी के स्थानीय लोगों की मदद से मेयर के कार्यालय पर कब्जा कर लेते हैं और वहाँ के दस्तावेजों को आग लगा देते हैं। उपन्यास में इसका वर्णन इस प्रकार दिया गया है :- "दंगे वालों ने कागजातों का सड़क पर ढेर लगाकर जला डाला। भास्करन मकान के ऊपर किसी तरह चढ़ गया। जमाने से वहाँ फहराने वाली पताका उखाड़कर नीचे फेंक दी। न जाने कहाँ से उसके हाथ में एक तिरंगा (झंडा) आ लगा। मेयर के दफ्तर के ऊपर तिरंगा (झंडा) फहराने लगा।"[5] मेयर के कार्यालय पर हमला करने के बाद वे मय्यषी के सभी सरकारी कार्यालयों पर कब्जा करके वहाँ के फ्रांसीसी झंडे को निकालकर भारतीय झंडा लगा देते हैं। अंत में मूप्पन साहिब के बंगला पर भी वे पहुंचते हैं:- "मय्यषी के लोगों ने सरकारी संस्थाओं को एक-एक करके कब्जे में कर लिया। अंत में वे बड़े फ्रांसीसी साहब के बंगले पर कोलाहल करते हुए जा पहुँचे। उनके कपड़े खून से लथपथ थे। उनके कंठों से आजादी के गीत मुखरित हो रहे थे। ये सब मय्यषी के इतिहास में घटित वास्तविक घटनाएँ हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के बीच मय्यषी में कई दंगे हुए। मय्यषी से कई लोग अपनी जान बचाने के लिए अपनी जन्मभूमि को छोड़कर चले गए। इन दंगों का चित्रण उपन्यास में भी देखा जा सकता है। उपन्यास के अंत तक आते-आते मय्यषी एक दंगा घर बन जाता है। उण्णि नायर, कुंजाणन, कुंजक्कन जैसे कई पात्र अपने परिवार वालों के साथ मय्यषी को हमेशा के लिए छोड़ने का निर्णय भी लेते हैं:- "वे बम बरसाएंगे, कुरम्बी !" कंधे पर गठरी रखे भागने वाले उण्णि नायर ने पुकारकर कहा। पीछे-पीछे कुंजाणन, कुंजक्कन और उनका परिवार। जो कुछ हाथ लगा, उसे गठरी में बांधकर जान बचाने के लिए वे भाग रहे हैं।[6] ये दृश्य मय्यषी की वास्तविकता से ही लिए गए हैं। बाद में फ्रांसीसी शासक दासन सहित कई स्वतंत्रता सेनानियों को देशद्रोही घोषित कर देते हैं और उन्हें देश निर्वासित भी कर देते हैं। दासन अंत में जेल भी जाता है।

उपन्यास का 32 वाँ अध्याय में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का वर्णन है। 27 अप्रैल 1954 को स्वतंत्रता सेनानियों ने माही के चेरुकल्लायी सैन्य शिविर पर कब्जा करने का प्रयास किया, लेकिन यह प्रयास विफल रहा और अच्युतन, अनंतन नामक दो सेनानियाँ शहीद हुए।[7] इस घटना का वास्तविक चित्रण उपन्यास में देखा जा सकता है :- "सत्ताईस अप्रैल, 1954 के दिन विमोचन आंदोलन के योद्धाओं की एक टोली ने बंदूकों को चुनौती देते हुए मय्यषी के एक हिस्से चेरुकल्लायी को विमुक्त करने की कोशिश की। फौज ने गोली चला दी। कॉमरेड अच्युतन और अनंतन शहीद हो गए।"[8] उपन्यास के 32 वाँ और 33 वाँ अध्यायों में माही स्वतंत्रता प्राप्त करने का चित्र दिया गया है। फ्रांसीसी शासक के बंगले पर अंतिम सार्वजनिक हड़ताल 14 जुलाई 1954 को हुआ था। उपन्यास में इसका चित्रण इस प्रकार हुआ है :- "चौदह जुलाई, 1954 के दिन अस्त्र-शस्त्र सहित अगणित विमोचन योद्धाओं का नेतृत्व करते हुए कणारन और उनके साथी मय्यषी की ओर बढ़े। छिपे-छिपे फिरने वाले स्वतंत्रता के समर्थक लोग भी एक साथ बाहर निकालकर इनके साथ हो लिए। जुलूस बनाकर वे लोग बड़े फ्रांसीसी साहब के बंगले की ओर चल पड़े। ऊपर अनगिनत तिरंगे (झंडे)। गूँज उठने वाले नारे।"[9] बाद की चर्चाओं के अंत में फ्रांसीसियों ने माही को आजाद छोड़ने और हमेशा के लिए वहाँ से चले जाने का फैसला लिया। 16 जुलाई 1954 को माही स्वतंत्र हो गए। माही स्वतंत्रता प्राप्त करने के साथ उपन्यास का अंत भी होता है।

मलयालम उपन्यासों के बीच 'मय्यषी पुषयुडे

तीरंगलिल' (मय्यषी नदी के किनारे) बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व रखता है। उपन्यासकार एम. मुकुंदन का जन्म मय्यषी में ही हुआ था। मय्यषी के निवासी होने के कारण वे मय्यषी के इतिहास से भी सुपरिचित थे। इसलिए वे अपनी रचना के साथ पूर्ण रूप से न्याय करने में सक्षम रहे। उन्होंने जो देखा, सुना और अनुभव किया उसे उपन्यास के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने में वे सफल हुए।

संदर्भ

1. डॉ. कल्पट्टा बालकृष्णन, मलयालम साहित्य का इतिहास (1982), मलयालम से अनुवाद डॉ आर. शशिधरन, स्टेट इंस्टिट्यूट ऑफ़ लैंग्वेजस, तिरुवनंदपुरम, केरल : पृ. 1। **2.** डॉ. जोबिन चामक्काला, 'मय्यषी पुषयुडे तीरङलिल्' (मय्यषी नदी के किनारे), डॉ. एम. एम. बशीर (सं), 'मलयाला नोवल साहित्य माला'-- भाग 2 (मलयालम) (2020), डी सी बुक्स, कोट्टयम, केरल : पृ. 1323। **3.** वही : पृ. 1326-1327। **4.** https://mahe.gov.in/history। **5.** एम मुकुंदन, मय्यषी नदी के किनारे (1997), मलयालम से अनुवाद सुधांशु चतुर्वेदी, नैशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली : पृ. 158। **6.** वही : पृ. 159। **7.** वही : पृ. 171। **8.** वही : पृ. 229। **9.** वही : पृ. 232।

शोध छात्रा
हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोच्ची, कलानसरी, एर्नाकुलम,
केरल-682022
ईमेल : poojakpillai1320@gmail.com
मो. : 8089110137

करुणा

दयालु भगवान ने एक बार विचार किया, 'मैं एक बार ऐसे नए प्राणी का निर्माण करूँ जो स्वर्ग और धरती के सभी प्राणियों से उत्तम हो।'

जब सत्य को यह बात मालूम हुई तो उसने कहा-- 'ऐसा प्राणी दंभ और बेईमानी फैलाकर आपको बदनाम करेगा।'

न्याय ने कहा-- 'वह स्वार्थी बनकर सबको सताएगा।' तब करुणा ने आकर कहा--'भगवन्! ऐसे प्राणी को अवश्य पैदा कीजिए। जब आपके सब दूत उसे सुधारने में असफल होंगे तो मैं उसे सुधारूंगी।'

करुणा की बात मानकर भगवान ने मनोवांछित प्राणी 'मानव' का सृजन किया।

सच है, सत्य व न्याय दंड दे सकते हैं - पर, धरती के लिए एक ही आश्वासन है-- वह है 'करुणा'। वह जब भी आ जाती है-- बुद्ध बन, गांधी बन, संत बन, पीर-फकीर बन-- तब आशा की ज्योति जगती है।

'केवल सत्य नहीं- क्षमा,
केवल न्याय नहीं- करुणा।'

यही करुणा-- सेवा बन, ममता बन, प्यार बन इस जलती धरती के लिए सावन की रिमझिम वर्षा बनती है।

'एको रसः करुण एव।'
'नीरस रसा न हो।
इसी से नीर देती हूँ।'

- पं. अक्षयचंद्र शर्मा

हिंदी कहानीकार 'क्षमा शर्मा' की कहानियों में नारी पात्रों का मनोविज्ञान

गीता

सृष्टि के निर्माण में स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। स्त्री कोमलता एवं सहृदयता की प्रतीक मानी जाती है क्योंकि। उसके मस्तिष्क में यह भाव जन्मजात भर दिया जाता है कि वह कोमलस्वरूपा है तथा पुरुष को बलशाली एवं तार्किक माना जाता कि वह मानसिक एवं शारीरिक रूप से हष्टपुष्ट है। स्त्रियों को सदैव से ही हर क्षेत्र में कम आंका गया है उन्हें जन्म से ही अधिकार तो दिए गए लेकिन साथ ही कुछ अंकुश भी लगा दिए गए इन अंकुशों का पालन वह सदियों से करती आ रही है इसका कारण अशिक्षा, लैंगिक असमानता का भाव, जागरूकता का अभाव, अज्ञानता आदि है। स्त्रियों के ऐसे अंकुशों की चर्चा साहित्य में भी बखूबी हुई है अधिकांश महिला कहानीकारों ने सामाजिकता, मनोविश्लेषणात्मकता का बारीकी से चित्रण अपनी कहानियों में किया है। लेखिका 'क्षमा शर्मा' ने भी अपनी कहानियों में नारी के सामाजिक सरोकार का, उसके प्रति रूढ़िवादी दृष्टिकोण एवं कुंठित मनो:स्थिति का बारीकी से अध्ययन किया है, एक स्त्री के मन में विचारों का जो द्वंद्व चलता है, वह कहीं न कहीं स्त्री की जो स्थिति होती है उस पर उसकी मानसिकता का प्रभाव होता है क्योंकि मनुष्य जिस परिवेश में पला-बढ़ा होता है उसका प्रभाव उसके मानसिक स्तर पर अवश्य पड़ता ही है। 'क्षमा शर्मा' ने अपनी कहानियों में नारी के हर स्तर, हर परिस्थिति का चित्रण कर उसे अपनी एक अलग पहचान बनाने के लिए प्रेरित किया है। **बीज-शब्दः** महिला कहानीकार, क्षमा शर्मा, नारी पात्र, रूढ़िवादी संवेदनशीलता, अंतर्जातीय विवाह, मातृऋण आदि।

क्षमा शर्मा' की अधिकांश कहानी स्त्री केंद्रित हैं उन्होंने स्त्रियों की समस्याओं का खुलकर वर्णन किया है तथा उन्होंने स्त्रियों की सामाजिक एवं मानसिक मनः स्थिति को बड़ी बारीकी से अपनी कहानियों में चित्रण किया है। उनकी 'खामोशी' कहानी में एक ऐसी स्त्री का चित्रण उद्धरित किया है जिसके इकलौते, जवान पुत्र की मृत्यु हो गई है लेकिन लोगों को लगता है कि उसके जीवन पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है, कोई यह नहीं जानता कि वह अंदर से कितनी टूट गई है परंतु वह लोगों को दिखाना नहीं चाहती कि वह अंदर ही अंदर कितनी घुट रही है किंतु लोग दूसरों पर अपने विचारों का मढ़ना नहीं छोड़ते हैं। समाज में लोगों की ऐसी कुंठित धारणा है कि यदि घर में कोई दुर्घटना हो जाए, किसी औरत के पति या

पुत्र की मृत्यु हो जाए तो उन्हें लगता है कि औरत दिन-रात रोती ही रहे लेकिन पुरुष पर इस घटना कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्या एक स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं है? क्योंकि समाज में यह रूढ़िवादिता है कि औरतें तो केवल आंसू बहाने के लिए ही होती हैं कोई यह नहीं जानता जब कोई आशा की किरण न हो जब चारों तरफ से निराशा ही निराशा हो तो व्यक्ति हिम्मत और धैर्य जुटा नहीं सकता लेकिन 'नेहा वर्मा' जो इस कहानी की मुख्य पात्र हैं वह बिल्कुल हिम्मत जुटाए हुए समाज के लोगों के सामने डटकर खड़ी हैं क्योंकि उसने कभी भी किसी से कोई शिकायत नहीं की, न लोगों से, न भगवान से, उसने किसी से भी कुछ नहीं कहा जिस कारण समाज के लोगों में, आस-पड़ोस के लोगों में संदेह बना हुआ है कि वह बिल्कुल वैसे के वैसे ही है जैसे कि पहले रहती थी। समाज की विडंबना रही है वह स्त्रियों को पुरुष के समान नहीं देख सकता घर में यदि कोई दुर्घटना हो तो स्त्री ही प्रभावित होती है पुरुष नहीं जबकि घटना दोनों के साथ हुई होती है।

क्षमा शर्मा की एक महत्वपूर्ण कहानी 'न्यूड का बच्चा' एक ऐसी स्त्री के जीवन का ऐसा संघर्ष है, जो कॉलेज जाने वाली जिद्दी लड़की से एक 'न्यूड' फोटो खिंचवाने वाली मॉडल के रूप में संघर्ष भरा जीवन तय करती है। आधुनिक समाज में जहां प्रेम-विवाह का प्रचलन है, वहीं दूसरी ओर समाज में कुछ तबकों में आज भी यदि लड़का प्रेम करे तो परिवार के सदस्यगण हंसी-खुशी विवाह करा देते हैं लेकिन यदि कोई लड़की प्रेम करे तो उसकी मां उसे लातों और घूसों से प्रताड़ित करती है इस कहानी में भी 'वीनू' की मां को उसके प्रेम पत्र मिलते हैं तो वह उसके साथ भी यही व्यवहार करती है--

"दुनिया की हर मां अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित करने के चक्कर में अपनी लड़कियों को खूब दबाती है। उन्हें खूब सताती है। आखिर औरत ही औरत की दुश्मन होती है ना! तो! क्या एक औरत ही दूसरी औरत को अच्छे से सबक सिखा सकती है।"[1] लेकिन 'वीनू' भी कहां हार मानने वाली थी उसने भी सोचा लिया था कि वह अपनी मां को सबक सिखाएगी और बिना सोचे-समझे अपने हाथ की कलाई में कंपास चुभो दिया, उसे लगता था कि वह मर जाएगी तो उसकी मां को अपनी गलती का एहसास होगा लेकिन होता उसके विपरीत है। न वह मरती है न ही उसकी मां का व्यवहार बदलता है। 'वीनू' को अब लगता है कि जो अपने प्रेम के लिए घर से भागा न हो वह प्रेम ही कैसा। इसलिए वह सब छोड़छाड़ कर अपनी प्रेमी के पास पहुंच जाती है जिस प्रेम के लिए वह पागल हो रही थी उसी प्रेमी को वह मुसीबत लगने लगी, वही प्रेमी उससे विवाह करने के लिए ही तैयार नहीं है अब उसका जीवन एक भयानक मोड़ लेता है उसका प्रेमी उसके माता-पिता और पुलिस के भय से उसे अपने मित्र 'सलीम' के यहां छुपा देता है और वह अभी विवाह करने के लिए भी तैयार नहीं था इसलिए 'वीनू' समाज एवं माता-पिता के भय से अपने प्रेमी के मित्र 'सलीम' जिसके घर में वह छुपी थी उसी के साथ वह विवाह कर लेती है। हमारे समाज में विवाह संस्था को एक स्त्री के लिए संरक्षण के रूप में जाना जाता है अब उसका जीवन सही चल रहा था लेकिन अचानक दुर्घटनावश उसके पति 'सलीम' की मृत्यु हो जाती है, यहां से उसका जीवन एक नई दिशा की ओर चलता है अब वह अपने छोटे से बच्चे को लेकर उस शहर को छोड़कर नहीं जाना चाहती थी जहां वह अपने सारे रिश्ते पीछे छोड़ कर आई थी इसलिए उसने अपने और बच्चे के जीवकोपार्जन के लिए 'न्यूड' फोटो खिंचवाना उचित समझा उसे लगा कि जीवन तो जीना ही है क्यों न अपने इस शरीर का उपयोग करूं--

"उसके सामने यह रहस्य खुल चुका था-- यह शरीर ही अपना है। यही सच है। चाहो तो इसके जरिए कुछ भी पा सकती हो।"[2] क्योंकि वह इस जीवन चक्र में अकेले जूझ रही थी तो उसने अपने शरीर को ही अपने जीविकोपार्जन का साधन बना लिया, एक

फोटोग्राफर ने उसे 'न्यूड' फोटो खिंचवाने के लिए अच्छी रकम देनी चाही वह कुछ देर सोचती है कि नैतिक-अनैतिकता यह सब ढकोसला है पहले उसके शरीर पर कभी माता-पिता का, कभी पति का हक रहा लेकिन अब वह आजाद है अब वह अपने शरीर का हर तरीके से उपयोग कर सकती है। लेखिका इस कहानी में यह बताना चाहती हैं कि विवशता के कारण एक स्त्री को क्या-क्या करना पड़ता है और एक स्त्री विवश हो जाए तो वह अपना शरीर का उपयोग कर अपना जीवन भी चला सकती है।

लेखिका 'मातृऋण' कहानी के माध्यम से बताना चाहती हैं कि संयुक्त परिवार में जो तंज एक स्त्री पर विवाह से पूर्व माता-पिता के द्वारा कसे जाते थे वहीं विवाह के बाद पति तथा पुत्रों के द्वारा कसे जाते हैं। लेखिका इस कहानी में एक प्रश्न साथ छोड़ जाती है कि वृद्धावस्था में एक स्त्री को अपने पुत्रों के साथ ही क्यों रहना पड़ता है? अपनी बेटी के साथ क्यों नहीं रह सकती और वह अपनी संपति को पुत्रों तक ही सीमित क्यों कर देती है बेटी को संपति में हिस्सा क्यों नहीं देती ऐसी रूढ़िवादी मानसिकता का वर्णन 'मातृऋण' कहानी में हुआ है। इस कहानी में दो स्त्रियों की मानसिकता का चित्रण किया गया है, एक वृद्ध मां और दूसरी उसकी विवाहिता बेटी। इस कहानी में एक बेटी विवाह के पश्चात अपनी मां के लिए कुछ करना चाहती है लेकिन समाज ने उसके चारों ओर एक ऐसा दायरा बना रखा है कि वह इसकी इजाजत नहीं देता और एक मां भी अपनी विवाहित बेटी को अपनी संपति का कुछ हिस्सा देना चाहती है लेकिन वह भी समाज के दायरे में रहकर नहीं कर सकती क्योंकि उसके हाथ भी सामाजिक बेड़ियों में बंधे हुए हैं। समाज में ऐसी विकृत मानसिकता है, बेटी अगर अपने माता-पिता की सेवा कर 'मातृऋण' उतारना चाहे भी तो वह नहीं उतार सकती इस कहानी में वृद्धावस्था में मां अपने पुश्तैनी घर में रहना चाहती है जिसकी दीवारों का ईंट-गारा उसने स्वयं अपने सिर पर उठाकर लाया था लेकिन उस घर को उसके पुत्र बेचना चाहते हैं भाइयों को मां का अकेला रहना एक राजनीति लगता है उन्हें लगता है कि मां उन्हें सबके सामने नीचा दिखाने के लिए अलग रह रही हैं-- "मैं असहाय-सी दिखती हूँ एक मनुष्य की असहायता नहीं किसी की लड़की होने की असहायता..... मां जिसकी हर चीज लड़कों तक चली गई..... संवेदना सिर्फ मेरे हिस्से तक बची क्यों?"[3] सदैव एक बेटी ही मां के लिए संवेदनशील क्यों बनी रहती है, मां के प्रति सब की संवेदनाएं खत्म हो गई है यहां तक कि मां की पोती भी उन्हें ताने मारती है लेकिन एक बेटी जो विवाह के पश्चात पराया धन हो जाती है या यूं कहीं जिसका दान कर दिया गया हो लेकिन वह मां से अपनी संवेदनाएं खत्म ही नहीं कर पाती भले ही उसे मां से भौतिक एवं आर्थिक रूप से जुड़ने नहीं दिया जाता लेकिन एक बेटी की भावनाएं कभी भी मरती नहीं है।

एक लड़की के जीवन में समझौता बचपन से ही चलता रहता है 'क्षमा शर्मा' की 'बेघर' कहानी ऐसी पढ़ी-लिखी युवा लड़की की कहानी है जो बचपन से खूब तेज-तर्रार थी लेकिन समय के साथ समझौता कर उसकी तर्रारता धीरे-धीरे खत्म सी हो गई या यूं कहें कि कहीं छिप सी गई। विवाह के पश्चात् क्या एक स्त्री अपने पारिवारिक जीवन में इतनी व्यस्त हो जाती है कि उसे अपनी शारीरिक बीमारी का ही पता नहीं लगता इस कहानी की नायिका 'विनी' बचपन से ही बहुत ही शरारती थी तथा उसका अपनी बड़ी बहन सुमन से बहुत जुड़ाव था, उसे लगता था कि वह ब्रेड अंडा खाकर ही अपना जीवन व्यतीत कर सकती है जैसा कि आज की पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी सोचती है ठीक इसी तरह वह भी सोचती थी लेकिन विवाह के पश्चात उसका पूरा जीवन बदल गया या यूं कह सकते हैं कि उसने अपने आप को पूरा बदल दिया था लेकिन तब भी उसके घरवालों को और 'विजय' के माता-पिता को यह लगता था कि विजय के साथ रहकर उसकी पूरी जिंदगी बदल गई है एक स्त्री यदि अपने आप को

बदल भी दे तो उसका श्रेय भी उसको नहीं जाता-- "कोई यह नहीं कहता था कि यह उसकी अपनी हिम्मत है कि बदल दिया है खुद को। लड़कियाँ खुद को बदल लें तो भी श्रेय कहीं और चला जाता है।"[4]

'विनी' ने अंतर्जातीय विवाह किया था उसके घरवाले और उसके 'विजय' के माता-पिता कोई भी तैयार नहीं था लेकिन उसने अपनी जिद के आगे किसी की नहीं मानी और बड़ी बहन के सहयोग से विवाह किया उसके माता-पिता ने तो उसे त्याग दिया था और ससुराल वालों ने भी बहुत गालियां दी-- "तू वेश्या है। तू कॉलगर्ल है? तूने हमारे कमाऊ पूत को फंसा लिया है। उसके रास्ते से हट जा नहीं तो तेरी शक्ल बिगाड़ देंगे।"[5] विवाह के बाद सब नार्मल हो गया लेकिन 'विनी' भूल नहीं पाई थी वह पति और बच्चों की सेवा में इस तरह तत्पर रहती है, विवाह से पूर्व आलस के कारण जो पूरा कमरा फैला रहता था उसके कपड़े ढ़ेर के रूप में अलमारी में पड़े रहते थे आज उसका घर पूरा व्यवस्थित रहता है वह हर एक काम को इतनी व्यस्तता से करती है कि उसके पास अपने लिए कोई समय नहीं है एक स्त्री का जीवन भी कितना विचित्र है कि उसका अपना कोई घर नहीं होता जहां जन्म लेकर पली-बढ़ी हो वहीं से उसका कन्यादान कर उसे पराया कर दिया जाता है तथा विवाह के पश्चात जिस घर में वह आई है वहां भी उसका कोई मूल्य नहीं है, 'ब्रेन हेमरेज' का शिकार होकर वह मृत्यु के कगार पर थी, उसकी बड़ी बहन सुमन उससे मिलने के लिए दौडी-दौड़ी आती है। लेखिका ने इस कहानी में एक बहन की मनोःस्थिति का भी वर्णन किया है जिसने अपनी छोटी बहन को एक बेटी की तरह पाला हो। जिस छोटी बहन 'विनी' को 'सुमन' ने बचपन से पलकों में बिठाकर पाला था वही आज मृत्यु की सेज पर अस्पताल के आई. सी. यू. के कमरे में लेटी हुई आखिरी सांस ले रही है। सुमन उसके सिरहाने बैठकर उसके पूरे जीवन चक्र को याद करती है, एक-दो दिन में ही 'विनी' की मृत्यु हो जाती है सुमन को बहुत आघात लगता है माता-पिता भी बहुत ही विलख कर रोते हैं-- "और कोई वक्त होता तो सुमन पिता को ढाढस बंधाने पहुंच जाती लेकिन इस वक्त वह मन ही मन कहती हैं, "सुन रही है विनी तू। पश्चाताप के लिए किसी का मरना जरूरी है।"[6]

लेकिन उसके पति पर इसका कोई फर्क नहीं पड़ता यहां तक कि वह कहता है कि बच्चों को भी बताने की क्या जरूरत है कि उनकी मां मर गई है, उन्हें कुछ बहाना बनाकर दोस्तों के घर भेज देते हैं तथा वह धीरे-धीरे समझ जाएंगे और उसकी मृत्यु के नौवें दिन ही उसने बेटे का जन्मदिन खूब धूमधाम से मनाया और छह माह के भीतर ही दूसरा विवाह कर लेता है बड़ी बहन 'सुमन' स्तब्ध है कि उसे इतनी जल्दी क्या थी एक औरत ने तो उसके लिए अपनी पूरी जिंदगी ही उस पर कुर्बान कर अपने आप को ही बदल दिया था और उसके पति से छह महीने भी नहीं रुका जा रहा है समाज के लोगों का यहां तक 'सुमन' के पति 'अनिरुद्ध' का भी कहना था कि उसने बच्चों की वजह से ही दूसरा विवाह किया होगा लेकिन उसने बच्चों को तो उसी समय हॉस्टल भेज दिया था। इस कहानी के माध्यम से लेखिका यह बताना चाहती है कि एक औरत के यदि पति की मृत्यु हो जाए तो वह कई वर्षों तक पश्चाताप करती रहती है लेकिन वहीं एक पुरुष की यदि पत्नी की मृत्यु हो जाए तो उसे एक सप्ताह भी नहीं लगता उसे भूलने में, क्या पुरुष में कोई संवेदनात्मक भावना नहीं होती, एक स्त्री क्यों? इतनी संवेगात्मक होती है।

"हर बार लौटना" कहानी में 'मिसेज सक्सेना' एक मां के रूप में और एक नौकरी पेशा करने वाली 'स्त्री' के रूप में किस प्रकार सोचती हैं उनकी क्या मनोःस्थिति रही है इसका चित्रण किया गया है वह जीवन भर अपने निजी जीवन में इतनी व्यस्त हो चुकी थी जिसके चलते उन्हें कभी अपने माता-पिता की ही याद नहीं आई। क्या एक स्त्री का जीवन यही होता है?

'मिसेज सक्सेना' एक नौकरी पेशा करने वाली स्त्री है जो अपने नौकरी के अंतिम चरण रिटायरमेंट के समीप है, जिस नौकरी में जाने के लिए वह संपूर्ण जीवन जद्दोजहद करती रही, वहीं से आज रिटायर होने के ख्याल से वह विचलित सी हो उठती हैं उन्हें लगता है कि अब उनका समय कैसे कटेगा? मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जब तक वस्तु उसके पास रहती है तो वह उसे महसूस नहीं करता लेकिन जब वस्तु नहीं रहती तो वहां दुखी हो जाता है। 'मिसेज सक्सेना' अब घर में बैठी अकेलेपन को महसूस कर अपने सपूर्ण जीवन को पीछे मुड़कर याद कर रही है कि-- "सारी घटनाएं अभी घटी लगती है सब कुछ अभी तो हुआ है चालीस साल पहले, नहीं कुछ वर्ष पहले, अभी इसी दिन, वह पट्टी-खड़िया लेकर स्कूल पढ़ने गई थीं आटे, हल्दी, धूप, सिंदूर, कनेर से पट्टी पूजती मां का दिपदिपाता चेहरा अभी तक याद है..... कैसे भूल सकती हैं।"[7] लेखिका यह बताना चाहती हैं कि स्त्री अपने निजी जीवन में इतनी व्यस्त हो जाती हैं कि उसे उनकी भी याद कभी नहीं रहती जिन्होंने उसे जन्म दिया, पालन-पोषण किया यह तो एक स्त्री के जीवन की दुर्भाग्यपूर्ण परंपरा रही है कि वह अपने परिवारिक जीवन में इतनी व्यस्त रहती है कि अपने माता-पिता को ही भूल जाती हैं जिस प्रकार आज 'मिसेज सक्सेना' के स्वयं के बच्चे ही उन्हें भूल गए हैं जिन्हें उन्होंने बड़े नाजों से पाला था आज वह अकेले में सोच रही हैं-- "अपने अकेलेपन का वरण खुद उन्होंने ही तो किया था तो अब आंसू क्यों बहा रही हैं बचपन की स्मृति भाभी, उन्हें ही नहीं भूल सकी।"[8] लेखिका यह बताना चाहती हैं जिस प्रकार 'उषा प्रियंवदा' की कहानी 'वापसी' में 'गजाधर बाबू' अपने जीवन में रिटायर होने के बाद बिल्कुल एकाकीपन महसूस कर दोबारा एक छोटी सी नौकरी में लग जाते हैं उसी प्रकार 'मिसेज सक्सेना' भी उसी रिटायर होने के ख्याल से एकाकीपन महसूस कर रही हैं।

"कस्बे की लड़की" एक ऐसी लड़की 'नीरू' की कहानी है जिसके जीवन में कुछ ऐसी घटना घटित हुई, जिसे चाहकर भी वह नहीं भुला पाती वह उस आदमी से बदला लेना चाहती थी जो इस घटना का जिम्मेदार है लेकिन ले नहीं पाती क्योंकि जब भी किसी लड़की के जीवन में कोई दुर्व्यवहार होता है तो वह परिवार की बदनामी के भय से, समाज के दायरे में रहकर क्यों कुछ नहीं बोल पाती। "इस समाज में कितनी लड़कियां ऐसी हैं कि जो अपने प्रति किए बुरे व्यवहार का बदला ले पाती है। बल्कि उनकी जुबान पर तो सौ-सौ ताले जड़ दिए जाते हैं और अधिक बदनामी की डर से, क्योंकि यहां बदनामी सिर्फ औरतों की होती है।"[9] किसी समय उसके भाई का मित्र 'सक्सेना' जो बहुत गरीब था, आई की मदद से ही वह, एक बड़ा आदमी बन पाया लेकिन उसने 'नीरू' के परिवार को छलने की कोशिश की तथा नीरु के चरित्र पर वह कीचड़ उछालने की कोशिश की उसने किसी कस्बे के अखबार में यह खबर छपवा दी कि रमनपुर की एक लड़की स्मगलिंग करते पकड़ी गई तथा उसका संबंध शहर के नामी गुंडों से हैं जिन्हें मिलने वह जेल भी गई थी क्योंकि उसने 'नीरु' का नाम फर्जी से जेल के रजिस्टर में दर्ज करवा लिया था। 'सक्सेना' की बड़े-बड़े नेताओं के साथ इतने अच्छे संबंध थे अगर वह कुछ भी गलत करता तो एक फोन कॉल से वह छूट जाता है। 'नीरू' उस भय से सहमी सहमी रहती है। वह इतनी भयभीत रहती है कि उसे दिन में भी लगता है कि उसके पीछे से कहीं 'सक्सेना' न आ जाए-- "आज भी लगता है मैं कहीं जा रही होऊंगी और सक्सेना कहीं रास्ते में प्रकट हो जाएगा कहेगा-- कहो बहन जी कैसी हो, तुमने भी विश्वास कर लिया कि मैं मर गया।"[10]

एक लड़की के जीवन में बदनामी का दंश मन में ऐसे बैठ जाता है कि वह उस भय से कितना भी निकलने की कोशिश करे लेकिन निकाल नहीं पाती क्योंकि वह समाज के ऐसे लोगों के समक्ष खड़ी है जहां लड़की के चरित्र में थोड़ा सा भी सवाल उठे तो

वह ऐसा दाग बन जाता है जहां कितनी भी कोशिश कर ले जिंदगी भर नहीं निकल पाती। "सक्सेना की स्मृति का दंश उसे फिर से बाँधने लगा था। लोग कहते हैं निराधार अफवाहें दूध के उबाल की तरह होती हैं जो अपने आप धीरे-धीरे ठंडी होती हैं, लेकिन नहीं, कुछ घटनाएं.... खासतौर से औरतों से संबंधी घटनाएं लोग हमेशा याद रखते हैं। वह नश्तर की तरह होती है जिन्हें कभी भी चुप हो जा सकता है।"[11] एक स्त्री के प्रति दुव्यवहार या एक स्त्री के चरित्र पर यदि दाग लगा हो तो समाज को एक ऐसा चाबुक मिल जाता है जिसे वह कभी भी घुमाकर स्त्री पर प्रहार कर सकता है।

"अगली सदी में एक लड़की" यह कहानी लेखिका की बड़ी विचित्र कहानी है जिसमें पढ़ी लिखी आधुनिक दो स्त्रियों की मानसिकता का वर्णन है। यहां होने वाली सास और उसकी होने वाली बहू की कहानी है जिनके विचारों में विरोधाभास है खुले विचारों को रखने वाली मां अपने होने वाली आधुनिक बहू से आपसी असहमत हैं क्योंकि दोनों ने आपस में एक ऐसी शर्त रखी थी कि बाद में रिश्ता ही टूट जाता है। 'बकुल' की मां चाहती है कि वह अपने पुत्र के विवाह में कोई दहेज न ले तथा विवाह भी बिल्कुल सादगी से मंदिर या शांति से घर में हो जिससे लड़की वालों का ज्यादा खर्चा न हो तथा वह चाहती हैं कि बेटे-बहू के साथ कोई आपसी कलह न हो इसलिए वह उन्हें अलग घर में रहने की सलाह देती हैं लेकिन लड़की होने वाली सास के विचारों से बिल्कुल सहमत नहीं है-- "वह फिर बोली आपने उनसे कहा कि शादी के बाद हमें अलग रहना होगा। लेकिन क्यों, मैं तो आपके साथ ही रहना चाहती हूं।"[12] लड़की की सोच 'बकुल' की मां से बिल्कुल विपरीत थी वह सोचती है अगर कोई दहेज दे रहा है तो किसी को लेने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए-- "लेकिन मेरा कहना तो यह है कि दहेज तो वह होता है जो मांगा जाए आप तो कुछ नहीं मांग रही लेकिन अगर माता-पिता दे सकते हैं और खुशी-खुशी देना चाहते हैं तो आप क्यों मना कर रही हैं वैसे भी लड़की को उनके प्रॉपर्टी राइट्स तो मिलनी चाहिए।"[13]

एक स्त्री दूसरी स्त्री के लिए हैरान है कि वह आधुनिकता के चक्रव्यूह में इस तरह फंस रही है कि उसे यह लगता है अगर मां-बाप विवाह में खर्चा कर रहे हैं तो उसे ले लिया जाए उसे यह नहीं लगता कि अगर समाज में किसी लड़की के मां-बाप इतना खर्चा न कर सके तो उसके बारे में सोचा भी जाए तथा उसकी इन बातों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

निष्कर्ष-- एक स्त्री के जीवन में संघर्ष उसके बाल्यकाल से ही शुरू हो जाता है और वह संघर्ष जीवनपर्यंत करती रहती है और इन्हीं संघर्षों के चलते ही वह अपना शरीर तक कुर्बान करने के लिए तैयार हो जाती है। जिस माता-पिता ने उसे जन्म दिया उन्हें ही वह अपने पारिवारिक कामकाज के लिए वह भूल जाती है या यह कहें कि वह अपने पारिवारिक जीवन में इतनी व्यस्त हो जाती है कि उन चीजों के लिए उन्हें समय ही नहीं मिलता। वह अपने को गुण तथा अपने परिवार एवं बच्चों को ज्यादा महत्व देने लगती है। समाज में कितनी भी आधुनिकता क्यों न हो जाए लेकिन स्त्री को अपने जीवन में संघर्ष करना ही पड़ता है यह संघर्ष उसका घर की चाहरदीवारी से लेकर समाज के खुले वातावरण तक करना पड़ता है और यह संघर्ष भौतिक जीवन के भरण-पोषण से लेकर देह बेचने के संघर्ष तक चला जाता है लेखिका ने अपनी कहानियों में इस संघर्ष को बड़ी मनोवैज्ञानिकता से खुलकर चित्रण किया है तथा वह सदैव स्त्रियों के लिए ही आवाज उठाती रही हैं।

संदर्भ

1. शर्मा क्षमा, नेम प्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण--2006, पृष्ठ संख्या--79। **2.** शर्मा क्षमा, नेम प्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण--2006, पृष्ठ संख्या-83। **3.** शर्मा क्षमा, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण--2008, पृष्ठ संख्या-58। **4.**

क्षमा शर्मा, नेम प्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ संख्या-59। **5.** क्षमा शर्मा, नेम प्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण--2006, पृष्ठ संख्या-62। **6.** क्षमा शर्मा, नेम प्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ संख्या--65। **7.** शर्मा क्षमा, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2008, पृष्ठ संख्या--216। **8.** शर्मा क्षमा, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2008, पृष्ठ संख्या--216। **9.** शर्मा क्षमा, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2008, पृष्ठ संख्या-128। **10.** शर्मा क्षमा, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2008, पृष्ठ संख्या-128। **11.** शर्मा क्षमा, रास्ता छोडो डार्लिंग, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2008, पृष्ठ संख्या-135। **12.** शर्मा क्षमा, नेम प्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ संख्या-161। **13.** शर्मा क्षमा, नेम प्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण-2006, पृष्ठ संख्या-162।

C/o प्रो. राखी उपाध्याय
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, हा. नं.-40
वर्कशॉप गली, कानपुर, देहरादून-248001
मो.-8447767559
ई-मेल : gpant560@gmail.com

क्रोध दु:खों की जड़

भगवान बुद्ध ने कहा-- 'भिक्षुओ ! जो पुरुष या स्त्री क्रोध करते हैं उनके शत्रुओं को सात बातों से खुशी होती है--

(1) मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु कुरूप हो जाए। जब क्रोध आता है तो उसका सुंदर मुख कुरूप होने लगता है। चाहे वह मल-मल कर स्नान करे या सुगंध का लेप करे।

(2) मनुष्य चाहता है कि शत्रु पीड़ा पाए। जब उसे क्रोध आता है तो वह चाहे बढ़िया बिस्तर पर लेटा हो, वह पीड़ा का अनुभव करेगा।

(3) क्रोध करने वाला चारों ओर दुश्मन खड़े कर लेता है। इससे उसकी सम्पन्नता जाती रहती है।

(4) क्रोध करने वाला अपने कमाए धन को गलत जगह खर्च करने लगता है। इससे उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। इससे उसके शत्रु को खुशी होती है।

(5) क्रोध करने वाले की नामवरी नहीं होती। वह अच्छा काम करे तो भी लोग उसे पसंद नहीं करते। कहते हैं-- वह बड़ा क्रोधी है। बदनामी से शत्रु को खुशी होती है।

(6) क्रोधी के पास मित्र टिक नहीं पाते। संबंधी, सगे संबंधी उससे दूर होते रहते हैं। इससे भी शत्रु को खुशी होती है।

(7) क्रोधी के मन, वचन, कर्म में मेल नहीं बैठता। इससे वह गड़बड़ काम कर परलोक भी बिगाड़ देता है। शत्रु को इससे खुशी होती है। क्रोध से मनुष्य का सर्वनाश होता है। गीताकार ने भी कहा, 'क्रोध से सम्मोह, सम्मोह से स्मृति नाश (अपने स्वरूप का विस्मरण), स्मृति नाश से सर्वनाश।'

'क्रोधाद्भवति सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।' (गीता : 2-63)

- पं. अक्षयचंद्र शर्मा

रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं मोहनदास करमचंद गांधी

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं महात्मा गांधी बीसवीं शती को समृद्ध करती दो महान विभूतियां है, विश्व जिनके प्रति अपना आदर और श्रद्धा भाव समर्पित करता है। ये दो महाप्राण, एक ने सम्पूर्ण विश्व को सत्य अहिंसा अस्तेय अपरिग्रह का पाठ पढ़ाया तो दूसरे ने सौन्दर्यानुभूति की दिव्यता भव्यता उदात्तता के दर्शन कराये। विश्ववंद्य गुरुदेव साहित्य के नोबल पुरस्कार से पुरस्कृत हुए, तो मोहनदास करमचंद गांधी दुनिया में पहचाने गए अहिंसा के लिए, साक्षात प्रतिरूप अहिंसा के। आधुनिक भारत के सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास में अपना विशेष स्थान प्रस्थापित करते नैतिक आदर्शों को राष्ट्रभक्ति देश प्रेम को सर्वोपरि मानते ये दो पुण्य-पुरुष। रवीन्द्रनाथ गांधीजी से आठ साल बड़े थे। उनका जन्म 7 मई सन् 1861 में हुआ और अस्सी वर्ष की दीर्घायु उन्हें प्राप्त हुई थी। दोनों में ही परस्पर एक दूसरे के प्रति श्रेष्ठ आदर भाव था। रवीन्द्रनाथजी ने गांधी को 'महात्मा' संबोधित किया तो 'गुरुदेव' उपाधि गांधीजी ने रवीन्द्रनाथ को बहाल की थी।

सन् 1915 में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से भारत आए थे। अपने बच्चों के लिए उत्तम आश्रम स्कूल की खोज में थे। उनके मित्र सी.एफ. एन्ड्रूज ने शांतिनिकेतन के बारे में उन्हें बताया था। गांधीजी के बच्चे उस समय दक्षिण अफ्रीका में फिनिक्स में पढ़ रहे थे। गांधीजी शांतिनिकेतन पहुंचे 17 फरवरी सन् 1915 को, सर्वप्रथम इनकी एक दूसरे से भेंट हुई। दो महान विभूतियों ने एक दूसरे के दर्शन किए। प्रसिद्ध लेखक काका कालेलकर ने उस प्रथम भेंट का वर्णन एक स्थान पर किया है। वे लिखते हैं 'चांदी जैसे चम-चम करते शुभ्र बाल, लम्बी दाढ़ी, भाव भरे नेत्र गंभीर दृष्टि, गौर वर्ण, आकर्षक परिधान रूप सौन्दर्य' और गांधीजी की घुटने से थोड़ी नीचे काठियावाड़ी किनार की सफेद धोती, बिना इस्त्री किया सफेद कुरता, सिर पर साफे जैसी टोपी, श्यामवर्णी अत्यंत सामान्य साधारण व्यक्तित्व। गांधीजी तो शांतिनिकेतन के उस रमणीय लुभावने प्राकृतिक रम्य परिसर को देख कर अपने आपको ही भुला बैठे। इस कदर प्रभावित हुए कि अपना दिल ही दे बैठे। रवीन्द्रनाथजी के वे क्रीत दास ही बन गए। मैत्री बढ़ती गई, विचारों का आदान-प्रदान होता रहा। जो जीवन के अंतिम क्षण तक बना रहा।

रवीन्द्रनाथजी से इस प्रथम मुलाकात के बाद गांधीजी पुनः कुछ समय के लिए दक्षिण

अफ्रीका बाबा अब्दुल्ल के काम के लिए चले गए थे। अफ्रीका में उन दिनों वर्ण विद्वेष का संघर्ष जोरों पर था। गांधीजी की इसमें सक्रिय भूमिका रही। उस कालावधि में रवीन्द्रनाथजी गांधी को पत्र लिखा करते थे। उनके कार्य का समर्थन करते हुए दिशा दर्शन भी करते और कार्य के लिए प्रोत्साहन भी देते थे। रवीन्द्रनाथजी गांधीजी के अहिंसापरक आंदोलन के पूर्ण समर्थक थे। भारत वापस आ जाने के बाद उनके चंपारन सत्याग्रह आंदोलन, गुजरात के खेड़ा में किये गए कृषकों के सत्याग्रह आंदोलन में गांधीजी को कामयाबी हासिल हुई थी, उसकी मुक्त कंठ से रवीन्द्रनाथजी ने प्रशंसा की थी, गौरवोद्गार कहे थे। गांधीजी रवीन्द्रनाथजी की रचनाओं का सम्मान करते थे। उनकी मौलिक प्रतिभा की सब समय प्रशंसा करते थे। सन् 1919 में गुजराती साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर विराजमान होने का उनसे आग्रह गांधीजी का ही था। उन्हीं के आग्रह पर उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया था। सन् 1920 में अहमदाबाद में हुए गुजराती साहित्य सम्मेलन के वे अध्यक्ष रहे। सन् 1921 में विश्वभारती की स्थापना हुई। कुछ समय बाद गांधी जी रवीन्द्रनाथजी से मिले थे। यह गांधीजी के साथ रवीन्द्रनाथ की दूसरी बार भेंट थी और सन 1940 में उनकी तीसरी भेंट हुई जो अंतिम भेंट सिद्ध हुई, दो पुण्यवान आत्माओं की।

आजादी के लिए की जाती प्रत्येक घटना के बारे में गांधीजी समय-समय पर रवीन्द्रनाथजी के साथ चर्चा किया करते थे। सलाह मशविरा होता था। उनके विचार जानने के लिए सब समय उत्सुक रहा करते थे। सन् 1919 में सार्वजनिक हड़ताल की घोषणा करने के पूर्व गांधीजी ने रवीन्द्रनाथ की राय जाननी चाही थी और रवीन्द्रनाथजी ने भी खुले दिल से अपनी बात कही थी। तीस मार्च सन् 1919 रोलैट एक्ट के विरोध में गांधीजी के नेतृत्व में सविनय कायदा भंग आंदोलन की शुरुआत हुई थी। 12 अप्रैल सन् 1919 को एक पत्र रवीन्द्रनाथजी ने लिखा था। उस पत्र में गांधी को उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन को अपनी सहमति जतायी थी।

एक बार एक प्रसिद्ध अखबार के संवाददाता रवीन्द्रनाथजी का साक्षात्कार लेने शांतिनिकेतन में उनके कुटीर में आए थे। उन्होंने सवाल किया था कि गांधीजी के बारे में आपके क्या ख्याल हैं। तब रवीन्द्रनाथजी ने जो जवाब दिया था वह महत्वपूर्ण और लक्षणीय है। उन्होंने कहा था - उनका अलौकिक व्यक्तित्व है। मैं उनका कायल हूं। उनकी कार्य की सफलता का रहस्य उनकी स्वार्थरहित काम करने की स्व त्याग कर कार्य करने का मूल रहस्य है। उनका औदार्य अद्वितीय है। उनका जीवन स्वार्थ-त्याग विहित। न उन्हें सत्ता का लोभ न प्रसिद्धि का। उनके बारे में तो मैं इतना ही कहूंगा कि भारत के राज सिंहासन पर उन्हें कोई बैठा देगा तो राज खजाने का सारा धन रत्न हीरे मानिक सभी बेच कर उस धन को वे गरीबों की सेवा में लगा देंगे। ऐसा यह बिरला अनोखा, निरपेक्ष वृत्ति का मन से सरल और मृत्यु से भी न डरने वाला, बोलपुर में कुछ दिन वे आकर रहे थे। तब से मैंने उन्हें निकट से देखा है। त्याग और निर्भय वृत्ति का यह पुरुष बालक जैसी निरागस वृत्ति का है। सत्य ही उनका संगी साथी है।

ऐसी ही एक घटना मुझे सुनाई थी श्री हेमन्त तरफदारजी ने। वे शांतिनिकेतन में लॉजिक पढ़ाते थे। उन्होंने बताया था कि गांधीजी एक बार बोलपुर में ठहरे थे। उनकी आदत थी, वे रोज प्रातः टहलने जाया करते थे। एक दिन रवीन्द्रनाथजी ने कहा 'ठहरिये मैं भी आपके साथ चलता हूँ।' यह कहते हुए वे अन्दर चले गए। पांच, दस, पंद्रह-बीस मिनट हो गए। गांधीजी उनका इन्तजार करते खड़े थे। वे तो समय के पाबंद मन ही मन झुंझला रहे थे। बीस मीनट बाद सज धज कर रवीन्द्रनाथजी बाहर आए। बोले, 'चलिए।' गांधीजी तो मन ही बौखलाए हुए थे। चिढ़ते हुए बोले 'इतना सजने संवरने की क्या कोई जरूरत थी। अब इस उम्र में कौन आपकी ओर देख

रहा है। रवीन्द्रनाथजी शान्त गंभीर स्वर में बोले, मुझे ठीक-ठाक सजा न देख, देखने वाले को वेदना होगी और सजा संवरा से मन को प्रसन्नता प्रफुल्लता होगी। कुरूपता हिंसा है और सुन्दरता अहिंसा।' जीवन भर अहिंसा की पूजा करने वाला यह पुजारी हिंसा और अहिंसा की इस व्याख्या को सुन कर चकित रह गया। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' त्रिसूत्री भारतीय संस्कृति का आदर्श है। उसका प्रथम सूत्र है सत्यम। जिसका संबंध मानवी विचार शक्ति से है। दूसरा है शिवम्। जिसका संबंध मानव की विचार शक्ति से है और तीसरा है सुन्दरम्। यानी सौन्दर्य जिसका संबंध मानवी भावना शक्ति से है। मानव की विचार शक्ति अथवा कर्तृत्व शक्ति दोनों का वस्तुनिष्ठ तर्कसंगत मूल्यमापन संभव है पर सौन्दर्य को नापना तौलना आंकना सरल नहीं है, कारण वह व्यक्ति परक है। चण्डीदास को रामी धोबन में सौन्दर्य के दर्शन हुए थे। सत्यं शिवं और सुन्दरम् की त्रयी में मनुष्य जीवन की तीन मूलभूत क्षमताएं साकार होती हैं- विचार, कर्तृत्व और भावना। गांधीजी का विशेष आग्रह सत्य और शिवं पर था तो रवीन्द्रनाथजी का सौन्दर्य पर। रवीन्द्रनाथजी की असीम भक्ति थी गांधीजी पर। वे उनका सम्मान और आदर तो करते ही थे साथ ही उनकी पैनी नजर उनकी गतिविधियों पर होती थी। गांधीजी ने येरवडा जेल में अनशन शुरू कर दिया था। उसकी खबर जब रवीन्द्रनाथजी को मिली तब वे बड़े अस्वस्थ हो गए। बहत्तर वर्ष की आयु में शरीर बुहत साथ नहीं दे रहा था फिर भी वे पूणे में येरवडा जेल में पहुंचे थे। देखा, गांधीजी रवीन्द्रनाथ का ही एक भक्ति गीत गुनगुना रहे थे। वह गीत था- "जीवन जखाय शुकिये जाय करुणाधाराय एशो। शकल माधुरी लुकाये जाय गीत सुधारशे एशो" अर्थात् जब जीवन रस सूख जाता है, करुणाधार रसधारा बन तुम आओ। सकल माधुरी जब लुप्त हो जाय तब गीत सुधारस बन तुम आओ।

गांधीजी ने रवीन्द्रनाथजी से यही गीत गाने की प्रार्थना की और रवीन्द्रनाथजी ने वह गीत गाया भी। जीवन में अनेक कठिन संघर्षों के अवसर पर वे उनके साथ परछांही जैसे बने रहे। उन्हें संबल देते। धीरज के चार शब्द कहते। वे यह जानते थे कि कठिन परिस्थिति में ही आदमी को सहारे की पीठ पीछे खड़े रहने की जरूरत होती है। कालान्तर में जब शांतिनिकेतन पर आर्थिक संकट के बादल मंडराने लगे थे तब रवीन्द्रनाथजी अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न कर उस संकट से उबरने के लिए धन संचय करने हेतु अमेरिका गए थे। गांधीजी ने उन्हें लम्बी यात्रा न करने का प्रेमपूर्वक आदेश दिया था। इतने पर ही वे रुके नहीं तो उन्होंने अपने एक धनाढ्य दोस्त की सहायता से शांतिनिकेतन पर चढ़े कर्ज का भुगतान भी कर दिया। यह था एक दूसरे के प्रति सुहृद भाव। सन् 1940 के दौरान रवीन्द्रनाथजी ने गांधी को शांतिनिकेतन का पदभार स्वीकारने की प्रार्थना की थी। गांधीजी ने उन्हें आश्वस्त भी किया था पर वह हो नहीं पाया।

दोनों की राष्ट्र भक्ति तो आकाश छूती थी। भारत की संस्कृति का जाज्वल्य अभिमान दोनों को था। अंग्रेजी सभ्यता खान-पान, रहन-सहन का अन्धानुकरण करते वर्ग के प्रति उनके मन में रोष-क्रोध भाव था। एक तरह की घृणा थी। स्व-संस्कृति से ही हमारा पुरुत्थान संभव है। उनका विश्वास था कि सांस्कृतिक पुनरुत्थान ही भारत की आजादी की पहली सीढ़ी है। रवीन्द्रनाथजी तो अपने साहित्य, कथा, कविता, नाटक, संगीत के द्वारा पूरे जोर-शोर से इस काम में जुटे हुए थे। बंगाल के विभाजन से वे क्षुब्ध थे। सन् 1920 में कलकत्ते में हुए सांप्रदायिक दंगे के वे भुक्तभोगी थे। फूट डालो और राज्य करो की नीति से दोनों ही राष्ट्र भक्त क्षुब्ध ते। जलियां वाला बाग हत्या कांड से ही क्षुब्ध होकर उन्होंने सरकार द्वारा बहाल की गई पदवी सम्मान 'सर' लौटा दिया था। इस परिस्थिति से उद्विग्न होकर ही तो रवीन्द्रनाथजी ने धर्ममोक्ष कविता लिखी थी।

समाज द्वारा अवहेलित उपेक्षित तिरस्कृत पद-

दलित पिछड़े वर्ग के प्रति दोनों ही अत्यधिक संवेदनशील थे। सन् 1910 में लिखी गई कविता 'हे मोर दुर्भाग्येर देश' और सन् 1976 में प्रकाशित बहिष्कृत जाति व्यवस्था पर प्रहार करती कविता आज भी प्रासंगिक है। शांतिनिकेतन में भोजन के लिए स्पृश्य और अस्पृश्य की अलग-अलग पंक्तियां होती थी। गांधीजी ने आग्रह पकड़ा और अस्पृश्य और स्पृश्य पंक्ति बन्द करवा दी जो आज भी बनी हुई है।

सन् 1901 में रवीन्द्रनाथजी ने शांतिनिकेतन की स्थापना कर, उनके मन में शिक्षा का जो रूप आनंददायी शिक्षा पद्धति थी उसे साकार किया। सन् 1921 में उसे अन्तर्राष्ट्रीय विद्यापीठ विश्वभारती का सम्मान प्राप्त हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में अपूर्व योगदान है। गांधीजी ने सन् 1915 में रवीन्द्रनाथजी द्वारा शुरू किये गए 'ग्राम शिक्षा शाला' को भेंट दी थी और उसी प्रकार के स्कूल की शुरुआत वर्धा में की परन्तु रवीन्द्रनाथजी गांधीजी के इस विचार से एकमत नहीं थे कि छात्रों द्वारा बनाई गई वस्तु की बिक्री कर उस पैसे से शिक्षकों को वेतन दिया जाय पर दोनों के विचार इस बात पर एक थे कि अंग्रेजी सरकार की सहायता लिए बगैर राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र खोले जायें। आनंददायी शिक्षा पद्धति को आदर्श मान कर गांधीजी ने साबरमती में स्कूली शिक्षा स्व-भाषा स्व-संस्कृति स्वदेश जीवन पद्धति को छात्र अपनाएं। इस प्रकार की शिक्षा पद्धति की शुरुआत की। आधुनिक भारत के नवनिर्माण में विशेष स्थान रखते थे ये विंश शती के महामेरू। आदर्श महान विभूतियाँ, एक राजनीति के प्रांगण के पुरोधा वीर प्रहरी तो दूसरा साहित्याकाश का रवि। अपनी प्रतिभा की सहस्त्र किरणों से कविता तथा उपन्यास नाटक चित्रकला संगीत कला को नव प्रकाश देता रहा है। मनेर आनंद और आत्मार शांति हैं गांधीजी और रवीन्द्रनाथीजी।

डॉ. विद्या केशव चिटको
बंगला नं. 8 यमाई अक्षर सोसाइटी
समर्थनगर, नासिक-422005
मो. 9527313387

संत दादू : मूल दस्तावेजों में

पिछले दिनों ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, श्रीधाम गोदा विहार मन्दिर, वृन्दावन के शोध संदर्भ ग्रंथागार हेतु भक्ति साहित्य के शीर्षस्थ अध्येता श्रद्धेय श्रीब्रजेन्द्र कुमार जी सिंहल द्वारा अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवादित ग्रंथ 'संत दादू : मूल दस्तावेजों में' भेंट में प्राप्त हुआ, जो हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयागराज से प्रकाशित हुआ है।

यह ग्रंथ संत दादू दयाल के जीवन वृत्त का सर्वाधिक प्राचीन स्रोत 'दादू जनमलीला' पर एकाग्र है। दादू जनमलीला ब्रजभाषा में रचित जीवनीपरक काव्य ग्रंथ है जिसे संत दादू के अन्तेवासी शिष्य जनगोपाल द्वारा रचा गया था। ग्रंथ का संपादन सुप्रसिद्ध विदेशी विद्वान प्रो. विनान्त एम. कलेवर्ट ने पाण्डुलिपियों के आधार पर मूल पाठ व उसका अंग्रेज़ी अनुवाद 'दी हिन्दी वाइयोग्राफी ऑफ दादू दयाल' को सन् 1988 ई. में प्रकाशित किया था। ग्रंथ के अंग्रेजी में होने के कारण संत साहित्य के प्रेमी एवं अध्येता इसका उतना लाभ ना ले सके। अब श्री ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल जी के सद्प्रयास से दुर्लभ अभिलेखीय महत्व का ग्रंथ हिंदी में सर्वसुलभ हो सका है।

ग्रंथ के हिंदी अनुवाद के प्रकाशन में श्री ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल जी की भूमिका केवल अनुवादक तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उससे कहीं ज्यादा है। उन्होंने दादू जनमलीला की विक्रम संवत् 1660 (सन् 1603 ई.) की पाण्डुलिपि संपादक प्रो.कलेवर्ट को उपलब्ध करायी। यह ग्रंथ की सब से प्राचीनतम पाण्डुलिपि है; क्यों कि विक्रम संवत् 1660 में ही संत दादू का निधन हुआ था। इसलिए उक्त पाण्डुलिपि का दुर्लभ दस्तावेजी महत्व हो जाता है। पाठ शोधन हेतु सिंहलजी ने संपादक को ग्रंथ की एक अन्य प्राचीन पाण्डुलिपि विक्रम संवत् 1700 (सन् 1643 ई.) की भी उपलब्ध करायी, जो हमारे यहाँ ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, श्रीधाम गोदा विहार मन्दिर, वृन्दावन के गुटके में संगृहीत है। मानो एक तरह से कहा जाये तो

अनुवादक ने ग्रंथ को फिर से संशोधित कराया और हिंदी अनुवाद में अपनी महत्वपूर्ण टिप्पणियों को जोड़ा जिससे ग्रंथ के अंग्रेज़ी संस्करण से यह हिंदी अनुवाद बहुत अधिक मूल्यवान बन गया है। इस संदर्भ में सम्पादक प्रो. विनान्त एम .कलेवर्ट ने स्वयं लिखा है- 'सन् 1988 में प्रकाशित दी हिन्दी वायोग्राफी ऑफ दादूदयाल का सन्त दादू: मूल दस्तावेजों में मात्र अनुवाद ही नहीं, उससे भी कहीं अधिक अच्छा हिन्दी भाषा में अनुवाद है जिसको श्री ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल ने किया है। पूर्ववर्ती समालोचनात्मक संस्करण (1988 ई.) का मूल पाठभाग अब नये संस्करण में अपेक्षाकृत अधिक प्राचीनतम हस्तलेखाधारित है और जहाँ-जहाँ आवश्यक हुआ है, वहाँ-वहाँ कठिन और संशयात्मक स्थलों के अनुवादों और स्पष्टीकरणों को प्रामाणिकता सहित सुधारा गया है'।

ग्रंथ संत दादू दयाल के प्रमाणिक जीवन वृत्त के साथ साथ निर्गुणभक्ति परम्परा की दुर्लभ शोध सामग्री से परिपूर्ण है। विभिन्न पाण्डुलिपियों से स्पष्ट होता है कि दादू की सबसे शुरूआती जीवनी (जनगोपाल कृत दादूजनमलीला) इसके बनने के बाद बहुत प्रारंभिक समय में ही परिवर्तित की जाने लगी व बाद की पाण्डुलिपियों में पाठ को बढ़ाया भी जाने लगा।

प्राचीन पाण्डुलिपियों से कैसे सावधानी पूर्वक पाठ संपादन किया जाये, इस विषय के अध्येताओं हेतु तो ग्रंथ का यह समालोचनात्मक संस्करण आदर्श प्रारूप ही बन गया है जिस में पंथायी क्षेपकों और पाठभेदों का दिलचस्प खजाना है। अधिकांश बढ़ा हुआ पाठ प्रशंसात्मक व चमत्कार बताने वाला है।

परवर्ती जीवनियाँ अधिक विवरण जोड़ती हैं जो स्पष्टतः मौखिक परम्परा में पली बढ़ीं। ये अधिक सूचनात्मक तथ्य भारतीय आदर्शों, जो संतों के आचरण से सम्बद्ध हैं, को प्रमाणित करते लगते हैं। ये आचरण चमत्कार उत्पन्न करने से सम्बद्ध हैं जो अपने पाठकवर्ग को प्रभावित कर सकने में समर्थ हैं यथा बादशाह अकबर को भी।

दादू की शुरूआती जीवनी में, हम ब्राह्मणत्व की ओर झुकाव की सूचना पाते हैं। यद्यपि दादू स्वयं जोर देकर कहते हैं कि जाति महत्त्वपूर्ण नहीं है। पंथ के परवर्ती शिष्यों ने उनकी (संभवतः) मुस्लिम जाति व मुस्लिम गुरु को छिपाने का प्रयत्न किया है और धुनिया (रूई धुनने वाला) से सम्बद्ध होने के बारे में एक स्पष्टीकरण की नई सृष्टि की है।

जन गोपाल दादू जनम लीला में अपने गुरु दादू दयाल के जन्म से लेकर स्वर्गवास तक की कुछ प्रमुख घटनाओं का उल्लेख विक्रमी संवत् में करते हैं। कालक्रम के प्रति इतना सचेत होने के कारण से उनकी रचना दादू जनम लीला ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व की बन जाती है। कुल मिलाकर यह भक्तों से लेकर अध्येताओं तक के लिए आवश्यक एवं पठनीय ग्रंथ है।

जन गोपाल के संदर्भ में भ्रम

हाल ही में जन गोपाल के काव्य पर केन्द्रित एक और पुस्तक राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई 'जन गोपाल' संत दादू के जीवनीकार जिसके लेखक हैं भारतीय मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के विदेशी इतिहासकार प्रो. डेविड लोरेंजन एवं हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल। प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल ने इस के संबंध में कुछ दिन पूर्व फेसबुक पोस्ट भी लिखी थी। वे अपनी पोस्ट में जन गोपाल के लिए लिखते हैं। संत दादू 1585 ई. में अकबर के आमंत्रण पर फतेहपुर सीकरी गये। सीकरी के मार्ग में ही उन्होंने जन गोपाल को अपनी शरण में लिया। इस समय जन गोपाल केवल बारह वर्ष के थे। इसके बाद वे अत्यंत प्रिय शिष्य के तौर पर, दादूजी के निधन (1603 ई.) तक उनके साथ ही रहे। जनम लीला में स्वयं जन गोपाल ने यह लिखा भी है कि वे सीकरी में दादू से मिले और अकबर दादू मिलन की घटना के वह प्रत्यक्षदर्शी थे। लेकिन बिना ठीक से विचार किये प्रो. लोरेंजन एवं प्रो. अग्रवाल दोनों यह मानते हैं कि सीकरी में दादू से मिलने के समय जन गोपाल की

आयु मात्र 12 वर्ष की थी। जन गोपाल की आयु को लेकर यह बड़ी भूल आश्चर्यचकित करती है। जन गोपाल पर पुस्तक लिखने वाले दोनों विद्वान भ्रम में हैं।

जब कि तथ्य यह कि जब जन गोपाल सीकरी में दादू से मिले, तब वे किसी संन्यासी के प्रभाव में 12 वर्ष से घूम रहे थे। ना कि उनकी उस समय आयु 12 वर्ष की थी। दोनों विद्वानों ने जन गोपाल के संदर्भ में ठीक से जानकारी नहीं की और चूक गये। लगता है कि उन्हें यह भी नहीं ज्ञात कि जन गोपाल दादू के शिष्य होने से पहले ही अपनी जिकड़ी रचनाओं के कारण इतने ख्यातनाम हो गये थे कि नाभादास अपनी प्रसिद्ध रचना भक्तमाल जिसका रचनाकाल विक्रम संवत् 1650 से 1660 के लगभग है; में उनका उल्लेख कर चुके थे। जन गोपाल के लिए भक्तमाल में नाभादास ने छप्पय लिखा है -

भक्ति तेज अति भाल संत मंडल को मंडन।
बुधि प्रबेस भागवत ग्रंथ संसय को खंडन।।
नरहड़ ग्राम निवास देस बागड़ निस्तार्यो।
नवधा भजन प्रबोध अननि दासन ब्रत धार्यो।।
भक्त कृपा बांछी सदा पद रज राधालाल की।
संसार सकल ब्यापक भई जकरी जन गोपाल की।।

जन गोपाल के जिकरी (पंद्रह मात्रा के) छंद सारे संसार में व्यापक हुए। भक्ति के प्रताप से उनका ललाट अत्यंत देदीप्यमान है। आप संतों की सभा के भूषण हैं। आपकी प्रखर बुद्धि में भागवत महापुराण का प्रवेश है और भागवत में आपकी प्रखर बुद्धि प्रविष्ट हो गई है। सर्वदा आप उसका अनुशीलन करते रहते हैं। भागवत के एवं अन्य भक्ति ग्रंथों के संबंध में सभी सन्देहों का, कुतर्कों का खण्डन कर देते हैं। आप नरहड़ ग्राम के निवासी हैं। आपने संपूर्ण बागाड़ प्रान्त का उद्धार किया है। आप भागवत में कही गई नवधा भक्ति के अनुसार भजन करते हैं। इस का सम्यक प्रकार से आपको अनुभव है। अनन्य भाव से भगवान् एवं भक्तों के दास्य व्रत को आप दृढ़ता पूर्वक निभाते हैं। भगवद्भक्तों की एवं श्रीराधा नन्दलाल की चरणरज को प्राप्त करने की आपकी सदा इच्छा रहती है।

जन गोपाल कृत दादू जनम लीला के प्रारम्भिक छंदों से एवं भागवत पुराण के पात्रों पर आधारित उनकी अन्य काव्य कृतियों से तथा वैष्णव भक्तिपरक जिकड़ियों से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि नाभादास किसी अन्य जन गोपाल का नहीं, दादू के शिष्य बनने से पूर्व इन्हीं जन गोपाल के जीवन का उल्लेख कर रहे थे।

श्री सिंहलजी के लिए आभार शब्द सदैव की तरह बहुत छोटा पड़ जाता है। श्रद्धेय सिंहलजी के महान श्रम को मैं सादर नमस्कार करता हूँ!

लक्ष्मीनारायण तिवारी
सचिव : ब्रज संस्कृति शोध संस्थान,
श्रीधाम गोदा विहार मन्दिर, वृन्दावन

पिया की नगरी चार कदम

मुझे बड़े भाई डॉ. हिंगलाजदान रतनू जी, जो कि अधिकारी हैं राजस्थान जनसम्पर्क कार्यालय कोलकाता और साथ में पर्यटन विभाग कोलकाता के भी! आपने मुझे अपने बीकानेर प्रवास के दौरान अपने निवास पर एक पुस्तक 'पिया की नगरी चार कदम' सप्रेम भेंट की! पाठक धर्म का निर्वहन करते हुए पूर्ण न्याय करते हुए पुस्तक को पूरा पढ़ा जो कि 134 पृष्ठ में मुद्रित है और प्रकाशक है शैली पब्लिकेशन, 14 चाँदनी चौक स्ट्रीट, कोलकाता-700 072! पुस्तक की छपाई बॉन्ड पेपर पर सख्त जिल्द और एक बहुत की कलात्मक आवरण के साथ बिना किसी त्रुटि के छपी है जो कि पाठक के पठन की धारा में कोई बाधा नहीं उत्पन करती! सो प्रकाशक जी को आभार, मुझ आम पाठक की तरफ से!

पुस्तक का शीर्षक है 'पिया की नगरी चार कदम' और पुस्तक के लेखक हैं श्री प्रमोद शाह नफीस साहब। 'पिया की नगरी चार कदम' काव्य कृति के लेखक श्री प्रमोद शाह नफ़ीस साहब ने अपने बचपन

से अभी तक के जीवन के सफर और संस्मरण के साथ रिश्तों को काव्य रूप में बुना है! आप ने जिक्र किया है अपने काव्य में बचपन के अपने गाँव झुंझनू का और वर्तमान के कोलकाता निवास का और इस बीच मन के उतार-चढ़ाव का भी!

पुस्तक 'पिया की नगरी चार कदम' की भूमिका लिखी है डॉ. बाबूलाल शर्मा जी ने, आप संपादक हैं 'वैचारिकी' द्वैमासिक शोध पत्रिका के जो कोलकाता से प्रकाशित होती है! आप ने पुस्तक में पृष्ठ संख्या 5 से पृष्ठ संख्या 18 तक में भूमिका लिखी है! भूमिका में आप ने पुस्तक को चार खण्डों में विभक्त और व्याख्यायित किया है, पुस्तक के चार खंडों के अनुरूप! आप ने अपनी लम्बी भूमिका से पाठक के लिए एक पुस्तक में दो पुस्तक की अनुभूति करवाई है, गद्य और पद्य के रूप में! सो आप को भी साधुवाद, इस प्रकार की लम्बी भूमिका के लिए, मैंने इतनी लम्बी भूमिका पहली बार ही पढ़ी है किसी पुस्तक में सो ये एक नया अनुभव भी हुआ, किसी पुस्तक में इतनी विवेचनात्मक भूमिका होने का!

पुस्तक 'पिया की नगरी चार कदम' लेखक श्री प्रमोद शाह नफ़ीस साहब ने अपनी पत्नी श्रीमती लीला जी को भेंट की है! आप ने पुस्तक में चार खंड में अपने काव्य सृजन को बांटा है, चार कदम कहते हुए!

पहला कदम - समय ठहरता भी है!

दूसरा कदम - कामना का महामिलन!

तीसरा कदम - सुनो सदी!

चौथा कदम - बैठा कब से सोच रहा हूँ ! और कुछ गीत भी - कैसे-कैसे वरदान! ऋषि चिंतन!

काव्य खण्डों में बचपन, फिर गांव से कोलकाता की यात्रा फिर विवाह / प्रेम के बाद आत्म चिंतन जीवन / अध्यात्म के साथ अतीत के ऐतिहासिक शौर्य के ध्यान का काव्य में बखान है! आपने कुछ गीत भी इस पुस्तक में संकलित या प्रस्तुत किये हैं! जो रस की अनुभूति करवाने वाले हैं!

श्री प्रमोद शाह की कवित्ताओं का पठन करते हुए मुझे उसमें एक लय की अनुभूति हुई! उनकी काव्य लेखन शैली में मुझे परंपरागत लोक नाट्य शैली में मंच से अदाकार द्वारा पारम्परिक शैली में लय में कहे जाने वाले संवाद के स्वर गूंजते हुए प्रतीत हुए! उनकी हर एक कविता मुझे लोक नाट्य प्रस्तुति का संवाद ही महसूस होता रहा, मेरी अंतर अनुभूति में! ये अनायास ही लेखक पर प्रभाव रहा है उनके पारिवारिक परिवेश के कारण जो लय से ही आरम्भ हुआ और आज तक वो लय उनमें रची बसी है!

कविताओं के भाव पाठक अपने स्तर पर पुस्तक को पढ़कर ही अनुभूत करेंगे तो पूर्ण आनंद को प्राप्त करेंगे! मेरे द्वारा अनुभूत किये हुए आनंद को मैंने यहाँ साझा करने की कोशिश भर की है! जो पूर्ण नहीं हो सकता शब्दों में! ये सत्य है!

लेकिन इतना जरूर कहूंगा, लेखक कवि श्री प्रमोद शाह नफ़ीस साहब के बारे में कि उन्होंने अपने जीवन घटना क्रम को काव्य में लयात्मक धारा के साथ कहते हुए अपने पाठक को ये समझा रहे हैं कि जीवन यही है जिसके चार कदम हैं और पिया की नगरी/ईश्वर की नगरी है! जिसमें हम निमित्त मात्र हैं उस से आगे कुछ भी नहीं!

चित्रकार : योगेंद्र कुमार पुरोहित
मास्टर ऑफ़ फाइन आर्ट
बीकानेर/राजस्थान-334004
व्हाट्सप्प-9829199686

फुर्सत किसे है इन दिनों

!!! रोचक और पठनीय है 'फुर्सत किसे है इन दिनो'

'क़त्अः' उर्दू,-फ़ारसी नज़्म की एक क़िस्म है, जिसमें गज़ल की तरह क़ाफ़िये की पाबंदी होती है, और जिसमें कोई एक बात कही जाती है। क़त्आत शब्द इसी क़त्अः बहुवचन है। हिन्दी काव्यशास्त्र में इस विधा को मुक्तक कहा जाता है। चार पंक्तियों के

क़त्अः (मुक्तक) में विभिन्न विषयों पर लिखी गई छोटी-छोटी विचार प्रधान रचनाएं होती हैं। छंदों का परस्पर कोई सबन्ध नहीं होता तथा प्रत्येक छन्द अपने आप में पूर्णः स्वतंत्र एवं संपूर्ण अर्थ वाला होता है। शायर मनमोहन सिंह 'तन्हा' की पुस्तक 'फुर्सत किसे है इन दिनों' क़त्आत (मुक्तकों) का संग्रह है। आज के समाज तथा आम आदमी के जीवन में व्याप्त विसंगतियां, विद्रूपताएं, आशा एवं निराशावाद, पारस्परिक सद्भाव और भाईचारे में कमी जैसे बिन्दु पुस्तक के प्रमुख वर्ण्य-विषय है।

शिल्प की दृष्टि से रचनाकार ने छन्दविधान का पालन करने का प्रयास किया है, जिसने रचनाओं में लय, प्रवाह एवं गतिशीलता विद्यमान रहती है। लेखन-शैली सामान्य तथा कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक भी है। रचनाओं की भाषा सरल, सहज, स्वाभाविक तथा आम बोलचाल की है। इनमें शुद्ध हिन्दी के साथ-साथ उर्दू एवं अंग्रेज़ी के दैनिक बोलचाल के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है, यथा-प्रतीक्षा, मर्यादा, स्वीकार, कश्ती, मतलबपरस्त, सिस्टम, फ़ेसबुक, मोबाइल आदि।

पुस्तक में संग्रहीत क़त्आत कुछ अंश इस प्रकार हैं-- उलझे हुए हैं लोग मोबाइल में इस तरह/फुर्सत किसे है इन दिनों चेहरा कोई पढ़े।....... जब से बने हैं दोस्त फ़ेसबुक पे बेहिसाब/'तन्हा' अब दोस्ती के माने बदले गए हैं।..... इक दिन वक़्त की गर्दिश में मिट जाता है सब 'तन्हा'/ मगर पहली मोहब्बत की निशानी याद रहती है।..... है कि आमाल से लियी हुई क़िस्मत भला इनकी/ये वो बच्चे है जो फुटपाथ को ही घर समझते हैं।.... जिन्दगी की कश्ती में इतना न तू सामान भर/आएगा तूफ़ान तो सब कुछ बहा ले जाएगा।.... क्या मिलेगा आपसी झगड़ों से ऐ 'तन्हा' हमें/आदमी को आदमी से प्यार होना चाहिए।..... 'तन्हा' ये जब लगा कि है मतलब परस्त लोग/जीने का हमने अपने तरीक़ा बदल दिया।... मन्दिर में मिलेगा न वो मस्जिद में मिलेगा/ढुंढोगे गर ख़ुदा को तो वो दिल में मिलेगा।..... कोई दुश्मन न होता जहां मैं अपना/बोली अगर प्यार की हमने यहां बोली होती।.... फ़ेसबुक और व्हाट्सएप का ज़ोर है/ हर तरफ़ कोहराम है और शोर है/बस तकल्लुफ़ बन गई है ज़िन्दगी/दोस्तों ये नये युग का दौर है।

पुस्तक के कुछ क़त्आत काव्यदोष युक्त हैं-- जैसे ऐबे-तनाफ़ुर-किसी मिसरे में किसी शब्द के अंतिम अक्षर की उसके बाद वाले शब्द के पहले अक्षर से समानता होने पर शेर पढ़ते समय उसका उच्चारण परर्वातित हो जाता है। नफ़रततो-- नफ़रत्तो, इककमी--इक्कमी, भररहा--भर्रहा, औररब--और्रब आदि में यह दोष है। हालाँकि यह दोष बहुत हल्का माना जाता है। इसी प्रकार ऐबे-शुतुरगुर्बा (सम्बोधन दोष)--एक ही शेर के दो मिस्त्रों में किसी के लिए दो अलग-अलग सबोधनों, यथा-तुम और तू या आप और तुम का प्रयोग। यथा- 'नाज़ तुम करते हो 'तन्हा' किसलिए इस ख़ाक़ पर/ शाम तक ढल जाएगी तेरी जवानी सोच लो।' (पृष्ठ-16)। पृष्ठ सं.--18, 24, 37, 38, 53, 54, 56, 70, 108 आदि पर भी यह दोष है। शायरी एवं काव्य में यह बड़ा दोष माना गया है। किसी भी हालत में इससे बचना चाहिए। इन सबके बावजूद यह कहा जा सकता है कि 'फुर्सत किसे है इन दिनों' पुस्तक रोचक एवं पठनीय है।

फुर्सत किसे है इन दिनों (क़त्आत), शायर - मनमोहन सिंह 'तन्हा', प्रकाशकः गुफ़्तगू पब्लिकेशन, प्रयागराज, मूल्य 300 रुपये।

- अजीत शर्मा 'आकाश'
123ए-1, हरवारा, घूमनगंज,
प्रयागराज-211015
मो.- 9838078756

प्रतिस्वर

'पहाड़ी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित धार्मिक समस्या' (अंक 2/2025) में कहा गया है, 'पहाड़ी क्षेत्र के निवासियों में अत्यधिक अंधश्रद्धा एवं अंधविश्वास प्रचलित हैं। इन सुदूर स्थानों पर शिक्षा, मूलभूत एवं चिकित्सा सुविधाओं का अभाव अभी भी विद्यमान है। पूर्वजों ने जैसा बताया, वह सब हर पीढ़ी के लोगों तक पहुँचता रहता है। अन्य क्षेत्रों में भी ऐसा ही है।' परंतु शहरी एवं पढ़े-लिखे लोग भी ऐसी ही मान्यताओं से ग्रसित हैं।

1. **शकुन/अपशकुन एवं पंचांग का महत्त्वः** प्रत्येक समाचार पत्र में आज का पंचांग व राशिफल प्रकाशित होता है, अधिकांश लोग इसे पढ़ते हैं। जैन धर्म में भी पंचांग महत्वपूर्ण है। लोग दिशा शूल आदि मानते हैं।

2. **प्रेत योनि :** (1) श्रीमद्भागवत के माहात्म्य-क्रम सं. 5 पर वर्णित है - 'धुन्धकारी (दुराचारी) को प्रेत योनि प्राप्ति और उसका उद्धार'। (2) लेखक पाल ऐस. ब्रन्टन ने अपनी पुस्तक 'A Search in Secret India' में लिखा था -- मैंने एक जादूगर से पूछा कि वह कोई वस्तु (घड़ी इत्यादि) कैसे प्रस्तुत कर देता है। उसने बताया कि यह काम वह प्रेत आत्माओं से करवाता है, शर्त यह है कि जहाँ से वस्तु उठाई थी, उसे वहीं वापस करना होता है। (3) कथा है कि तुलसीदास पूजा-अर्चना करने के उपरान्त पात्र का जल एक पीपल के पेड़ में डाल देते थे। उस वृक्ष पर एक प्रेत रहता था। प्रेत ने प्रसन्न होने पर तुलसीदास से पूछा कि उसे क्या चाहिए। तुलसीदास ने कहा कि हनुमान से भेंट करने की अभिलाषा थी। प्रेत ने बताया कि अमुक स्थान पर प्रतिदिन राम कथा होती है, जो व्यक्ति सबसे पहले पहुँचता है एवं सबके बाद में जाता है, वे ही हनुमान है। (4) बताया जाता है कि बुरहानपुर किले (म.प्र.) के समीप के शिव मंदिर में अश्वथामा (चिरंजीवी) बहुत सबेरे ही पूजा करके चले जाते हैं, जबकि मंदिर में ताला लगा रहता है। ऐसे पुष्प शिव लिंग पर मिले हैं, जो कि उस क्षेत्र में नहीं मिलते हैं। (5) बताया जाता है कि प्राचीन समय के आल्हा-उदल अभी भी विंध्याचल की माँ विंध्यवासिनी की पूजा के लिये बहुत सुबह आते हैं।

3. **कर्म सिद्धान्त :** भारतीय दर्शन के अनुसार कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है इसी कोई कोई अभाव में, तो दूसरा ऐश्वर्य में रहता है? भद्राचलम (अभी तेलंगाना में) के रामदास को नवाब गोलकुन्डा (हैदराबाद) ने कारागार में डाल दिया था, क्योंकि उन्होंने सरकारी खजाने की राशि को राम मंदिर निर्माण हेतु व्यय कर दिया था। कुछ समय उस गुफानुमा कारागार में बंद रहे। दीवारों पर कील से उकेर कर मूर्तियाँ बनाते थे। एक दिन उन्हें छोड़ दिया गया। हुआ इस प्रकार था- नवाब के व्यक्तिगत कमरे में रात्रि के समय दो ज्योतिर्मय युवकों ने प्रवेश कर उसे एक मुहरों थैली दी, मुहरों को सही पाया, उतनी ही थी जितनी रामदास ने व्यय की थी। अगले दिन नवाब ने अपने अधिकारियों से इस घटना को बताया। इन लोगों ने उसे बताया कि वे युवक राम एवं लक्ष्मण थे। रामदास को छोड़ने के उपरान्त

नवाब की आस्था राम में हो गई। प्रतिवर्ष वह भद्राचलम मंदिर में उपहार भेजता था, उसके उपरान्त उसके बच्चे भी इसका पालन करते रहे। परवर्ती काल में एक प्रश्न के उत्तर में रामदास ने बताया कि पिछले जन्म में उसने एक तोते को पिंजड़े में बंद करके रखा था, उसका ही फल था कि उसे कारागार में रहना पड़ा।

4. **यज्ञ देवता का प्रकट होना :** जब मंत्रोचार करने वाले पुरोहित सक्षम हों, तब यज्ञ देवता उपस्थित होते हैं। राजा दशरथ (रामायण) ने पुत्र कर्मेष्टि यज्ञ करवाया था। अग्नि से यज्ञ देवता प्रकट हुए एवं उन्होंने राजा को खीर का पात्र देकर निर्देश किया था कि उसका वितरण किस अनुपात में रानियों को देना होगा। आर्य समाज में प्रतिदिन होम करने की परम्परा है।

5. **देवता/देवी की पूजा (क) :** यहूदी एवं इस्लाम धर्म को छोड़कर, सभी धर्मों में देवता/देवी की पूजा प्रचलित है। सिक्ख धर्म में श्री गुरु ग्रन्थ साबिह को यह स्थान प्राप्त है, वैसे इसके अनुयाइयों को निराकार (ऊँकार) साधना एवं गुरु पूजा का आदेश है। जब किसी व्यक्ति को गम्भीर समस्या से जूझना पड़ रहा हो, वह उसके निवारण हेतु सभी उपाय-- पूजा, तंत्र-मंत्र, तीर्थ यात्रा आदि का सहारा लेता है, यह सभी स्तर के लोगों के लिये एक जैसा ही है। लोग अनेक रत्न जड़ित अंगूठियाँ पहनते हैं, मंदिरों में मनौती माँगते हैं। एक तबका ऐसे लोगों का भी है जो ऐश्वर्य प्राप्त करने हेतु देवी/देवता को धन, आभूषण इत्यादि अर्पित करते हैं। तिरुपति बालाजी की हुंडी में सबसे अधिक राशि, स्वर्ण आभूषण इत्यादि प्राप्त होते हैं। भादसोड़ा (जि. चित्तौड़गढ़, राज.) को छोटा तिरुपति कहा जा सकता है, यहाँ साँवरिया सेठ (कृष्ण) का मंदिर है। चढ़ावे में अत्यधिक राशि प्राप्त होती है, महंगे रजत निर्मित परिधान इत्यादि। कहा जाता है कि कई व्यक्ति अपने व्यापार में इन्हें भी साझेदार बना कर, उनके भाग की राशि पहुँचा देते हैं। खाटू श्याम (जि. सीकर, राज.) को 'हारे का सहारा' कहा जाता है।

(ख) शिव अर्चना की परम्परा प्राचीन काल में भी थी। चन्द्रमा देवता ने सोमनाथ (वेरावल, गुज.) में पूजा अर्चना की थी, इसी कारण इस लिंग को सोमनाथ कहा जाता है। हड़प्पा (अब पाक में) एवं कालीबंगा (राज.) में प्राचीन शिव लिंग प्राप्त हुए थे। मोहन जोदड़ो में प्राचीन पशुपति सील (मुहर) प्राप्त हुई थी, इसमें शिव के तीन मुख देखे जा सकते हैं।

(ग) देवता/देवी से प्रार्थना का फल -- कोलकाता में चीनी मूल के अनेक परिवार रहते हैं एवं व्यवसाय में कार्यरत हैं। एक समय एक परिवार का अकेला पुत्र मरणासन्न स्थिति में था। परिवार ने कालीघाट की काली माँ से प्रार्थना की, लड़का स्वस्थ हो गया। उस परिवार ने धन्यवाद करते हुए काली माँ का मंदिर निर्माण करवाया, यह उनके समूह की आस्था का केन्द्र बन गया है।

5. **ताबीज, अंगूठियाँ :** अनेक व्यक्ति समस्या के निदान हेतु ताबीज अथवा अनेक अंगूठियाँ पहनते हैं, बाबा लोग भी।

6. **जड़ी/बूटी :** आदिवासियों को जड़ी, बूटी का समुचित ज्ञान होता है। आधुनिक उपचार की सुविधा के अभाव में यही उन्हें जीवन दान देते हैं। किन्हीं जड़ी, बूटियों को गले में भी धारण करते हैं। आज का आयुर्वेद इन्हीं पर आधारित है, कारगर भी।

7. **गोमूत्र :** गो मूत्र को पवित्र, कीटनाशक माना गया है। गोमूत्र से 'गोनाइल' बनाया जा रहा है, फर्श की सफाई के लिये अच्छा है। गौ मूत्र का अर्क औषधि के रूप में व्यवहार होता है।

8. **दीप जलाना :** दीपावली पर सभी लक्ष्मी पूजन एवं सजावट हेतु दीप से सजावट कार्यों में दीप प्रज्वलित करने का विधान है। दीपावली की रात्रि में तांत्रिक साधना की जाती है।

9. **आँख फड़कना, हथेली में खुजली होना :** ऐसी मान्यता है कि दाहिनी आँख फड़कना, दाहिनी हथेली में खुजली होना शुभ संकेत हैं। बिल्ली के रास्ता काटने पर अशुभ घटने का भय होता है।

10. **नजर लगना :** अधिकांश लोग इसे मानते हैं, इससे बचने के लिये बच्चों के मुख पर काली बिन्दी लगाते हैं, बड़े बच्चे पैर में काला धागा बाँधते हैं, देखने में आता है कि जिन्हें ईश्वर होने में संशय है, वे भी इसे मानते हैं, नजर उतारने के लिये नमक और साबूत लाल मिर्च को आग में जलाते हैं।

11. **पुनर्जन्म :** हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म सर्वमान्य है। कर्मों का फल अगले जन्म का आधार है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है - योगभ्रष्ट व्यक्ति अगले जन्म में किसी

सम्पन्न परिवार अथवा योगी के परिवार में जन्म लेते हैं। योगीराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी, वाराणसी (1828-95) में अपनी डायरी में लिखा - पिछले जन्म की मेरी बहन वर्तमान में मेरी पत्नी है।

12. **शीतला माता :** अनेक परिवार माता की पूजा के दिन व्रत करते हैं और बासी/ठंडा भोजन करते हैं, चेचक आदि अनेक प्रकोप से बचने हेतु।

13. **शंख बजाना :** शंख बजाने से जो कंपन (Vibration) होता है, उससे वातावरण के बैक्टरीया समाप्त हो जाते हैं। प्रत्येक मंदिर एवं अन्य पूजा/कथा में शंख बजाया जाता है। शंख में जल भरकर मूर्ति के चारों ओर घुमाया जाता है, बाद में इस प्रकार के अभिमंत्रित जल को भक्तों के ऊपर छिड़क दिया जाता है।

14. **पशु बलि :** काली/चामुण्डा मंदिर में अभी भी पशु बलि प्रचलित है। मुसलमान ईद पर पारिवारिक स्तर पर पशु बलि देते हैं, जिसे कुर्बानी कहा जाता है।

उपरोक्त को देखते हुए, दूरस्थ भोले-भाले पहाड़ी आदिवासियों को अंधश्रद्धा एवं अंधविश्वास का पिटारा कहना नितांत अनुचित होगा।

लेख 'धर्मसूत्रों में राजधर्म' (अंक 2/2025) के सम्बन्ध में कहना है कि - क्रिया योग प्रवर्तक श्री श्यामाचरण लाहिड़ी (वाराणसी 1828-95) के अनुसार, धर्म वह कर्म/क्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने उत्स/मूल से एकता प्राप्त कर सके, जैसे नदी अपने उत्स सागर को मिलने हेतु गति से बहती है। धर्म पालन में राजा की आस्था अपेक्षित एवं आवश्यक है। प्राचीन समय में राजकुमारों एवं अन्य युवकों को गुरुकुल भेजा जाता था। राम के गुरु वशिष्ठ थे, कृष्ण एवं निर्धन सुदामा के संदीपनी थे। धर्म में संलग्न रहते हुए राजा राजकार्य को भली भाँति कर पाते थे। अलवर (राज.) रियासत के राजकीय चिह्न में यह भी अंकित था- 'आत्मानम सततम विधि', अर्थात् आत्मा का संधान सतत करते रहो।

प्रजा को धार्मिक रुची देने हेतु राजाओं ने देवी-देवताओं के अनेक भव्य एवं सुन्दर मंदिर बनवाये थे। मंदिर में सभा मंडप भी होते थे। इनकी देखभाल हेतु मंदिरों को भूमि, गोधन एवं अन्य आवश्यक सामग्री दी जाती थी। एक शिलालेख में उल्लेख है कि प्रतिदिन के आधार पर मंदिर में दीपक जलाने हेतु कितना घी, सरकारी मालखाने दिया जाय। राजा का दायित्व था कि- प्रजा को सचरित्र बनाये, उसकी सब प्रकार से रक्षा करे, राज्य में शांति बनी रहे, प्रजा की सुख-सुविधा की व्यवस्था करे। कई राजा भेष बदल कर रात्रि में महल के बाहर जा कर सूचना एकत्रित करते थे कि प्रजा की क्या समस्या है। वहीं वर्तमान में स्थिति यह है कि मंत्री, राजनेताओं एवं अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों को Z plus सुरक्षा प्रदान की जाती है (जनता द्वारा दिये टैक्स में से)।

'गीता की प्रासंगिकता' (पाठक मंच, अंक-3/2025) के सम्बन्ध में कहना है कि गीता के प्रत्येक अध्याय के अंत में, यह लिखा हुआ है कि यह ब्रह्म विद्या का योग शास्त्र है, लेख लिखने वालों ने इसे नहीं पढ़ा था। बहुत कुछ लिखा गया है, किन्तु सार्थक नहीं था। हिन्दी की एक विदुषी ने भी एक निरर्थक लेख लिखा- (Does Gita Teaches Violence' एक जाने-माने दार्शनिक, जो बहुत समय उच्च पद पर आसीन रहे, उनके लिखे/कहे से भी यह विदित हुआ कि उन्होंने भी गीता को नहीं समझा था। ब्रह्म विद्या इतनी सरलता से प्राप्त नहीं की जा सकती है गीता 9/2 में लिखा है - राज विद्या गुह्यम .....' यह आत्मविद्या/राज विद्या गुह्यतम एवं सर्व विधाओं में श्रेष्ठ है। इसे समझने के लिए किसी आत्मसाक्षात्कार प्राप्त योगी/सिद्ध संत की शरण में जाकर साधना में अग्रसर होना ही उपाय है। इसे शब्दों/विवेचना से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

व्यक्तियों/समाज/देश (एवं विदेश) के व्यवहार/ परस्पर सम्बन्ध से इसका कोई सरोकार नहीं है। इतना अवश्य है कि साधना की उच्च अवस्था प्राप्त करने पर द्वैत भाव नष्ट हो जाता है, वास्तविक 'अहिंसा' का उदय होता है, किन्तु ऐसे व्यक्तियों की संख्या नगण्य है। गीता 8/10, 12, 13 में उस यौगिक विधि का वर्णन है, जिसे शरीर छोड़ने से पहले करने पर योगी जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है।

क्रिया योग प्रवर्तक श्री श्यामाचरण लाहिड़ी (1828-95) वाराणसी, हिमालय के महान 'बाबा जी महाराज' के शिष्य थे। उन्होंने योग के अनेक पहलुओं पर जानकारी उपलब्ध कराई थी- क्रिया योग अति सूक्ष्म कर्म है। दो प्रकार के क्षेत्र वर्णित हैं, - धर्मक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे। सभी प्रकार के धर्म इस शरीर द्वारा सम्पादित होते हैं, अतः यह देह ही

एक साथ धर्मक्षेत्र एवं कुरुक्षेत्र है। गीता 13/2- इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधियेत, कौन्तेय (अर्जुन)- ज्ञान की परोह भूमि के रूप में देह को ही क्षेत्र कहा गया है। आत्मज्ञान/आत्मबोध हो जाने की स्थिति में धर्म के तात्त्विक स्वरूप का उद्घाटन होता है। जिससे श्वास-प्रश्सास की गति स्थिर होती है। गीता 18/48 सहजं कर्म........। गीता 4/21......... 'शरीरं केवलं कर्म कुर्वान्नाप्रोति, किलिषम' - इस शरीर के द्वारा जो 'केवल' नामक कर्म करते हैं वह निष्काम, जितात्मा और त्यक्त सर्व परिग्रह होने से पापग्रस्त नहीं होते। भगवान ने केवल कर्म (कुम्भक) को ही कर्मयोग की संज्ञा दी है। प्राणकर्म/आत्मकर्म ही वास्तविक कर्मयोग है - सूक्ष्म इड़ा और पिंगला की बहिर्मुखी गति को अन्तरमुखी कर दोनों का मिलन करवाने को ही कर्मयोग की संज्ञा दी गई है।

गीता 2/48-समत्वं योग उच्चते : समत्व को ही योग कहा गया है। इसका मुख्य अंग है प्राणकर्म/प्राणायाम, जो कि सभी प्रकार के इन्द्रिय संग अथवा आसक्ति रहित है।

लेख 'मृत्यु का पूर्वाभास' (अंक 3/2025) के सम्बन्ध में कहना है कि - जन्म के समय ही मृत्यु का समय एवं कारण निर्धारित हो जाता है। पुराने समय में प्रत्येक बच्चे की जन्मपत्री अवश्य बनवाते थे। पंडित/ज्योतिषी मृत्यु के सम्बन्ध में बताने से बचते हैं, क्योंकि उनकी गणना सही नहीं भी हो सकती है। भृगु संहिता एवं दक्षिण के नाड़ी शास्त्र से भी बुहत सी जानकारी प्राप्त हो सकती है।

मृत्यु के सम्बन्ध में जो लिखा गया है वह 'लक्षण' की श्रेणी में आयेगा। सामान्य व्यक्ति उसका उपयोग करने में सक्षम नहीं है, जानने की कोई उपयोगिता भी प्रतीत नहीं होती है। यदि गणना करने वाला समर्थ हो, तब सही जानकारी प्राप्त होती है। श्री रमण महर्षि, तिरुवनामलाई (तमिलनाडु) का एक भक्त ज्योतिष गणना में पारंगत था, उसने जान लिया था कि उसके बेटे की मृत्यु अल्पायु में होगी। वह महर्षि के पास गया और उसने उनसे सहायता की याचना की, किन्तु उन्होंने कुछ नहीं कहा। आने वाले समय में गणना तिथि पर उनके बेटे की मृत्यु हो गई। मृत्यु, भय एवं दुख का कारण है, हमारे एवं प्रियजनों का शरीर से मोह - 'मैं शरीर हूँ'। परिवार के लोगों का दुख और बढ़ जाता है, यदि आर्थिक रूप से वह मृतक पर निर्भर थे।

जब तक जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा नहीं मिल जाता, कर्मानुसार पुनर्जन्म होता रहेगा। श्री अरबिन्दो, पांडिचेरी ने कहा था- यह उस प्रकार है, जैसे कोई कपड़े बदल कर किसी अन्य देश में चला जाय।

योगीजन/सिद्धसंतों को उनकी मृत्यु का पूर्वाभास हो जाता है, तब वह अपने उत्तराधिकारी का नाम घोषित कर देते हैं। कुछ संत जीवित समाधि लेते हैं। गीता 8/10, 12, 13 में मृत्यु के समय किस यौगिक क्रिया का पालन करना चाहिए, वर्णित है। इसके लिये मृत्यु का आभास आवश्यक है।

क्रिया योगी संत महेन्द्रनाथ हिमालय में रहते थे, जब उन्हें मृत्यु का आभास हुआ, तब उन्होंने दक्षिण भारत में रह रहे अपने उत्तराधिकारी 'मधु' (वर्तमान में Sri M, Satsang Foundation Bangalore) को संदेश भेज कर बुला भेजा। संदेश में यह जानकारी दी गई कि किस तारीख तक पहुँचना है एवं वह किस गुफा में पहुँचे। उनके पहुंचने पर उनके गुरु ने समाधि का दिन बताया एवं यह भी कहा कि उसके हेतु उपयुक्त जगह चयन कर, उसे ही उसकी खुदाई करनी होगी। उन्होंने यह भी कहा कि समाधि के बाद उस स्थान को चिह्नित नहीं करना है।

मृत्यु की तिथि जानने का प्रयत्न न करके, व्यक्ति को सदैव सजग रहने एवं सब कार्य समय पर कर लेने चाहिए, यह मानकर कि मृत्यु कभी भी उपस्थित हो सकती है।

जितेन्द्रनाथ जौहरी, उदयपुर
ई-मेल : jnjohari@yahoo.in

वैचारिकी के जुलाई-अगस्त 2024 अंक में श्री गोपाल जी गुप्त का शोधपूर्ण लेख **'पुराणों एवं साहित्य में राधा-कृष्ण'** पढ़ा जिसमें उन्होंने कृष्णोपासना में राधा के संबंध में शोधपूर्ण जानकारी दी है। कृष्ण--कथा में राधा के प्रवेश ने कृष्णोपासना में उच्छृंखल आचरणों को उपासना का अंग बना दिया। इस क्रम में 'अग्निशिखा मासिक' (छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्यनगर, दुर्ग छ.ग.--491001) के जुलाई 2024 अंक में आचार्य विश्वामित्रार्य-- का लेख उल्लेखनीय है जिसमें वे

लिखते हैं-- 'आनंदमठ' के लेखक बंकिमचंद्र चटोपाध्याय (1838-1894) अपनी पुस्तक 'कृष्ण चरित' में लिखते हैं कि महाभारत के नायक श्रीकृष्ण के उत्तम चरित्र में पुराणकारों ने राधा और गोपियों के संग चीर हरण, रासलीला आदि की जो विभिन्न अभद्र-अश्लील कथाओं को लिखा है, उसका विरोध करने के बजाय, अज्ञानतावश धर्मांध हिन्दू लोग क्यों अपनी आँखें मूंद-मूंदकर राधे-कृष्णा राधे-कृष्णा गाते फिर रहे हैं। इसी तरह पुरुषोत्तम योगीराज, महाभारत युद्ध में अपनी यथार्थ राजनीति से धर्म की जय कराने वाले श्रीकृष्ण के चरित्र को विकृत करनेवाले कृष्ण भक्तों की प्रवृत्तियों से दुखी होकर राष्ट्रकवि मैथिलीारण गुप्त ('भारत-भारती' में) लिखते हैं- श्रीकृष्ण की ले आड़ हम, करते अनंगोपासना। धिक्कार्य है, इन गीतों, संतों भक्तों की वासना।।

अद्भुत है कि कंस और अन्यान्य दुष्टों के संहारक तथा गीतोपदेशक श्रीकृष्ण हमारे आराध्य नहीं हुए, आराध्य हुए ब्रज में कथित राधा व गोपियों से हास-विलास करने वाले बाँसुरीवादक कन्हैया। गुप्तजी ठीक लिखे हैं कि श्रीकृष्ण की आड़ लेकर अनंगोपासना अर्थात् कामदेव उपासना खूब हुई, हमारे यहाँ राजा-महाराजाओं में खूब हुई, हिन्दी के पूरे रीतिकालीन साहित्य में, मध्यकालीन संगीत चित्र आदि कलाओं में खूब हुई, कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों के कई आचार्यादि खूब मजे किये हैं, कर रहे हैं। कृष्ण-भक्ति केवल श्रृंगार, भोगविलास, नाचना-गाना बन कर रह गई है। 19वीं शताब्दी में मुंबई में एक आर्यवीर ने एक कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय के आचार्य का भंडाफोड़ किया था जो स्वयं को कृष्ण रूप बताकर अनुयायियों की नवविवाहिताओं को प्रथम रात्रि में प्रसाद रूप ग्रहण करता था (हद है धर्मांधता की)।

विष्णु पुराण (5-13-60), पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड-23). उत्तर. 245) भविष्यपुराण-- ब्रह्मपर्व 73) उत्तर. (11) भागवत पुराण 10-22-17-23/10-33-18-19/10-42-4-12/10-48-6-9) ब्रह्मवैवर्त पुराण 72-53-69 कृष्ण जन्म खण्ड--4-15-1-178 आदि में सचमुच श्रीकृष्ण चरित्र की अमर्यादित अश्लील प्रस्तुति है। कई कुतर्की कहते हैं कि काम तो जीवन का अनिवार्य अंग है, तो वात्स्यायन का 'कामसूत्र' उपलब्ध है ना, या इस विषय पर और ग्रंथ रच डालते, श्रीकृष्ण की आड़ लेकर कामोपासना क्यों?

सब देवताओं की विवाहिताएं उनके साथ पूज्य हैं, बस एक कृष्ण ही हैं जिनके साथ उनकी विवाहिता रुक्मणी नहीं, प्रेमिका राधा पूज्य है या बहन सुभद्रा भी? अब तो कृष्ण की बजाय राधा पूज्य हो गई है जिससे कृष्ण-कृष्ण नहीं राधे-राधे के नारे लग रहे हैं। यह राधा कौन कहाँ से आई, पता नहीं? महाभारत में राधा का जिक्र नहीं। कृष्ण चरित्र से लेकर सर्वाधिक पढ़े जाने वाले भागवत पुराण में गोपियाँ हैं, पर राधा का कहीं नामोल्लेख नहीं। 5 वीं सदी में रचित 'दुर्गा सप्तशती' (चंडी पाठ) में देवी के नामों में राधा नहीं। हिन्दू धर्म के लगभग सहोदर हितैषी जैन धर्म के ग्रंथों में श्रीकृष्ण-रुक्मणी का वर्णन तो हैं, किन्तु राधा का नहीं। हाँ, 12 वीं शताब्दी में कवि जयदेव ने अति श्रृंगारिक 'गीत गोविन्द' की रचना की जिसमें कृष्ण-प्रेयसी के रूप में राधा का पदार्पण हुआ। बस यहीं से ब्रह्मवैवर्त पुराणकार ने स्वच्छन्दतापूर्वक तिल से ताड़ बना दिया। 'गोपाल सहस्त्रनाम' में बेहिचक योगीराज कृष्ण को 'राधा-रति-सुखभोगी, राधालिंगन सम्मोही, चोर व्यभिचार शिरोमणि' इत्यादि घोषित कर दिया और कृष्णभक्त इन नामों का भक्तिभाव से उच्चारण कर कृष्ण को रिझाने लगे? अद्भुत गिरावट तो यह है कि इस कथित कृष्ण-प्रेमिका राधा को ब्रह्मवैवर्त में कृष्ण की बहन (प्रकृति खण्ड 48-29), कभी कृष्ण की पुत्री (ब्रह्मपर्व-5 (खण्ड--1--25--26), कभी कृष्ण की पुत्रवधू (प्रकृति खण्ड 2--49--36--41) और कभी कृष्ण की मामी अर्थात् मामा रायण की पत्नी बताया जाता है।

पुराणों का रचनाकाल चौथी से बारहवीं शताब्दी तक है जिसमें वज्रयानी बौद्धों, वाममार्गी तांत्रिकों में तंत्र साधना में पंच मकार (मांस, मछली, मदिरा, मैथून, मुद्रा) का जोर रहा जिसमें माँ को छोड़ कर बहन, पुत्री, पुत्रवधू या किसी भी स्त्री को भैरवी और साधक को भैरव कह कर यौनाचार जरूरी माना गया (काली तंत्र, महानिर्वाण तंत्र)। संभवतः इसी का प्रभाव ब्रह्मवैवर्त पर पड़ा। पुराणकारों ने भैरव--भैरवी की जगह मैं कृष्ण, तू राधा कहना शुरू कर दिया। बौद्धतांत्रिक 'ऐ क्लीं राधिकायै वामांगे रक्षक' जपने लगे। शिवपुराण (कोटिरुद्र 12--37/ विंधेश्वर 16--104--106/ वायु--उत्तर 34--13--14) की भग--लिंग पूजा को लेकर एक दक्षिण भारतीय व्यक्ति रावण (रामकालीन नहीं) ने अश्लीलता युक्त शिवताण्डव स्तोत्र रच डाला। हवनकुण्डों में योनि

बनवायी जाने लगी। नग्न हो स्नानरत गोपियों के वस्त्र--हरण को आत्मा--परमात्मा के संबंध--परक दार्शनिक आयाम देने में कई विद्वानों ने अपनी बुद्धि लड़ा दी है। राधा--गोपियों के साथ कृष्ण के प्रेमाचार को दिव्य और पवित्र व्याख्यायित किया जा रहा है जबकि स्वयं भागवत पुराण (10--29--11/10-29--46/10--47--60) के अनुसार परस्त्री (परकिया) शारीरिक भाव भी व्यभिचार (यौनाचार) ही है। कुछ कृष्ण भक्त सम्प्रदायों ने तो इस प्रक्रिया भाव को लेकर पूरा एक भक्ति--दर्शन खड़ा कर दिया है। वर्तमान में सर्वाधिक श्रुत--वाचित भागवत पुराण के दशम स्कंध में वर्णित कृष्ण की रस-रासलीला में ही वाचकों श्रोताओं की रुचि रहती है, बाकी स्कंधों को जल्दी--जल्दी निपटा दिया जाता है। भागवत कथा वाचन करने वाले कथावाचक स्वयं को ठाकुरजी (कृष्ण) कहने--लिखने लगे हैं, वृन्दावन में ऐसे ठाकुर घर--घर में हो गये हैं। श्रीकृष्ण कथा के रस--प्रसंगों व रासलीला के प्रभाव--दबाव में कवि--भक्तों--भक्तिनों ने मर्यादा पुरुषोतम श्री राम से भी सरयू के तट पर रासलीला करवा दी। एक 'महाभागवत' ग्रन्थ रच डाला गया जिसके अध्याय 10 में पार्वतीजी को कृष्ण और शिवजी को राधा बनाया गया है। इस पौराणिक स्वेच्छाचार से व्यथित होकर ही स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू पुराणों की कटु आलोचना की थी और वर्तमान में मुरारी बापू ने भी कहा कि हिंदु ग्रंथों में संशोधन होना चाहिए।

गोपीचन्द शर्मा

607, सूर्य नगर, जयपुर-302017

(वर्ष 1737 ई. में जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा जयपुर में आयोजित अश्वमेध यज्ञ के एक सत्र में श्रीकृष्ण के साथ राधा की पूजनीयता को लेकर शास्त्रार्थ रखा गया था। इसका कारण श्रीकृष्ण के साथ राधा की पूजनीयता को लेकर महाराजा का संशय- दुविधा ग्रस्त मन था। इसके मूल में भागवतपुराण में राधा का उल्लेख नहीं होना तथा श्रीकृष्ण के साथ उनकी पत्नी रुक्मणी की बजाय उनकी प्रेमिका राधा की पूजनीयता तथा राधा से सम्बंधित अमर्यादित एवं विरोधाभाषी पौराणिक उल्लेख एवं जयदेव कृत अति श्रृंगारिक कृति 'गीत गोविन्द' थे। महाराजा इस बात से अत्यंत असहज हो उठे थे कि जयपुर में स्थित राजमहल (सिटी पैलेस) परिसर में राजपरिवार द्वारा वन्दित गोविन्ददेव, गोपीनाथ एवं मदनमोहन के साथ राधा की पूजनीयता थी। उल्लेखनीय है कि उस समय इन मंदिरों के अलावा राजस्थान के सभी कृष्ण--मंदिरों में अकेले श्रीकृष्ण ही पूजान्तर्गत थे। वृन्दावन से जयपुर स्थानांतरित हुए गोविन्ददेव, गोपीनाथजी, मदनमोहनजी भी वृन्दावन में अकेले ही विराजमान थे, इनके साथ राधा की मूर्ति की स्थापना गौड़ीय सम्प्रदाय के आचार्यो ने बाद में की थी। वृन्दावन के प्रधान ठाकुरजी बाँकेबिहारी अभी भी एकेले ही विराजमान हैं। पुष्टिमार्गीय सभी मंदिरों, गुजरात के द्वारका तथा डाकोर के द्वारकाधीश मंदिरों में अकेले श्रीकृष्ण ही हैं। अस्तु, उक्त शास्त्रार्थ में देश के कई विद्वान ब्राह्मण सम्मिलित हुए थे। इस शास्त्र विमर्श का नेत्रत्व कर्णाटक में जन्मे पण्डित हरिकृष्ण मिश्र ने किया था जो अपने ग्रंथों 'वैदिक वैष्णव सदाचारः' एवं 'प्रभोर्वैदिक पूजा' तथा यज्ञ में अग्नि चयन जैसे जटिल वैदिक अनुष्ठान के लिए जाने जाते थे। व्यापक विचार--विमर्श के बाद, महाराजा की संशयग्रस्त मनोदाश एवं दुविधा को ध्यान में रखकर निर्णय दिया गया कि राधा पर शास्त्रों में कोई विरोधाभास नही है और राधा की पूजा करने से जीव का कल्याण ही होता है। इस निर्णय में ध्यान रखा गया की राजपरिवार द्वारा पूज्य गोविन्ददेव तथा जयपुर में स्थित गोपीनाथजी व मदनमोहनजी के साथ पूजान्तर्गत विराजमान राधा को लेकर अब कोई परिवर्तन संभव नही है। इस तरह के शास्त्रर्थ में ब्राह्मणों के लिए राजा की मनोदशा ही महत्वपूर्ण होती थी, शास्त्र नहीं। 19वीं शताब्दी में जयपुर में इस तरह की कसमसाहट फिर उत्पन्न हुई जब महाराजा रामसिंह ने जयपुर राज्य में शैव तिलक ही करने और वैष्णव तिलक नहीं करने का आदेश जारी कर दिया था इससे कई वैष्णव जयपुर छोड़ कर चले गये थे। पुष्टिमार्गीय पंचम घर के गोस्वामी गोविन्दलालजी भी इसी से जयपुर छोड़कर बीकानेर चले गये थे। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि इस समय तक गौड़ीय सम्प्रदाय का कोई अपना दर्शन नहीं था। इसके निराकरण हेतु जयपुर में बलदेव विद्याभूषण ने गौड़ीय दर्शन अचिन्त्यभेदाभेदवाद एवं भक्ति में परकीया भाव अथवा राधा तत्व का प्रतिपादन किया था। **– संपादक**)

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी.आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। **संपादक-डॉ. बाबूलाल शर्मा।**

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

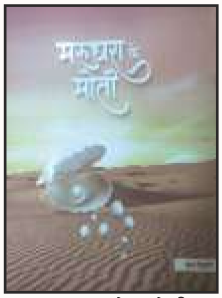

मरुधरा के मोती
पुष्पा गोस्वामी
मूल्य 2250/- पृ.सं. 140

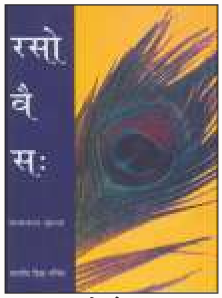

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

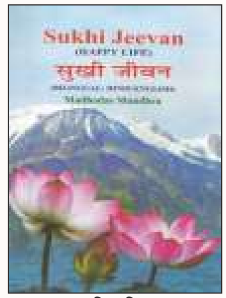

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

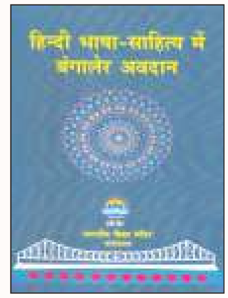

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

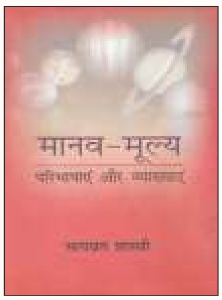

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

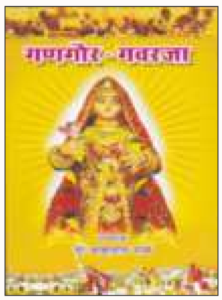

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264

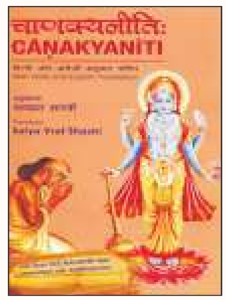

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

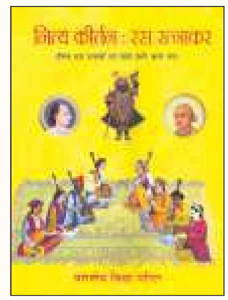

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

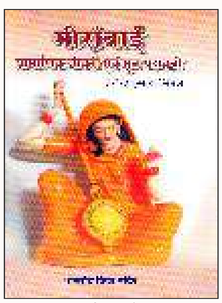

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584

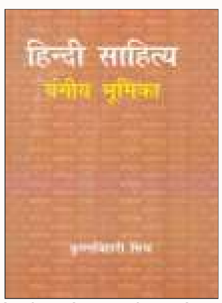

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

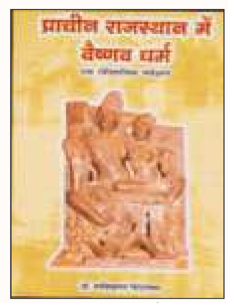

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

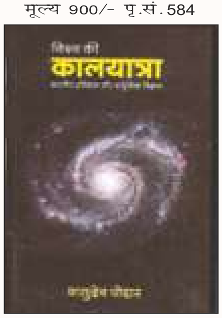

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

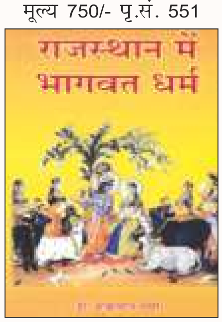

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

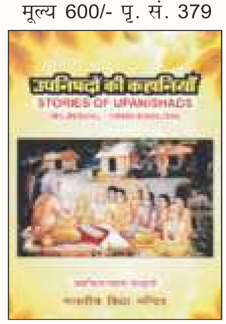

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

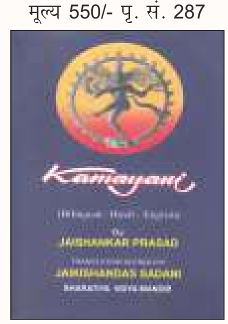

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

From

BHARATIYA VIDYA MANDIR

12/1, Nellie Sengupta Sarani

Kolkata - 700087 *(W.B.)*

TO

भारतीय विद्या मंदिर के कार्यक्रम में अध्यक्ष स्व. श्री बी. के. बिड़ला एवं स्व. डॉ. सरलाजी बिड़ला का अभिनन्दन करते हुए न्यासी श्रीमती यमुनाजी मूंधड़ा परिलक्षित हैं।

भारतीय विद्या मंदिर, भारतीय संस्कृति संसद एवं भक्ति वेदांत इंस्टीट्यूट द्वारा रवीन्द्र तीर्थ में आयोजित सेमिनार की अध्यक्षता करते हुए डॉ. बी. डी. मूंधड़ा के साथ दायें श्रीवत्स भट्टड़ और बायें

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा आयोजित श्रीरामकथा करते हुए मंचासीन आचार्य सोहनलाल रामरंगजी तथा दायीं ओर वानर रूप में रामकथा का आनंद लेते हुए हनुमानजी विराजमान हैं।

राजस्थान के जयपुर डायलॉग द्वारा आयोजित सेमिनार में भारतीय विद्या मंदिर द्वारा लगाये गये स्टॉल में भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की प्रदर्शनी।

हरियाना के इस पवित्र तीर्थ स्थल 'पिहोवा' में श्रीकृष्णजी ने युधिष्ठिर जी के हाथों सभी मरे हुए योद्धाओं व पूर्वजों का पिण्डदान करवाया जिससे उनको मोक्ष की प्राप्ति हुई।

वाण गंगा तीर्थ दयाल पुर में भीष्म पितामह को जल पिलाया गया था। पुरातत्व विभाग के कुरुक्षेत्र विकास बोर्ड के अधिकारी श्री ताराचंद शर्मा के साथ परिदर्शन करते हुए सचिव श्री एस. एल. सोमानी।